श्री राम उवाच-32

# सातवीं झील

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

# सातवीं झील

**संस्करण** : प्रथम, अगस्त 2023
4000 प्रतियाँ

**मूल्य** : ₹ 160/-

**प्रकाशक** : **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
E-mail : sahitya@sadhumargi.com

**ISBN** : 978-93-91137-29-8

**मुद्रक** : साक्षी प्रिन्टर्स, जयपुर, मो. 9829799888

# चलें उच्च चेतना की ओर...

सात के अंक की अपनी महिमा है। सात का अंक सम्पूर्णता का अंक है। सप्ताह में सात दिन होते हैं। सातवाँ दिन सप्ताह को पूर्ण करता है। इंद्रधनुष के सात रंग उसे मनोहारी बनाते हैं। सुर भी सात होते हैं। विवाह में सात फेरे लगाए जाते हैं। सप्तर्षि इतिहास में प्रसिद्ध हैं। मानव शरीर के भीतर ऊर्जा का प्रवाह करने वाले चक्र भी सात ही होते हैं।

कितना बड़ा भी कार्य क्यों न हो उसकी मूल्यवत्ता उसकी पूर्णता में ही प्रकट होती है। अधूरा आभूषण, अधूरा मकान या अधूरी सिलाई कितनी भी सुंदर क्यों न हो, उपयोगी नहीं होती। अपूर्णता एक कमी का अहसास है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि सभी अपनी अपूर्णता को दूर कर पूर्णता को वरें।

अपूर्णता को पूर्ण कर पूर्णता की दिशा में जाने का श्रेष्ठ मार्ग है आचार्य श्री रामलाल जी म.सा. के जीवन दर्शन को आत्मसात करना। उनकी बातों को अपने जीवन में उतारना। उनके संकेतों पर आगे बढ़ना। आचार्यश्री का जीवन, उनके प्रवचन, उनके संकेत अपूर्णता से पूर्णता की दिशा में ले जाने वाले हैं। अधिकतम लोग पूर्णता की दिशा में जाएं, पूर्णता को प्राप्त करें, पूर्णता को वरें, इसके लिए साधुमार्गी पब्लिकेशन आचार्यश्री के जीवन दर्शन को, उनकी वाणी को जन-जन तक पहुँचाने की भावना रखता है। अपना कर्तव्य समझता है। इसी भावना और कर्तव्य के तहत आचार्यश्री के प्रवचनों को पुस्तक के रूप में लोगों तक पहुँचाने के प्रयास में निरंतर लगा हुआ है। उसी कड़ी में 'सातवीं झील' के नाम से आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के प्रवचनों की यह पुस्तक प्रस्तुत है। सन् 2022 में उदयपुर चातुर्मास के दौरान और उसके बाद उसी शहर के विभिन्न स्थानों पर फरमाए गए प्रवचनों की यह सातवीं पुस्तक है। इससे पूर्व 2022 के चातुर्मास की छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यह सातवीं पुस्तक सहयोग करेगी 'सुखी जीवन का सूत्र' बताने में। यह सहयोग करेगी यह बताने में कि 'किसे बनाएं अपना सहयोगी।' यह बताएगी कि 'दिव्यता का दर्शन दिल से' होता है। यह भी बताएगी कि 'अविद्या है दु:ख का मूल।' इतना सब

जानने और उसे अपनाने के बाद यह पुस्तक चेतना के उच्च स्तर तक पहुँचाने में उसी प्रकार सहयोगी होगी, जिस प्रकार शरीर के भीतर ऊर्जा का प्रवाह करने वाले सात चक्रों में से सातवाँ चक्र (सहस्रार चक्र) उच्च चेतना तक पहुँचने में मदद करता है। उच्च चेतना की अनुभूति करने के लिए यह राजमार्ग पर दौड़ाएगी। आप भी इस राजमार्ग के पथिक बनिए और दूसरों को भी सहयोग करिए।

इस पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बताएं, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

**संयोजक**

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

# संघ के प्रति अहोभाव

**हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!**

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**सातवीं झील**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

**- अर्थ सहयोगी -**

गुप्त

# विषयानुक्रमणिका


| क्र. सं. | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | मेरा आनन्द पर के अधीन | 07 |
| 2. | अपने जीवन के जौहरी बनें | 15 |
| 3. | वृक्ष बीज का परिणाम है | 25 |
| 4. | यूं प्रभु से प्रीत लगे | 29 |
| 5. | जो करें, आत्महितार्थ करें | 38 |
| 6. | सच्चे सुख का राजमार्ग | 46 |
| 7. | प्रभु निहालूं तेरा पथ | 58 |
| 8. | दिव्यता के दर्शन दिल से | 71 |
| 9. | शांति का मार्ग उपशम | 87 |
| 10. | सही समझ सदा सुखदायी | 97 |
| 11. | अविद्या है दु:ख का मूल | 111 |
| 12. | अजेय बनने की साधना | 123 |
| 13. | मन पात्र बने सुपात्र | 136 |
| 14. | दृष्टि मंजिल पर हो | 143 |
| 15. | साधना का प्राण समर्पणा | 145 |
| 16. | किसे बनाएं अपना सहयोगी | 155 |
| 17. | प्रेरणा पाथेय बने | 159 |
| 18. | सुखी जीवन का सूत्र | 161 |
| 19. | परिश्रम का परिणाम | 166 |
| 20. | अचल-अटल अविकारी बनो | 180 |
| 21. | समर्पण से तर्पण | 192 |
| 22. | समर्पण से जगती शक्ति | 203 |

# 1

# मेरा आनन्द पर के अधीन

**ध्रुवपद रामी हो स्वामी! माहरा...**

एक पंक्ति में सार प्रस्तुत कर दिया गया है। निष्कर्ष रख दिया गया है कि ध्रुवपद की अवस्था में रमण करने वाले मेरे स्वामी हैं तीर्थंकर देव। इस पंक्ति का निचोड़ है कि मेरे स्वामी ध्रुवपद में रमण करने वाले हैं। ध्रुवपद यानी सदा विद्यमान रहने वाला।

संसार के लिए कहा गया है

**'अधुवे असासयम्मि'**

अर्थात् संसार अध्रुव है। अशाश्वत है। दूसरे शब्दों में कहें तो संसार ध्रुव भी है क्योंकि वह सदा विद्यमान रहने वाला है। संसार कभी समाप्त नहीं होगा। संसार सदा रहेगा। भूत में भी था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा, किंतु ध्रुवपद की दशा संसार में नहीं मिलती। उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन संसार का स्वरूप है।

**ध्रुवपद रामी हो स्वामी! माहरा...**

धुव्रपद यानी सदा अव्याबाध सुख में रमण करने वाला। अव्याबाध सुख कभी विलुप्त नहीं होगा। सुख की आकांक्षा, सुख की अभिलाषा हमें बेतहाशा भाग-दौड़ कराती रहती है। हम दौड़-भाग में लगे रहते हैं किंतु वह सुख नहीं मिलता। आत्मसमाधि प्राप्त नहीं हो पाती। आकांक्षा-अभिलाषा के थमने पर हमारी भाग-दौड़ थम सकती है। उस समय हम पूर्ण विश्राम में आ सकते हैं। वह विश्राम सदा-सदा के लिए शुद्ध अवस्था में प्राप्त होगा। इसलिए कहा गया है- 'ध्रुवपद रामी हो स्वामी! माहरा' अर्थात् मेरे स्वामी ध्रुवपद में रमण करने वाले हैं। अध्रुव-अशाश्वत में दुनिया रमती है पर, उसमें रमण करने का फायदा क्या?

जो मेरे साथ न चलने वाला है, न रहने वाला है उसकी ममता क्यों। पर हम करते उलटा हैं। शाश्वत के प्रति हमारा लगाव नहीं है। अशाश्वत के पीछे हम भागे जा रहे हैं। दौड़े जा रहे हैं। धन, सम्पत्ति, वैभव के पीछे आदमी दौड़ रहा है। यश, कीर्ति, कामना के पीछे दौड़ रहा है। पद-प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ रहा है।

क्या मिला है अब तक दौड़ने से? इस दौड़ में हमने अपने स्वरूप को खोया जरूर है। हमारा स्वरूप विलुप्त सा हो गया है। हम स्वयं को जान ही नहीं पा रहे और भागमभाग में जिंदगी व्यतीत होती जा रही है।

**'अपूर्व अवसर एवो, क्यारे आवशे'**

वह अपूर्व अवसर हमारी जिंदगी में कब आएगा, जब हम स्वयं का परिचय करने वाले बनेंगे! जब मैं अपनी पहचान करने वाला बनूँगा! वह अवसर कब आएगा जब मेरी पहचान हो पाएगी कि मैं कौन हूँ, मेरा स्वरूप क्या है!

जब अपने अस्तित्व का ज्ञान होगा और उस अस्तित्व पर हमारी आँखें स्थिर हो जाएंगी तब आनंद का स्रोत हमारे भीतर प्रस्फुटित होगा। आनंद का स्रोत हमारे भीतर भरा हुआ है, किंतु अभी उस पर आवरण पड़ा हुआ है। आवरण पड़ा होने से हम आनंद का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं।

एक अमीर सेठ था। उसके पास अथाह सम्पत्ति थी। उसके दुर्दिन आए तो उसकी सम्पत्ति खत्म हो गयी, केवल आभूषण बचे हुए थे। वह आभूषणों को गिरवी रखकर बदले में प्राप्त धन से अपना व्यापार आदि करने लगा।

जो आभूषण गिरवी रखे गये थे वे किसके हैं? वे आभूषण किसके हैं? बात समझ में आयी क्या?

विचार में पड़ गए कि किसका कहें। अपने होंगे या पराये? कौन है उनका मालिक? व्यवहार में जो मालिकपना है वह तो होगा। जिसने आभूषण गिरवी रखे, उनका मालिक वही है, उनका स्वामी वही है। उसके घर में एक फंक्शन था पर वह आभूषण नहीं पहन पा रहा है। वह आभूषणों का मालिक है ना?

वह आभूषण का मालिक है, किंतु आभूषण पहन नहीं पा रहा है।

उसको आभूषणों को पहनने से जो आनंद आने वाला था वह आ नहीं रहा है क्योंकि वे गिरवी रखे हुए हैं। जैसे वे गिरवी रखे हुए है, वैसे ही हमारा आनंद गिरवी पड़ा हुआ है। वह मोह के आधीन है। कषायों के आधीन है। हमारे पास आनंद है, किंतु वह जीवन में प्रकट कब होगा? आनंद की वर्षा हमारे जीवन में कब होगी?

आनंद की वर्षा होगी। यह पक्का विश्वास रखें कि होगी। उसके लिए पुरुषार्थ हमें ही करना पड़ेगा। कोई सीधे रोटी लाकर दे दे, ऐसा नहीं होगा। स्वयं ही कुआँ खोद कर प्यास बुझानी होगी। दुनिया में हमें शुद्ध पानी मिल जाएगा, खाना मिल जाएगा, किंतु मोक्ष का सुख, आत्मा का आनंद अपने आप नहीं मिलेगा। उसके लिए हमें पुरुषार्थ करना होगा। पुरुषार्थ होगा तो ध्रुवपद में रमण करने वाले बनेंगे।

अध्रुवपद का मतलब है कि शुद्ध आत्मा द्रव्य में हमारी दृष्टि केंद्रित हो जाए। कषाय से, योग से हटकर हम केवल द्रव्य आत्मा पर स्थित हो जाएं। यह आसान काम नहीं है। बहुत कठिन काम है, किंतु वीर पुरुष कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना करते हैं। उससे डरते नहीं हैं। हम वीर हैं, कायर नहीं। हम प्रभु वीर की संतान हैं, इसलिए वीरत्व के पथ पर हमें आगे बढ़ना है। वीरता के साथ ध्रुवपद पर हमें अपने आपको केंद्रित करने की आवश्यकता रहेगी।

आशा-शांतिलाल की कहानी में हम सुन गए हैं कि बिछड़े हुए भाई मिल गए। बिछड़ी हुई बेटी मिल गयी। बिछड़ा हुआ जँवाई मिल गया। बिछड़ा हुआ परिवार मिल गया। वह भी हर्ष और आनंद का विषय है, किंतु वह आनंद-हर्ष सीमित है, अशाश्वत है। वह शाश्वत नहीं है। सदा रहने वाला नहीं है। बेटी भी वही है, बाप भी वही है, जँवाई भी वही है। जब तक दृष्टि में अंतर था, तब तक तनाव था। दृष्टि बदल गयी और वातावरण बदल गया। भाई शांतिलाल वही है और डॉक्टर भी वही है। आशा भी वही है। जो सुहाते नहीं थे, अब वही प्रिय लग रहे हैं। ये जीवन के उतार-चढ़ाव की बातें हैं। केवल आशा और शांतिलाल के जीवन की बात नहीं है। प्रत्येक के जीवन में उतार-चढ़ाव आते हैं। उत्थान-पतन का यह रास्ता है। कभी हम ऊँचाइयों पर रहते हैं तो कभी खड्डे में गिर जाते हैं। कभी उत्कर्ष होता है, तो कभी अपकर्ष। दोनों

अवस्थाओं में हम मौजूद होते हैं। ये अवस्थाएं आनी हैं, चली जानी हैं। ये अवस्थाएं हमारा जीवन नहीं हैं। इनसे भिन्न जो ठहरा हुआ है वह हमारा जीवन है। हम अपने आप में एक ठहराव लाने की कोशिश करें। शांतिलाल-आशा के जीवन में भी उतार-चढ़ाव आए, किंतु जब ठहराव आया, तो कोई दु:ख, टेंशन, तनाव नहीं है।

**सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।**

**तावन्त एव खलु तेऽप्यणव: पृथिव्यां,**
**यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति।।**

हमने अभी तक सुना है कि डॉक्टर आया। उसने भाई को देखा और चरणों में गिर गया। भाई ने उठाकर गले लगा लिया। सांत्वना दी। डॉक्टर मन में विचार करता है कि मैं समझ नहीं पाया। मेरा भाई बहुत ही ऊँची धातु का बना हुआ है।

**यै: शान्त-राग-रुचिभि: परमाणुभिस्तवं,**
**निर्मापितस्-त्रिभुवनैक-ललाम-भूत!**

आदिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा जाता है कि भगवान आपका शरीर उन पदार्थों से बना है जो शांत राग वाले हैं। शांत रुचि वाले हैं। इस कारण से देखते ही लोग आकर्षित हो जाते हैं, प्रभावित हो जाते हैं।

डॉक्टर देख रहा है कि मेरे द्वारा किये गये अपकार भी इनके दिल को छू नहीं पाये। वे पहले भी शांत थे, अभी भी शांत हैं। अभी भी मैं देख रहा हूँ कि मन में शल्य नहीं है। मन में कोई बात चुभी हुई नहीं है कि मेरे भाई ने मेरे साथ कैसा अपकार किया, बुरा बरताव किया। सब कुछ डिलीट हो गया है। उनके मन में कोई गर्व नहीं है, मद नहीं है कि धूड़ खाकर आना पड़ा मेरे पास। कौन-से मुँह से मेरे पास आया। बहुत बार आदमी का अहंकार बोलने लगता है कि आखिर मेरे चरणों में आ ही पड़ा।

शांलिलाल इन सब बातों से ऊपर उठ चुका था। यही तो जीवन का मजा है, बाकी तो जीवन की सजा है। यदि हमने गर्व किया तो जीवन सजा है। दु:खी हुए तो जीवन की सजा है। हर्षित होंगे तो भी जीवन की सजा है। हर्षित होना भी थोड़े समय का खेल है। ये अवस्थाएं आती रहेंगी। परिस्थितियां बदलती रहेंगी, किंतु हम नहीं बदलें। हम ज्यों-के-त्यों बने रहें। यह बड़ी

महत्वपूर्ण बात होगी। नहीं बदलने का मतलब है कि न राग की ओर दौड़ें, न द्वेष की ओर। न राग में डूबने की कोशिश करें, न द्वेष में भटकने की। अपनी शांति बनाए रखें।

समुद्र में आने वाली तरंगें ऊपर-ऊपर ही आती हैं। गहराई में नहीं आती। समुद्र की गहराई में जाने पर समुद्र शांत-प्रशांत मिलेगा। वैसी ही शांत-प्रशांत अवस्था हमारी बनी रहनी चाहिए। ऊपर की अवस्थाएं आती-जाती रहेंगी। हमें व्यवहार में जीना है, किंतु उस व्यवहार का प्रभाव हम पर नहीं पड़ना चाहिए। प्रभाव पड़ेगा तो दु:खी होंगे। अहंकार करेंगे, अभिमान करेंगे तो दु:खी होंगे। प्रभाव नहीं होगा तो हमारे भीतर कोई अंतर नहीं आएगा। चाहे कितने भी शुभ अवसर रहे हों, सारे अवसर क्षणिक हैं। जब हमारा जीवन भी अधिक समय तक नहीं चलने वाला है, तो ये अवस्थाएं कहाँ से टिकेंगी! सारी स्थितियाँ, सारी घटनाएं, सारे प्रसंग पीछे छूटने वाले हैं। इनको पकड़ो मत। इन्हें पकड़कर बैठने वाला यहीं अटक जाएगा। हमें बहुत आगे बढ़ना है।

हम आते हैं डॉक्टर की बात पर। डॉक्टर आश्चर्यचकित होता है कि मैं अपने अपराधों पर दु:खी हो रहा हूँ, मुझे शर्मिंदगी हो रही है, किंतु भैया के जीवन में कोई अहंकार नहीं दिख रहा। कोई शिकवा-शिकायत जैसी बात नहीं नजर आ रही। एकदम निश्छल जीवन है। यह वातावरण चल ही रहा था कि गुरु भगवंतों के आने की सूचना मिली। सूचना मिली कि गाँव में संतों का आगमन हुआ है। सूचना मिलते ही शांतिलाल का हृदय विभोर हो गया। मन मयूर नाचने लगा। उसका मन बोल उठा कि धन घड़ी, धन भाग जो आज संत-महात्मा के दर्शनों का योग मिलेगा। प्रवचन सुनने का अवसर मिलेगा। उसका हृदय प्रफुल्लित हो रहा है। वह खुश हो रहा है।

साधुओं की संगति से वीतराग वाणी सुनने का मौका मिलता है। ज्ञान से विज्ञान होता है। अपनी जिज्ञासा का समाधान मिलता है। उनसे प्राप्त ज्ञान विकसित होता है और अंत में वह हमें मुक्ति दिलाने वाला होता है। सिद्धि दिलाने वाला होता है। इसलिए शांतिलाल का हृदय प्रफुल्लित हो रहा है।

धर्म से संरक्षित मन वाले, संतों का सहयोग पाने के लिए, उनकी धर्मवाणी सुनने के लिए आतुर रहते हैं। उनके मन में संतों के दर्शन की लालसा बनी रहती है। अभिलाषा बनी रहती है। वे संतों की वाणी सुनने के अवसर की

तलाश में रहते हैं।

एक मिनट समीक्षण करेंगे। एक बार समीक्षण करेंगे। मान लीजिए आपको दो संदेश लगभग एक साथ मिले। एक संदेश है कि आपको एक करोड़ रुपए का लाभ हुआ है या सरकार की तरफ से बहुत बड़ा ओहदा मिला है और दूसरा संदेश मिला है कि संतों का आगमन हुआ है, संतों का प्रवचन होने वाला है। किस संदेश से आपका मन हर्षित होगा? कौन-सा समाचार हर्षित करने वाला होगा?

(एक श्रोता- संतों का प्रवचन सुनेंगे)

सच्ची बात बताना। ऐसा नहीं कि मैं सामने बैठा हूँ, इसलिए बोल रहे हो। मेरे सामने मेरी बात कर रहे हो और दूसरे के सामने उसकी बात कर दो, ऐसा गिरगिट की तरह रंग नहीं बदलना। एक करोड़ रुपए का लाभ मिलेगा, किंतु आपको हाथोंहाथ जाकर हस्ताक्षर करना पड़ेगा। अब व्याख्यान में आना या हस्ताक्षर करने जाना? कोई सूचना दे तो मालूम पड़े। कल एक सूचना आई तो लोग व्याख्यान से उठकर गए या नहीं? आप कहेंगे ऐसी बात में जाना ही पड़ता है। अभी कोई सूचना दे दे कि मुख्यमंत्री अशोक जी साहब का फोन आया और आपको बुलाया है तो आप जाएंगे या नहीं?

हकीकत बात है कि जिसकी जिसमें रुचि होगी, उसको उसमें ही आनंद आएगा। धन की तरफ हमारी आँखें लगी हुई हैं तो धन मिलने के समाचार हमें प्रसन्नता देने वाले होंगे। मन को हर्षित करने वाले होंगे। यदि परिवार में संतान नहीं है, पहली संतान हो रही है तो वह संदेश हमें मन को प्रसन्नता देने वाला होगा। सच्ची बात तो यही है।

भरत चक्रवर्ती को तीन सूचनाएं मिली थी। भगवान आदिनाथ को केवलज्ञान होना, पुत्र रत्न की प्राप्ति होना और आयुधशाला में चक्ररत्न पैदा होना। सबसे पहले उन्होंने केवल्य महोत्सव का आयोजन किया। संसार के संयोग मिलते रहेंगे पर धर्म दुर्लभ है। हमें बड़ी सुलभता से मिल गया, इसलिए हम इसकी कदर वैसी नहीं कर पाते जैसी की जानी चाहिए। मैं जहाँ तक समझता हूँ, इसका एक कारण यह है कि धर्म का जो स्पर्श हमसे होना चाहिए था वह नहीं हो पाया है।

हमें पारस पत्थर मिल गया, लोहा भी मिल गया। हमने पारस पत्थर

का लोहे से स्पर्श भी कराया, किंतु लोहा सोना नहीं बना। क्योंकि लोहे पर जंग लगी थी। जंग लगने से लोहे पर पारस पत्थर का स्पर्श होने से भी वह सोना नहीं बना। जंग हटाकर पारस पत्थर का स्पर्श कराने पर लोहा सोना बन जाता। हमारा जीवन भी लोहे के समान है। धर्म, पारस पत्थर के समान है। हम पर कषाय रूपी जंग लगी है। कषाय रूपी जंग को हटाकर पारस पत्थर का स्पर्श होगा, तो हमारा जीवन आनंदित हो जाएगा। प्रफुल्लित हो जाएगा। हर्ष से विभोर हो जाएगा।

वैसे ही हर्ष से विभोर हो जाएगा, जैसे तीन दिन का भूखा व्यक्ति सामने षट्रस भोजन देखकर होता है। भूखे व्यक्ति ने भले ही अभी तक एक भी कवल मुँह में नहीं डाला हो, किंतु उसे हर्ष होगा। उसे प्रसन्नता होगी। उसकी आँखें उन पदार्थों को देखने के लिए लालायित रहेंगी। आँखें उन पर गड़ जाएंगी। जब वह भोजन को ग्रहण करेगा और स्वाद आएगा तो उसकी तीन दिन की भूख मिट जाएगी। उसका मन शांति का अनुभव करेगा। उसी तरह सम्यक् दृष्टि जीव, धर्मानुरागी जीव, तत्त्व के प्रति, संत वाणी के प्रति लालायित रहता है। वह लालायित रहता है कि मुझे धर्म सुनने का मौका मिले। दुनिया में बहुत-सी चीजें मिल जाएंगी, मिल जाती हैं किंतु जिनवाणी, आत्मा का शोधन करने वाली वाणी, आत्मशांति देने वाली वाणी मिलना दुर्लभ है। मुश्किल है।

शांतिलाल विचार करता है कि परमार्थ का परिचय करने का मौका मिला है। आत्मभावों से पर्युपासना करने का अवसर प्राप्त हुआ है। शांतिलाल तन्मय हो गया। मन-ही-मन उसकी भाव तरंगें उठ रही हैं। उसने कहा-

भैया चलो, हम चलते हैं, संत-महात्माओं के दर्शन का योग है। उनके दर्शन कर, उनकी वाणी सुनें। इस प्रकार से शांतिलाल अपने भाई से कह रहा है। परिवारवालों से बोल रहा है। वे क्या जवाब देते हैं, क्या उत्तर देते हैं, क्या उनकी भावना होती है, क्या वे बोलते हैं, ये बातें हम समय के साथ विचार करने की स्थिति में रहेंगे, किंतु यह बात जरूर है कि जब भक्ति हृदय में व्याप्त होने लगती है, तो वह व्यक्ति को बैठने नहीं देती। वह उसको खींचेगी कि चलो-चलो। वही दशा शांतिलाल की बन गई है।

महासती श्री शांताकंवर जी म.सा. के संथारे का आज 36वाँ दिन हो

रहा है। हमारी तमन्ना भी बनती होगी दर्शन करने की। हम भी दर्शन-लाभ लेते होंगे। दर्शन करने पर क्या अनुभव करते हैं, क्या विचार बनते हैं, क्या भावना बनती है, उस पर हम गौर करें। गौर करें कि मेरी भावना में क्या बदलाव आ रहा है! उसका ग्राफ कैसा बनता है! अहोभाव कैसा बनता है! इस प्रकार से हम अपने आपको भावित करेंगे, अपने आपको प्रभावित करेंगे, खुद को साधने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें समाधि मिलेगी।

वक्ताओं की बातें आपने सुनीं। कई विचार आपके सामने आए। उन बातों का सार, निष्कर्ष, निचोड़ हमारे लिए पाथेय रूप हो तो हम स्वीकार करें और अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

7 नवम्बर, 2022

# 2

# अपने जीवन के जौहरी बनें

**श्री महावीर नमो वरनाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी...**

एक माता अपनी संतान को एक रत्न देते हुए कहती है, बेटा! तुम्हारे पिता के मित्र जौहरी हैं, उनकी पेढ़ी पर जाओ और इस रत्न को बेचकर पैसे ले आओ। बालक रत्न लेकर गया और जौहरी से कहा कि चाचा! इस रत्न को बेचना है। जो भी इसकी कीमत हो, दे दो, हमें पैसों की आवश्यकता है।

जौहरी ने रत्न हाथ में ले कर देखा और कहा कि बेटा! कभी कोई बढ़िया जौहरी आएगा जेवरात खरीदने वाला, उस समय इसका विक्रय करेंगे। अभी इसे अपने घर पर रखो। तुम्हें जो पैसे चाहिए वह ले जाओ और तुम स्वयं पेढ़ी पर बैठो, रत्न के पारखी बनो, जौहरी बनो।

वह युवक पेढ़ी पर बैठने लगा। रत्नों को देखने लगा। कुशाग्र बुद्धि से जल्द ही रत्नों का पारखी बन गया।

एक दिन जौहरी ने उससे कहा कि बेटा! बाहर के जौहरी आए हुए हैं, अब तुम घर से रत्न ले आओ। उसको बेचने का आज विचार कर सकते हैं। वह आज बेचा जा सकता है।

वह घर गया, रत्न निकाला और देखा। देखने के बाद उसने उस को फेंक दिया। समझ गए होंगे आप कि उसने रत्न क्यों फेंका! जब तक उसने समझा नहीं था कि रत्न क्या होता है, तब तक घर में रत्न को सहेज कर रखा। रत्नों का पारखी बनने के बाद जब उसने अपने रत्न को देखा तो उसे लगा कि यह तो काँच का टुकड़ा है। यह तो सामान्य पत्थर है। यह रत्न नहीं है। अनावश्यक इतने दिन तक इसको रत्न समझकर चल रहा था।

यह हकीकत है। कृत्रिम नहीं है, काल्पनिक नहीं है। वह माता थी लोकाशाह की और बेटा था लोकाशाह। लोकाशाह छोटी उम्र में जौहरी बन

गए। वे न केवल रत्नों के जौहरी बने, बल्कि धर्म के भी जौहरी बने।

लोकाशाह की लिखावट बड़ी सुंदर थी। उनकी सुंदर लिखावट देखकर संत-भगवंतों ने कहा कि तुम्हारे अक्षर बढ़िया हैं, तुम्हें शास्त्रों का जीर्णोद्धार करना है। उनकी प्रतियाँ लिखनी हैं। पहले ग्रंथ हस्तलिखित होते थे। लोकाशाह ने उन ग्रंथों को लिखना शुरू किया। ग्रंथों का पुनर्लेखन करते समय उनको बड़ा ताज्जुब हुआ। ताज्जुब इस बात का हुआ कि शास्त्र कुछ और कह रहे हैं जबकि हमारे आचार्य, हमारे संत कुछ और बोल रहे हैं। दोनों में अंतर है। वे संतों से जिज्ञासा व्यक्त करने लगे कि दशवैकालिक क्या बोल रहा है, आचारांग क्या बोल रहा है। वहीं से उन्होंने शुद्ध धर्म की आराधना करने का प्रयत्न किया। उनके सामने बहुत सारी कठिनाइयाँ आई, किंतु वे डटे रहे। पीछे नहीं हटे।

चातुर्मास काल व्यतीत हो रहा है। हमने धर्म तत्त्व की पहचान की या नहीं की, हम अपने जीवन के जौहरी बन पाए या नहीं, हमें इसकी समीक्षा करनी चाहिए। समीक्षा करेंगे तो समाधान मिलेगा। यदि हम अपने जीवन के जौहरी बन गए हैं तो बहुत अच्छी बात है। यदि अपने जीवन के जौहरी नहीं बन पाए हैं, तो हमारी आँख में वह तासीर आनी चाहिए कि हम अपने जीवन के जौहरी बन सकें।

आज का युग सर्टिफिकेट का युग है। प्रमाण-पत्र का युग है। डिग्री मिल जाने पर, सर्टिफिकेट मिल जाने पर लोग सोचते हैं कि मैं डिग्री वाला हो गया। डिग्री और सर्टिफिकेट पैसों के आधार पर भी बिक रहे हैं। मिल रहे हैं। हम डिग्री तो प्राप्त कर रहे हैं किंतु हमारा जीवन शून्य में जा रहा है। जब तक स्वयं से सर्टिफिकेट नहीं मिलेगा, अपने अन्तर्मन से प्रमाण-पत्र नहीं मिलेगा, तब तक समाधिस्थ नहीं हो पाएंगे। समाधि तब मिलेगी, जब हमें अन्तर् से सर्टिफिकेट मिलेगा। बाहर का सर्टिफिकेट, बाहर का प्रमाण-पत्र हमारे जीवन को पारखी नहीं बना सकता। उससे हम अपने जीवन के परीक्षक नहीं बन सकते। लोकाशाह अपने जीवन के पारखी बने और जीवन को सही दिशा में आगे बढ़ाया। वैसे ही हमें अपने को पारखी बनना है। धर्म की परीक्षा करनी है।

**धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।**

अहिंसा जिसका प्राण हो, अहिंसा जिसका तत्त्व हो, वही धर्म हो

सकता है। आचार्य हेमचंद्र जी कहते हैं कि 'न धर्महेतोर्विहितापि हिंसा' अर्थात् धर्म के नाम पर की गई हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकता। हिंसा को धर्म का जामा नहीं पहनाया जा सकता है। हिंसा, हिंसा ही रहेगी और अहिंसा, अहिंसा ही। जिसमें अहिंसा की पुष्टि होती है, जिसमें अहिंसा खिलती है, वह धर्म होगा। यह पहचान हमें कर लेनी चाहिए।

चातुर्मास के पूर्णता के प्रसंग पर अनेक वक्ताओं ने अपने-अपने भाव, अपने-अपने विचार व्यक्त किए। आपने जुदाई, रुलाई, विदाई जैसे शब्द सुने। चातुर्मास व्यवस्था समिति के संयोजक सागर जी गोलछा ने कहा कि गम की दास्ता आ गई। मुझे इस पर विचार आया कि जब वे किसी की लड़की को उसके घर से विदा कराके लाए उस समय गम की दास्ता नहीं बनी क्या! वहाँ से भी विदाई हुई या नहीं हुई!

किसका जीवन विदाई से नहीं जुड़ा है? बताओ किसका जीवन जुदाई से नहीं जुड़ा हुआ है? यह संसार का रिश्ता है, फिर भी लोगों को विदाई बड़ी कठिन लगती है। हकीकत में जब हम विदाई पर विचार करते हैं तो वह कठिन होती भी है। विदाई का मतलब है 'विशेष रूप से दायित्व का निर्वाह करना।' यह संकल्प मन में जगना चाहिए कि जो मेरा दायित्व है उसका ईमानदारी पूर्वक, विशेष रूप से निर्वाह करना है।

जिम्मेदारी बहुत कठिन होती है। ईमानदारी से उसका निर्वाह करना आसान नहीं होता है, किंतु सारी कठिनाइयाँ खड़ी होती हैं उसके लिए जो व्यक्ति हिम्मत हार जाए।

## हिम्मत-ए-मर्दा, मदद-ए-खुदा

जिसके भीतर हिम्मत है उसे खुदा से मदद मिलेगी। जिसकी हिम्मत पस्त हो जाए वह कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं होगा। योग, संयोग और वियोग होते रहते हैं। आगे भी होते रहेंगे। कील के साथ रहा हुआ अनाज अखंड रह जाता है। दो पाटों के बीच जो अनाज चला जाता है, वह पिसकर मैदा हो जाता है, आटा हो जाता है। राग-द्वेष के दो पाटों के बीच हम पिसते हुए चले जाएंगे तो हमारा भी अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। हम अपने जीवन को अक्षुण्ण रखने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। जब कील के साथ जुड़कर रहेंगे तो अखंडित बने रहेंगे। अक्षुण्ण रहेंगे। फिर राग-द्वेष हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं

कर पाएंगे।

राग-द्वेष कमजोर व्यक्ति पर हावी होते हैं। शूरवीरों पर उनका वश नहीं चलता। जैसे शरीर में प्रतिरोधात्मक क्षमता कम हो तो बीमारी घेरती है, वैसे ही हमारा मन कमजोर होगा तो उसमें राग-द्वेष प्रवेश करने के लिए तैयार रहेंगे। मन मजबूत रहेगा तो राग-द्वेष वहाँ प्रवेश नहीं कर पाएंगे। वे हमें पीस नहीं पाएंगे। अत: हमारा प्रयत्न रहना चाहिए कि हम राग-द्वेष के विजेता बनें। छोटी-मोटी बहुत-सी बातें हमारे सामने आएंगी। कई जगह कुछ सुनना होता है, समझना होता है। कहीं चुप रहना होता है, तो कहीं बोलना भी होता है। देखना यह होगा कि समझना-सोचना कहाँ पर व चुप कहाँ पर रहना है और बोलना पड़े तो कहाँ पर बोलना। यदि इन चारों बातों की हमें समझ हो गई तो हम कहीं भी अटकेंगे नहीं। जहाँ बोलने की जरूरत है वहाँ बोलना और जहाँ चुप रहने की जरूरत है वहाँ चुप रहना है। जहाँ सोचने की जरूरत है वहाँ सोचना और जहाँ समझने की आवश्यकता है वहाँ समझना है। जीवन निर्वाह के लिए चार अवस्थाएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं; सोचना, समझना, बोलना और चुप रहना। ये समाधि के लिए बहुत आवश्यक तत्त्व है। हर वक्त बोलते रहने वाले की कदर नहीं होती।

आप घड़ी के उदाहरण से इसको समझ सकते हैं। घड़ी के काँटे चलते ही रहते हैं, उससे टक-टक की आवाज आती रहती है। उस टक-टक पर किसी का ध्यान नहीं जाता, किंतु जैसे ही घड़ी का घण्टा बजता है, लोगों के कान खड़े हो जाते हैं कि कितने बजे होंगे। घण्टे को सुनने के लिए आदमी तैयार हो जाता है, किंतु टक-टक की आवाज सुनने के लिए तैयार नहीं होता। वैसे ही हम यदि बे-वक्त बोलते रहेंगे, तो बोलना सार्थक नहीं होगा। वह निरर्थक भी नहीं होगा। वह बोलना बिगाड़ करने वाला होगा। समय पर यदि नहीं बोलें तो भी बिगाड़ होने की संभावना रहती है। इसलिए कब बोलना और कब नहीं बोलना है, इसका विज्ञान हमें होना चाहिए। यह ज्ञान होना चाहिए कि कब बोलना है और कब मौन रहना है।

कुछ बातें तत्काल समझ में आती हैं, तो कई बातों पर देर तक सोचना भी आवश्यक हो जाता है। हमारा मन सोचने के लिए भी तैयार रहे और समझने के लिए भी। बोलने के लिए भी तैयार रहे और चुप रहने के लिए भी।

यह नहीं सोचें कि अमुक के कहने से मेरा अपमान हो गया, अब मुझे जवाब देना है। हमने अपमान माना तो पीड़ा होगी इसलिए अपमान नहीं मानें। बच्चे दाढ़ी और मूँछ के बाल खींच लेते हैं, चाँटा लगा देते हैं, वैसी स्थिति में बच्चे को मारा नहीं जाता।

बादशाह अकबर ने एक बार अपने दरबारियों से पूछा कि कोई मुझे चाँटा लगा दे, तो उसे क्या दंड दिया जाना चाहिए?

अलग-अलग लोगों ने दंड व्यवस्था बतानी शुरू की। किसी ने कहा, जान से मार देना चाहिए, तो किसी ने कहा कि हाथ काट देना चाहिए। किसी ने कहा कि अंगुली काट देनी चाहिए। बीरबल चुपचाप बैठा था।

बादशाह ने कहा, बीरबल! तुम्हारा क्या मन्तव्य है?

बीरबल ने कहा, हुजूर उसे प्यार करना चाहिए। उसको गोद में लेकर, उठाकर सीने से लगाना चाहिए।

अन्य लोगों ने कहा, बादशाह सलामत ऐसा कैसे होगा?

बीरबल ने कहा, हुजूर! किसकी ताकत है जो आपको चाँटा लगा दे। कोई शहजादा ही ऐसा कर सकता है, अन्य व्यक्ति की कहाँ हिम्मत होगी?

बालक को नादान मान लेने पर, अपना मान लेने पर चाँटा प्रेम का लगता है। वही दृष्टि हमारी यदि अन्यत्र रहेगी तो समस्या खड़ी नहीं होगी, किंतु जैसे ही हमारी दृष्टि बदलती है, हमारी सोच बदल जाती है। सोच बदलती है तो उसका परिणाम सही नहीं आ पाता। उसका परिणाम बिगाड़ के रूप में आ जाता है। बिगाड़ न हो इसलिए यदि कोई हमारा अपमान करे, तो हमारे मन में मेरा अपमान हो गया, ऐसी भावना नहीं जगे। हमारे मन में उसके प्रति भी वात्सल्य भाव प्रवाहित होता रहे।

आशा और शांतिलाल का चारित्र आपने सुना। उसके चारित्र के माध्यम से बहुत सारी बातें सुनी।

**सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।**

शांतिलाल ने सुना कि संत-महापुरुषों का आगमन हुआ है। वह रोमांचित हो गया, हर्षित हो गया। हर्षित होते हुए वह भाई सुरेश से कहता है, भैया! संत-महापुरुष पधारे हैं। संतों के दर्शन करने चलते हैं। उनके व्याख्यान सुनने चलते हैं।

सुरेश ने अभी तक साधु-साध्वियों से कोई विशेष सम्पर्क नहीं किया था। भाई से मिलने पर उसके भी शुभ भाव जगे, शुभ अध्यवसाय बने और वह चला गया संतों के सान्निध्य में।

संतों ने कर्मों की दशा का विचित्र खाका खींचा। बताया कि आदमी कैसे हँस-हँसकर कर्मों का बंध कर लेता है किंतु जिस समय उनका उदय होता है, जब व्यक्ति को वेदना होती है तो बहाने ढूँढने की कोशिश करता है। तब लगता है कि ये कर्म, ये दु:ख मेरे जीवन में क्यों आ रहे हैं!

मुनिराज की वाणी सुनकर शांतिलाल हर्षित हो रहा था। मुनिराज ने गजसुकुमाल, अर्जुन माली के उदाहरणों के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार से बोध कराया। यह भी बताया कि कर्मों की परम्परा अनादिकाल से चल रही है। हम निरंतर कर्मों का बंध करते जा रहे हैं। कर्मों के उदयकाल में जो व्यक्ति समता रख लेता है, शांत बना रहता है, वह कर्मों की प्रक्रिया का विच्छेद करने में समर्थ होता है। कर्म के बंध की प्रक्रिया का विच्छेद करने में वही समर्थ है, जो समता से उनका वेदन कर ले। भाव कर्मों का विच्छेद होगा तो द्रव्य कर्म अपने आप दूर होने वाले बन जाएंगे।

शांतिलाल ने गुरु भगवंत की वाणी सुनी। उससे अब तक शांतिलाल के दिल में भरा हुआ संवेग छलक गया। वह संवेग और निर्वेद के झूले में झूलने लगा। उसे दुनियादारी से अब कोई मतलब नहीं रहा। भेद विज्ञान की दिशा में उसकी विचारधारा प्रवाहित होने लगी।

**न सा महं नो वि अहं पि तीसे**

- दशवैकालिक 2

उसके मन में विचार आ गया कि मैं किसी का नहीं हूँ। कोई मेरा नहीं है। सारे रिश्ते संयोगजन्य हैं और ये संयोगजन्य रिश्ते ही एक दिन वियोग में परिवर्तित होते हैं। संयोग-वियोग से ऊपर उठकर मैं अपनी आत्मा को समाहित कर लेना चाहता हूँ। शांतिलाल उठकर गुरु भगवन् के चरणों में गिरकर वंदना-नमस्कार करता है और कहता है-

**आलितेणं भंते लोए, पल्लितेणं भंते लोए...**

अर्थात् मैं संसार से उद्विग्न बना हूँ। आप मुझे तारें। मुझे भव से पार करें। आप मेरे जीवन की नैया के खिवैया बनें। वह कहता है, भगवन्! मैं शीघ्र

ही अपने घर की व्यवस्था ठीक कर आपके चरण स्वीकार करना चाहता हूँ। मुझे संयमी जीवन रुचिकर है। वही मेरी दृष्टि-आधार है। वह कहता है कि अब मैं संयम के बिना नहीं रह सकता।

गुरु भगवंतों ने हाथ ऊँचा किया और कहा कि जैसा सुख हो, वैसा सोचो।

शांतिलाल, आशा के अभिमुख होता है और कहता है, आशा! मैं संयम धन का प्यासा हूँ। काफी समय से मेरे विचार निर्वेद भावों में चलते रहे हैं। बस, अब तुम्हारी अनुमति चाहिए। गुरु भगवंतों का सान्निध्य निमित्त बन गया। मेरे भव-भव की प्यास बुझ जाएगी। आशा तत्त्व को समझ रही थी। वह कुछ बोले उससे पहले ही सुरेश खड़ा होकर बोलने लगा।

**मिला वर्षों से मेरा भाई, नहीं सुहाती मुझे जुदाई।**
**पकड़े उसके पाँव भविकजन, सत्य सदा जयकार।।**

सुरेश ने शांतिलाल के पाँव पकड़ लिए और कहा, भैया! ऐसा नहीं हो सकता। आज वर्षों के बाद आप मिले हो और आज ही जुदाई की बात कर रहे हो। यह बात मुझे नहीं सुहाती, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप निश्चिंत हो जाइए, मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं आपके साथ रहूँगा। मैं आपके साथ परछाईं बनकर रहूँगा। चाहे कितने भी कष्ट आ जाएं, संकट आ जाएं, विपत्तियाँ आ जाएं, उनको मैं झेलूंगा पर मैं आपका साथ नहीं छोड़ूंगा। अब आपको कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। मैं आपकी पूरी सेवा करूँगा। सेवा करना मेरा फर्ज है। आप यहाँ रहें और मुझे सेवा करने का मौका दें।

शांतिलाल कुछ समझाने के लिए तैयार होता है, किंतु सुरेश कहता है कि भैया, आप मुझे समझाने की बात मत करो। आप स्वयं निर्णय करो। आज ही तो हमारा मिलना हुआ और आज ही आप दीक्षा की बात कर रहे हो। ऐसा निर्णय क्या सचमुच सही है! दोनों भाइयों के बीच चर्चा चल रही है। शांतिलाल किस तरह से सुरेश को समझाएगा, सुरेश का क्या निवेदन रहता है, इसके लिए अभी हम थोड़ा इंतजार करेंगे तो ठीक रहेगा, क्योंकि समय के साथ आगे की बात कहना ठीक होगा।

यहाँ पर भी किसी की भावना जग गई हो, तो अपने भाई से बात कर सकते हैं। अपनी पत्नी से बात कर सकते हैं। क्या पड़ा है संसार में! सार, सार

संसार में जो निकाल ले उसकी मरजी, नहीं तो सारा सार, असार में परिणत हो जाएगा।

इधर महासती श्री शांताकंवर जी म.सा. के तिविहार संथारे के 36 दिन पूरे हुए। वैसे सामान्यत: कल शाम को उनको चौविहार संथारा पच्चक्खा दिया था, किंतु वह जब तक, तब तक के लिए पच्चक्खाया था। सुबह वहाँ जाने का प्रसंग बना और चौविहार संथारा पच्चक्खाने का प्रसंग बना। वह अपनी शांत अवस्था में विराजित हैं। हमारे लिए प्रेरणा का प्रसंग है। ऐसी प्रेरणा जो बोलने से नहीं मिलती, मुख से नहीं मिलती। हम ऐसी महासतियों से प्रेरणा लें।

महासतियों ने, संतों ने अपनी-अपनी बात व्यक्त की। जो कुछ भी प्रसंग है, कर्म निर्जरा के लिए हमने साधु जीवन स्वीकार किया। समाधि भावों के लिए हमने साधु जीवन स्वीकार किया है। शासन सेवा के लिए अपने आपको समर्पित किया है। जब जहाँ जिसकी जरूरत होती है, वैसी हम शासन सेवा में तत्पर रहे हैं और रहेंगे। इन सारी बातों से हम सभी सहमत हैं। चाहे साधु-साध्वी हो या श्रावक-श्राविका। किसी की भी जिम्मेदारी हम लेने के लिए तैयार होते हैं।

वैसे आशीष जी सहलोत बोल गए कि ''होली चातुर्मास तक की हमारी जिम्मेदारी है।'' यह भी कह दिया कि उदयपुर साधुमार्गियों का गढ़ है। सबसे बड़े संघ की जिम्मेदारी क्या होती है? होली तक की जिम्मेदारी है या हमेशा के लिए है?

(श्रोताओं ने कहा- हमेशा के लिए है)

साधु-साध्वी पूजनीय हैं। उनका ज्ञान, दर्शन, चारित्र कैसे बढ़े, कैसे उनकी सुरक्षा हो, इसके लिए सभी संघों के सदस्यों को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। यह मानकर चलना चाहिए कि ये संत-सतियाँ जी महावीर भगवान के रत्नों की पेटियाँ हैं। इन पेटियों की सुरक्षा करना श्रावकों की जिम्मेदारी है। श्रावक यदि शिथिल हो जाएगा, हवा में बहने लगेगा तो साधु जीवन की सुरक्षा होना कठिन हो जाएगी।

चातुर्मास के लिए उदयपुर आना हुआ और साधु-साध्वियों का जखीरा...

जखीरा ही बोलूँ... और क्या बोलूँ...

उदयपुर वालों का दिल धड़कने लगा होगा कि इतने साधु-साध्वियों की कैसे व्यवस्था करेंगे! क्या होगा! कैसे होगा! किराए का मकान होना नहीं। बिना किराए के मकान और उसमें भी फिर कल्प के मकान। बहुत सारी कठिनाइयाँ थीं, किंतु हमारे श्रावकों ने शांति से अपनी जिम्मेदारी का वहन किया।

उदयपुर सेक्टर 4 के इस प्रांगण से पहले भी मैं परिचित रहा। गुरुदेव के साथ पहले भी मेरा यहाँ आना हुआ है। पहले यहाँ न कोई खिड़की थी, न कोई दरवाजा। खुली जमीन थी। मकान का खाका खींचा हुआ था। उस समय इस जगह को देखा और आज इस रूप में देख रहा हूँ। यहाँ के लोगों ने साधु-साध्वियों को रुकवाने की व्यवस्था बनाई और साधु-साध्वियों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना में अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार सहयोग किया।

वैसे कहते हैं कि शहर का काम बड़ा खतरनाक होता है, किंतु कुछ भी रहा होगा हमें पता नहीं। हमें कोई गरम हवा नहीं लगी। चार महीनों में कभी ऐसा नहीं सुना कि उदयपुर संघ, सेक्टर चार, संघ के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर रहा है। न ही उदयपुर वालों ने कहा कि सेक्टर चार वालों ने मकान दे दिए, किंतु दिक्कतें खड़ी कर रहे हैं। ऐसी बातें आपस में हुई होंगी, किंतु हमें ऐसी गरम हवा नहीं लगी। और हो ही क्यों? स्थानक धर्म आराधना के लिए ही तो है। धर्म आराधना जितनी हो उतनी बढ़िया। जिस भूमि का योग होता है, वहीं साधना होती है। धर्म आराधना होती है। इस भूमि पर दस-दस दीक्षा सम्पन्न हुई। आगे क्या स्थिति रहेगी, यह आगे की बात है।

चार दिसम्बर को दीक्षा का प्रसंग है। श्रमणोपासक में उनका परिचय आया होगा। आज ही सुबह संत बताने लगे कि श्रमणोपासक में दीक्षा के लिए उदयपुर लिखा हुआ है। मैंने कहा लिख दिया तो लिख दिया, अब क्या करना।

(श्रोतागण हर्ष-हर्ष करने लगे)

जो भी स्पर्शना होगी समय के साथ ज्ञात होगी। जैसा मैंने संतों को बताया, वैसा मैं बता रहा हूँ।

(एक श्रोता- भगवान 4 दिसम्बर की दीक्षा उदयपुर में होनी चाहिए)

आपको अभी भी मन में संशय हो रहा है क्या?

मैंने यह कहा था कि दो तारीख से जिनको भी (श्रावक-श्राविकाओं) अपना भाव व्यक्त करना हो कर सकते हैं। यानी क्या होना था, क्या नहीं होना था, क्या अच्छा हुआ, क्या बुरा हुआ, क्या होना चाहिए था और क्या कमी रह गयी, यह बोलना था, पर बोलने वालों ने कमी नहीं बताई। इसका मतलब है हमारे कदम गुणपरक दृष्टि की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। हमने किसी का दुर्गण न देखकर अच्छा गुण देखने का लक्ष्य बनाया। हमने कमियों का उल्लेख नहीं किया। मैं जहाँ तक सोचता हूँ कि हो सकता है बहुत-से लोगों की आशा भी रही होगी। कई बार लोगों ने अपनी भावना व्यक्त भी की कि म.सा. चरण स्पर्श होना चाहिए। एक बार तो मौका मिलना चाहिए। मैंने कहा देखेंगे समय के साथ क्या होता है। चरण स्पर्श होना, नहीं होना महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। हमारे दिल में चरणों का वास होना चाहिए। ऊपर के चरण तो आए और गए। हमने अपने दिल में चरण बसा लिए तो वे सदा-सदा के लिए बस गए। चरण दिल में रखो।

दिल मैं है या नहीं?

(श्रोताओं ने कहा- दिल में है)

हमने एक बार स्पर्श कर भी लिया तो क्या होगा। हमने अपने दिल में चरण बसा लिए तो वह सबसे बड़ी बात है। फिर भी मेरे में बहुत कमियाँ, कमजोरियाँ रहीं हैं, यह मैं मानता हूँ। समय पर मंगलपाठ नहीं देना। लोगों को 'दया पालो' नहीं बोलना, बातचीत नहीं करना। परसों भी सतियाँ जी बात कर रही थीं। मैंने कहा कि मेरा स्वभाव मिलनसार का कम ही रहा है। यह स्वभाव की बात है। आप जान गए कि म.सा. का क्या स्वभाव है, इसलिए शायद आपका मन कभी भी पीड़ित नहीं हुआ होगा। फिर भी मेरे द्वारा, साधु-साध्वियों द्वारा, किसी के द्वारा आपके दिल को चोट लगी हो, ऐसा लगा हो कि हमारे यहाँ गोचरी के लिए नहीं पधारे अथवा पानी के लिए नहीं पधारे, अन्य किसी भी कारण से मन व्यथित हुआ तो मैं पूरे साधु-साध्वी समाज की तरफ से आपसे हृदय से क्षमाचायना करता हूँ। इतना ही कहते हुए विराम।

8 नवम्बर, 2022

# 3

# वृक्ष बीज का परिणाम है

(शांताकँवर जी म.सा. का संथारा)

पेड़ नजर आता है, बीज नजर नहीं आता। शांताकँवर जी म. सा. ने दृढ़ भावों से, निर्णायक भावों से संथारा-संलेखना स्वीकार किया। संथारा-संलेखना हमें नजर आ रहा है। उसका बीज क्या है? वह बीज सूत्र है-

**'लाभो त्ति न मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोयए'**

हम ऐसा मानकर चलते हैं कि केवल एक सूत्र संथारे के वट वृक्ष को खड़ा करने वाला बनेगा।

**'लाभो त्ति न मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोयए'**

अर्थात् किसी भी प्रकार की उपलब्धि होने पर गर्व नहीं करना और कोई अभिलाषा पूर्ण नहीं होने पर शोक नहीं करना। विषाद नहीं करना। मन उद्विग्न नहीं होना, यह मूल बीज है।

इस सूत्र में बड़ा राज छिपा है। यह सूत्र निस्पृहता का बोध कराता है। जो इस सूत्र को चरितार्थ करता है, जो इस सूत्र को अपने जीवन में अपना लेता है, उसके लिए मृत्यु महोत्सव का रूप बन जाती है।

महान साध्वी शांताकँवर जी म.सा. के विषय में पूर्व वक्ताओं से हमने बहुत कुछ जाना है। उनके जीवन झरमर को जाना है। उनकी सेवा भावना, वैचारिक दृढ़ता, निर्णायक सामर्थ्य आदि ऐसे गुण हैं जो बिना साधना के संभव नहीं हो पाते। आत्मविश्वास सुदृढ़ हुए बिना अपने निश्चय पर अटल रहना नामुमकिन है। जिसका आत्मविश्वास गहरा होगा, वही अपने निश्चय पर अटल रह सकता है। उसका निर्णय, उसका निश्चय अंगद के पाँव के समान होगा। मन चल-विचल नहीं होगा। जो निर्णय कर लिया वह कर लिया। निर्णय करने के बाद अफसोस की बात नहीं है।

आत्मविश्वास की कमी होने पर व्यक्ति चल-विचल होता रहता है।

डाँवाँडोल होता रहता है। उसके मन में आता रहता है कि मैंने यह कर लिया अब क्या होगा! आत्मविश्वास से भरा व्यक्ति ऐसा नहीं सोचता। वह 'चरैवेति-चरैवेति' का मंत्र अपनाता है। 'चरैवेति-चरैवेति' अर्थात् चलते रहो, चलते रहो... मंजिल की ओर कदम बढ़ाते चलो... पीछे मुड़कर मत देखो। पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं है। यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि मैं कितना चला। सामने देखना है। यह देखना है कि कितना चलना और बाकी है। जो बाकी है उसकी ओर नजर होनी चाहिए। जिसकी नजर मंजिल पर होती है, वह मंजिल को प्राप्त करने की चेष्टा करता है।

शांताकँवर जी म.सा. दृढ़ निश्चयी थीं। दृढ़ निश्चय से उन्होंने संथारा-संलेखना स्वीकार किया। मैंने एक बार यूँ ही टटोला। मैंने कहा कि डॉक्टर साहब को दिखा देते हैं। उन्होंने कहा-''कांई करी डॉक्टर, म्हारे तो दवाई लेणी कोनी।'' वह बहुत स्पष्ट थीं। उनके मन में कोई कमजोरी नहीं थी। उनके मन में ऐसी कोई भावना नहीं आई कि दिखा देते हैं डॉक्टर को। ऐसी भावना उसके मन में आती है, जो कमजोर होता है।

**जो बढ़े कदम न पीछे हटेंगे, महावीर के हम सिपाही बनेंगे।**

महावीर के सिपाही पीछे हटना नहीं जानते। उनका लक्ष्य आगे बढ़ना रहता है। उन्होंने कहा कि क्या करना डॉक्टर से! मुझे दवाई लेनी ही नहीं है। लेनी या नहीं लेनी दवाई, किंतु कभी-कभी कौतूहल हो जाता है कि देख तो लें कि डॉक्टर क्या कह रहा है, क्या नहीं कह रहा है। क्या स्थिति है। यह स्थिति कब तक रहेगी? उनके भीतर कोई कौतूहल भाव नहीं था। जिस दृढ़ता से जीवन की अंतिम संलेखना स्वीकर की, उसकी परिपालना उसी दृढ़ता से की।

**जाए सद्धाए णिक्खन्तो, तमेव अणु पालिया।**

जिस उत्साह से, जिस उमंग से, जिस दृढ़ता से संलेखना स्वीकार की उतनी ही दृढ़ता से उसका पालन किया। मन को डिगने नहीं दिया। हम लोग थोड़े आगे-पीछे हो रहे थे संथारा कराने में। उन्होंने कहा मैं पक्की हूँ, पक्की रहूँगी। बड़े-बड़े संथारे भी हुए हैं। मैंने बड़े-बड़े संथारे भी देखे हैं, मैं पीछे नहीं हटूँगी। आप मुझे पच्चक्खाण करा दो। उन्होंने कहा कि पहले भी कई संथारे लम्बे चले हैं, मेरा भी संथारा लम्बा चल सकता है। ये स्वर आज भी कान में गूँज रहे हैं। उनकी दृढ़ता के हम लोग भी कायल हो गए और उनके संथारा-

संलेखना का प्रसंग उपस्थित हो गया।

उदयपुर में उन्होंने आँख खोली। उदयपुर उनकी कर्मभूमि रही। ज्ञान की आँख भी उदयपुर में प्रकट हुई और अपनी मंजिल को देखने का कार्य भी उन्होंने उदयपुर में प्राप्त किया, सम्पन्न किया। क्या कहें और कितना कहें! जितना कहें उतना ही कम होगा और कहते जाने से भी कोई फायदा नहीं होगा। फायदा तब होगा जब उनके जीवन से हम कुछ चुन लें। उनके जीवन झरमर से कुछ चुन लेंगे, वे मोती हमारे होंगे। वे रत्न हमारे हो जाएंगे, नहीं तो यह वाणी विलास ही होगा। हम कोरे के कोरे रह जाएंगे। हम उनसे दृढ़ता प्राप्त करें। उनसे सहजता, सरलता की शिक्षा लें। सेवा भावना सीखें। हर किसी के साथ एडजस्ट कर लेने का गुण प्राप्त करें। ये गुण जीवन में बड़े काम आने वाले हैं।

आज सम्प्रदाय और परिवार टूट रहे हैं। घर-घर टूट रहे हैं। उस टूट से यदि कोई बचा सकता है तो वात्सल्य बचा सकता है। वात्सल्य भाव मिलता रहेगा तो जल्दी से टूटन पैदा होने वाली नहीं है।

महान साधिका महासती श्री शांताकँवर जी म.सा. के जीवन प्रसंगों से हम प्रेरणा लें। महासती श्री सुमनप्रभा जी म.सा., महासती श्री रौनक श्री जी म.सा. दीक्षा के बाद निरंतर उनके साथ रहीं। महासती श्री धापुकँवर श्री जी म.सा., श्री सुगनकँवर श्री जी म.सा, श्री गुलाबकँवर श्री जी म.सा. की सेवा में अपनी जिंदगी खपाई और अंत समय में साधना के शिखर पर आरूढ हो गईं। उनके साथ रहने वाली साध्वी श्री सुखदा श्री जी म.सा. अभी बोलीं कि उनका सौभाग्य था कि शांताकँवर जी म.सा. की सेवा का मौका मिला। साथ रहने का सान्निध्य मिला। महासतियों ने भी हिम्मत रखी और उनको संथारा-संलेखना के लिए सहयोग दिया। हम उन साध्वियों से भी प्रेरणा लें। इस प्रकार से हम अपने दिल को बड़ा करें। उदारता रखें और सेवा के लिए समर्पित हो जाएं। सेवा, सेवा ही है। सेवा छोटी-बड़ी नहीं होती। जिस काम का भी मौका मिले उससे अपने आपको लाभान्वित करें। अपने आपको लाभ से वंचित नहीं रखें। यह सेवाभाव के गुण की बात है। सेवा का गुण हमारे भीतर प्रकट होना चाहिए। ऐसे गुण हम स्वीकार करेंगे, उस ओर हमारे कदम आगे बढ़ेंगे तो हमारा पुरुषार्थ सफल हो जाएगा।

शांतिलाल और आशा के चारित्र का वर्णन चल रहा है। वर्णन सम्पन्न

होने के कगार पर आ गया है। शांतिलाल दीक्षा की तैयारी कर रहा है। भाई से वार्तालाप चल रहा है, किंतु अभी वार्ता आगे बढ़े ऐसा अवसर नहीं लग रहा है। महासतियाँ जी बोल गईं कि गमगीन माहौल है। मैं समझता हूँ कि यह बड़े महत्त्व का विषय है, प्रेरणा का विषय है। मरना तो एक दिन सबको है। जिसने भी शरीर धारण किया, मृत्यु अश्वयंभावी है। मौत के दरवाजे तक जाना ही पड़ेगा, किंतु जो हिम्मत से मौत का आह्वान करने के लिए तैयार हो जाए वह वीर है। शांताकँवर जी म.सा. ने वीरता से मृत्यु का वरण किया। ऐसी वीरता हमारे लिए गर्व की बात है। संघ के लिए गर्व की बात है। पूरे जैन समुदाय के लिए गर्व की बात है। ऐसी वीरता में जिन साध्वियों ने सहयोग किया वे भी हमारे लिए गर्व का विषय हैं। हमें किसी बात का गम नहीं होना चाहिए। कोई शोक की बात नहीं है। वियोग होता है। वियोग होना निश्चित है। उन्होंने वीरता-धीरता धारण कर नया इतिहास रच दिया। यह हमारे लिए गर्व की बात है, प्रेरणा लेने की बात है। हम अपने भीतर प्रेरणा के बीज को संजोएं। उसका प्रकाश लेते रहें और अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

9 नवम्बर, 2022

# 4

# यूं प्रभु से प्रीत लगे

**ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे, और न चाहूँ रे कंत...**

ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है कि अब मुझे और किसी चीज की चाह नहीं रही। मुझे सर्वस्व प्राप्त हो गया। प्रीत की पूरी समझ न होने से उसके साथ विपरीत अवस्थाएं भी खड़ी हो जाती हैं। प्रीत का अर्थ है सम्पूर्ण रूप से पी जाना। कुछ भी बचना नहीं। तन्मय हो जाना। तद्रूप हो जाना।

**तुझमें मुझमें भेद न पाऊँ, ऐसा हो संधान।**

दोनों में कोई भेद न रहे। तेरे और मेरे का भेद जहाँ समाप्त हो जाता है, वहाँ प्रीत पूरी हो पाती है। ऐसी प्रीत जब हो जाती है तब कोई दूसरी बात, कोई विपरीत बात कानों में नहीं घुसती। ऐसी प्रीत लग जाती है, तो तृप्ति आ जाती है। तब लगता है कि अब मुझे किसी और की चाह नहीं है। किसी भी पदार्थ का आकर्षण नहीं। अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए। अब मैं तृप्त हो गया हूँ। इस तरह की बात है तो सच्ची प्रीत है।

लोग कहते हैं कि सामायिक में मन नहीं लगता। पौषध करने में मन नहीं लगता। माला गिनने में मन नहीं लगता। मन इधर-उधर हो जाता है। मृगावती ने भगवान को देखा, तो उनसे प्रीत लग गई। मन लग गया। वह उनमें लीन हो गई। लीन होने पर उसे समय ज्ञात नहीं हुआ। ऐसी प्रीत मन में जगेगी तो मनुष्य तृप्त हो जाएगा। उसका मन इधर-उधर नहीं भटकेगा।

भ्रमर जब पुष्प पर बैठता है, तो उसको पराग मिलता है। उस पराग में वह लीन हो जाता है, तृप्त हो जाता है। जब वह पुष्प पर से उड़ता है, तब गुंजार करते हुए उड़ता है। उसका गुंजार करना प्रफुल्लता का परिचायक है। गुंजार यह बताता है कि उसका मन तृप्त हो गया। वह कुंठित नहीं है कि मैंने इतना प्रयास किया, पर मुझे कुछ नहीं मिला। क्या अपने आप उसके भीतर से गुंजार चालू

हो गया? नहीं, उसने पुष्प से प्रीत की। प्रीत के फलस्वरूप गुंजार चालू हुआ। भ्रमर जैसी प्रीत पुष्प से करता है, वैसी ही प्रीत हमें धर्म से होनी चाहिए। वैसी ही प्रीत हमें परमात्मा से होनी चाहिए।

**'देव गुरु धर्म तत्त्व ये तीन महान् हैं,**
**इन्हें पहचाने वह सच्चा बुद्धिमान है।'**

हमने वंशानुगत धर्म प्राप्त कर लिया। हमारे पिता जी, हमारे दादा जी इसी धर्म की आराधना करते थे। हमने भी उसी घर में जन्म लिया और इस धर्म को पाल लिया। वंशानुगत रूप से प्राप्त चीज की कदर नहीं होती अथवा कम होती है। जो मेहनत से प्राप्त होता है उसकी कदर होती है। मेहनत से एक सिक्का भी मिले तो उसकी कदर होती है।

हमें यदि यह धर्म मेहनत से मिला होता तो उसकी महिमा कुछ अलग ही होती। क्योंकि उसके लिए पुरुषार्थ हुआ होता। बिना पुरुषार्थ के, बिना मेहनत के प्राप्त चीज की कदर नहीं कर पाएंगे। बात आपकी और हमारी ही नहीं है, अपितु सबकी है। इसलिए मेहनत की जानी चाहिए। हमने व्यावहारिक धर्म तो प्राप्त कर लिया, किंतु भगवान ने क्या बताया धर्म के रूप में?

**समियाए धम्मे।**

भगवान ने समता में धर्म बताया है। वह समता हमारे भीतर उतरी या नहीं! उसके लिए हमने प्रयत्न किया या नहीं! उसके लिए प्रयत्न करेंगे तो अनुभूति होगी कि कैसे आनंद आता है। समता रूप धर्म वंशानुगत मिलने वाला नहीं है। उसके लिए श्रम स्वयं को ही करना होगा।

इससे संबंधित एक प्रसंग स्मृति में आ गया। प्रसंग है बैतूल का। आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. बैतूल में विराज रहे थे। अमरावती के जवाहरलाल जी मुणोत और उनके एक साथी रात्रि में प्रतिक्रमण के पश्चात् उपस्थित हुए। गुरुदेव के वहाँ प्रतिक्रमण के पश्चात् प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम चलता था। समाधान का कार्यक्रम चलता था। कोई भी प्रश्न हो, कैसा भी प्रश्न हो, उसका उत्तर देना गुरु महाराज का लक्ष्य रहता था। उनका जितना सामर्थ्य होता उसका उत्तर देते। समाधान देते।

जवाहरलाल जी के मित्र ने कुछ बात चलाई। बात होते-होते माइक पर आ गई कि इतने लोग आपके दर्शन के लिए उपस्थित होते हैं, व्याख्यान के

लिए उपस्थित होते हैं, एक माइक का उपयोग कर लो, तो कितने लोगों का भला हो जाएगा। कितने लोग लाभान्वित हो जाएंगे।

गुरुदेव उसका समाधान दे रहे थे। समाधान देने के बीच में जवाहरलाल जी मुणोत आक्रोशित हो गए। आक्रोश में आकर बहुत कुछ सुनाने लगे। कहने लगे कि आपने संगठन को तहस-नहस कर दिया। संगठन में बिखराव पैदा कर दिया। उन्होंने बहुत बातें सुनाईं।

गुरुदेव सुनते रहे, सुनते रहे। सुनने के साथ समझाते भी रहे, किंतु जवाहरलाल जी का समझने का मूड ही नहीं था।

एब बात स्पष्ट है कि हम समझने के लिए तैयार होंगे तो ही हमारे भीतर कोई समझ घुसेगी। यदि यह सोच लिया कि समझना ही नहीं है, मुझे तो केवल सुनाना है, तो कोई समझा नहीं पाएगा।

खैर, रात के दस बज गए होंगे। लोग मांगलिक लेकर चले गए। गुरुदेव ने ऐसा नहीं कहा कि जा मांगलिक नहीं सुनाता। गुरुदेव ने मांगलिक सुना दी। अभी आदित्य मुनि जी म.सा. फरमा गए कि कोई आपको गाली दे और आपको मांगलिक सुनानी हो तो आप सुनाएंगे या नहीं?

रास्ते में जवाहरलाल जी के मित्र ने कहा, तुम इतने आक्रोश में आ गए। मुझे पहले मालूम होता तो मैं चर्चा चलाता ही नहीं। तुम्हारे आक्रोश को देखकर मैं बड़ा परेशान हो गया कि मैंने कहाँ चर्चा चालू की और फालतू की आफत आ गई।

दूसरे दिन वे दोनों गुरुदेव के सान्निध्य में पहुँचे।

गुरुदेव ने कहा- मुणोत जी और कुछ समाधान बाकी रहा क्या?

मुणोत जी ने कहा- गुरुदेव! रात में मैंने आपको बोल तो दिया, किंतु यहाँ से निकलने के बाद मन में बहुत अफसोस हो रहा था। यहाँ से निकलते ही मेरे मित्र ने कहा- मुझे तू सही स्थान पर ले आया। देख लिया मैंने महापुरुष को कि तुमने इतना आक्रोश किया, कुछ भी बोला, किंतु वे विरोध में कुछ नहीं बोले। तुमने इतना आक्रोश किया, फिर भी उनके चेहरे पर फर्क नहीं आया। वे उसी प्रेम से बोलते रहे; मुणोत जी सुनो, मुणोत जी सुनो।

मुणोत जी ने कहा- गुरुदेव आपने 36 गुण दिखा दिए। हमसे अवज्ञा-अवहेलना हुई इसलिए हम क्षमायाचना के लिए आए हैं।

जवाहरलाल जी के मन में बना शल्य उनको बेचैन कर रहा था। उनके मन में बार-बार हो रहा था कि मैंने ऐसा क्यों कर दिया। क्षमायाचना के बाद उनको शांति मिली।

यह है समता का एक रूप। प्रशंसा सुनना किसी को भी बड़ा प्रिय लगता होगा, किंतु अपमान के स्वर, तिरस्कार के शब्द सुनने पर भी मन में फर्क नहीं पड़ना बहुत ऊँची बात है।

यह कब होगा? बताओ कब होगा?

**ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे, और न चाहूँ रे कंत**

जिसने 'समियाए धम्मे' घोटकर पी लिया, जिसको उसका रसायन मिल गया, उसका अर्क प्राप्त कर लिया वह तृप्त हो गया। ऐसे व्यक्ति की कोई कितनी भी निंदा करे, उसे कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला।

कोई आपकी प्रशंसा करता है तो आपको कुछ मिल जाता है क्या?

(श्रोताओं ने कहा- कुछ नहीं मिलता)

कोई निंदा करता है तो आपका कुछ खो जाता है क्या?

आप निंदा को स्वीकार करते हो तो भी दु:ख होगा और प्रशंसा को स्वीकार करते हो तो भी दु:ख होगा। दोनों बातें कानों तक रहनी चाहिए। दिल तक नहीं आनी चाहिए। कान तो बंद नहीं होगा, किंतु कान से मन तक वह बात नहीं पहुँचे। उस बात को मन तक पहुँचाने के लिए हम तैयार नहीं होंगे तो कान से टकराकर बाहर से ही लौट जाएगी।

ऐसी बहुत सारी कहानियाँ हैं, बहुत सारे आख्यान और वृत्तान्त हैं जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि प्रिय बात को लोग सुनते हैं, दूसरी बात को नहीं। लोगों को प्रशंसा प्रिय है, इसलिए प्रशंसा को सुनते हैं, किंतु न प्रशंसा प्रिय होनी चाहिए और न तिरस्कार अप्रिय होना चाहिए। हमें प्रिय होनी चाहिए गुणात्मक बात और गुणमय दृष्टि। हमारी दृष्टि समतामय होनी चाहिए। जिसकी दृष्टि समतामय बन जाएगी, उसे दु:ख नहीं होगा। यह धर्म का प्रसाद है। जिसने उस प्रसाद को ले लिया, उसको दु:ख पैदा नहीं होगा।

भगवान महावीर को संगम ने कितने उपसर्ग किए, किंतु उनको कोई दु:ख नहीं हुआ। गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे रखे गए, किंतु उनको दु:ख नहीं हुआ। अर्जुन अणगार को लोगों ने बहुत गालियां दीं, व्यंग्य कसे, पत्थर

फेंके फिर भी उसके मन में दु:ख पैदा नहीं हुआ।

क्यों नहीं हुआ यह बताओ?

दु:ख नहीं होने का कारण यह था कि उसने सम्पूर्ण रूप से समता की दवाई पी थी। परिपूर्ण रूप से जिसने समता को पी लिया, उसको कोई दु:ख नहीं होगा। कोई उसकी कितनी भी निंदा करे, उसका कुछ नहीं बिगड़ पाएगा। हाथी के पीछे कुत्ते भौंकते रहते हैं, किंतु हाथी का कुछ नहीं बिगड़ता। यदि कोई यह कहे कि उसमें शक्ति नहीं है, तो कहने वाले की अपनी समझ है। जानने वाले जानते हैं हाथी और कुत्ते की शक्ति के बारे में। शक्ति होते हुए भी हाथी, कुत्ते पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता। वह अपने हाल में मस्त रहता है। वही मस्ती हममें भी आनी चाहिए। समता में रमने वाला उस मस्ती का अच्छी तरह से अनुभव कर लेता है।

शांतिलाल और आशा की बात हम सुनते आ रहे हैं। कहानी एकदम किनारे पर है।

**सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।**

शांतिलाल जब दीक्षा के लिए आतुर हुआ, तो आशा के कुछ बोलने से पहले उसका भाई सुरेश कहता है, भैया! आप कैसी बात कर रहे हो! रंग में भंग डाल रहे हो। इतने वर्षों बाद हम मिले और आज ही दीक्षा की बात कर रहे हो। यह कैसा निर्णय! सुरेश कहता है कि यह नहीं हो सकता। मैं आपको किसी भी हालत में दीक्षा नहीं लेने दूँगा। आप घर में रहकर धर्म-ध्यान करिए। सुरेश कहता है कि दूसरे शब्दों में कहूँ, तो आप वैसे ही साधु हो। आपकी आत्मा साधुता में आ गई है। अब कपड़ा पहनने से, औपचारिकता करने से क्या फायदा। आपको मैंने इतना कष्ट दिया, इतना दु:ख दिया फिर भी आप शांत रहे। आज भी आप एकदम शांत भाव में जी रहे हैं। आपकी साधुता तो अपने आप निखर गई। अब कपड़े पहनना कोई मायने नहीं रखता।

शांतिलाल ने कहा- भाई घर पर रहते हुए यदि परिपूर्ण धर्म आराधित होता, परिपूर्ण आत्मकल्याण का अवसर प्राप्त होता तो भगवान महावीर घर का त्याग क्यों करते। अकस्मात् कोई घटना घट जाए तो बात अलग है, नहीं तो साधना के पथ पर चलना ही राजमार्ग है। उसके लिए सबसे पहले मोह को लतेड़ना होगा। मेरेपन को हटाना होगा। जब तक मेरे पीछे मेरापन लगा रहेगा,

तब तक साधुता फलित नहीं हो पाएगी। साधुता नहीं बनेगी। वह कहता है मेरा घर, मेरा परिवार, मेरा भाई, मेरा बेटा, संसार का बीज है। जब तक मेरा-मेरा बना रहेगा तब तक संसार में ही भटकते रहेंगे। जन्म-मरण चलता रहेगा।

शांतिलाल कह रहा है कि मैं मेरेपन का त्याग करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आज अकस्मात् कोई घटना नहीं घट रही है। मैं तो अवसर के टोह में चल रहा था। मैं तो देख रहा था कि कब अवसर आए और मैं साधु बन जाऊँ। संयोग से आज संत-महात्मा पधारे, उनकी देशना, दिव्य वाणी सुनी और यह अवसर आ गया। अब मैं क्यों पीछे रहूँ! तुमने कहा कि आज मिलना हुआ। मिलना-बिछड़ना संयोग है और संयोग का वियोग होता है। इसलिए मोह दृष्टि से उपरत होकर विचार करो। ज्ञानजल से आँखें धोकर देखोगे तो स्पष्ट दिखेगा कि संसार क्या है और अपनेपन का सम्बन्ध कितना गहरा होता है। हमें मालूम नहीं पड़ता, किंतु मेरेपन का बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। मेरेपन के सम्बन्ध को हटाने के लिए न केवल घर-परिवार का त्याग जरूरी है, बल्कि अपने शरीर के ममत्व को भी हटाना होगा।

## जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय

मेरा शरीर भी मेरा नहीं है।

(एक श्रोता ने कहा- मेरा शरीर भी मेरा नहीं है)

पक्की बात है?

फिर पोषण किसका करना?

शरीर को पोषण देना होगा। जब तक हम शरीर में हैं तब तक शरीर को भी पोषण देना होगा, नहीं तो यह रूठ जाएगा। यह रूठ जाएगा तो धर्म की आराधना नहीं हो पाएगी। यह रूठ गया तो इसको मनाना पड़ेगा। यदि घर का कोई सदस्य रूठ जाता है तो घर का वातावरण अशांत हो जाता है। घर का कोई सदस्य रूठ जाता है तो फर्क पड़ता है या नहीं?

(श्रोताओं ने कहा- फर्क पड़ता है)

घर का सदस्य रूठ जाता है तो घर का माहौल अशांत हो जाता है। शरीर रूठ जाए तो उसको मनाने में टाइम लगेगा, फिर धर्म की आराधना कैसे कर पाएंगे! शरीर के सहयोग से ही धर्माराधना होती है। यदि आप बीमार हो जाते तो यहाँ व्याख्यान में नहीं मिलते। व्याख्यान नहीं सुन पाते। अहमदाबाद

जाते किसी डॉक्टर के पास। हॉस्पिटल जाते डॉक्टर के पास। शरीर स्वस्थ है तो ही धर्माराधना कर रहे हैं। अत: शरीर स्वस्थ बना रहे यह अपेक्षा रहती है।

किसलिए बना रहे स्वस्थ? संसार के काम भोगों के लिए?

(श्रोताओं ने कहा– धर्माराधना के लिए)

शरीर स्वस्थ इसलिए रहे ताकि धर्माराधना सही तरह से चलती रहे। इस प्रकार का लक्ष्य गलत नहीं है, किंतु शरीर का, अपने मोह का पोषण करने वाले बनेंगे तो दु:खदायी होगा। जन्म–मरण में ही रहने वाले बन जाएंगे।

सुरेश आखिर में चुप हो गया। वह कुछ बोल नहीं सका क्योंकि दोनों की बातें अलग–अलग हो जाती हैं। दोनों की दृष्टि अलग–अलग है।

लोढ़ा जी (सौभागमल जी) आपके घर में कोई दीक्षा के लिए तैयार हुआ हो तो भले ही आपने रोकने का प्रयत्न किया होगा, किंतु मन में रहा होगा कि रास्ता तो यही ठीक है। रास्ता गलत लगा क्या? आपका दिल बोलता है कि रास्ता तो यही ठीक है। बात तो सच्ची है, किंतु हमारा मोह हमें रोकता है। लगता है कि थोड़ा मौका मिले तो देख लें। कोई बात बने तो बन जाए। जब सारे तरीके निष्फल हो जाते हैं तो फिर मोह को मानने के लिए तैयार होना पड़ता है।

सुरेश मान गया। आशा तो अपनी आश लगाए बैठी थी। उसने कहा कि मुझे भी साथ में दीक्षा लेनी है। जैसे ही यह बात हुई कि विमला रो पड़ी।

विमला का अपनत्व आशा से जुड़ गया। आशा जान रही थी कि विमला मेरे देवर की बेटी है, किंतु विमला नहीं जान रही थी कि यह मेरी बड़ी मम्मी है। वह नहीं समझ रही थी, किंतु भेद खुल गया।

आशा ने कहा कि मैं दीक्षा लूँगी तो विमला कहने लगी कि तुम क्या बोल रही हो। तुम दीक्षा लोगी? तुमने कितनों का उद्धार किया। यह मार्ग कम नहीं है। यह भी कल्याण का पथ है। तुम कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ रही हो। विमला फिर बोली। तुम जान रही थी फिर भी तुमने क्यों भेद छिपाया। तुमने क्यों नहीं बताया कि तुम मेरी बड़ी मम्मी हो। तुम तो जान रही थी।

आशा ने कहा, बेटी! बताती तो भी वही बात थी और नहीं बताया तो भी वही। तुमसे प्रेम हो गया। घनिष्ठता बन गई। घनिष्ठता बड़ी मम्मी के हिसाब से बनी या गुणों के आधार पर बनी?

हमारी दृष्टि गुणमय होनी चाहिए।

आशा ने निर्णय लेते हुए कहा कि विमला अब तुमको संयमशाला संभालनी है। घर-परिवार मोहन देखेगा।

दीक्षा की तैयारी होने लगी। गाँव वालों को मालूम पड़ा तो कहने लगे, आप यह क्या कर रही हो? कितनों का उद्धार किया, भला किया। साधु जीवन स्वीकार करके भी तो यही करना है। दूसरों का कल्याण करना है।

आशा ने सभी को चारित्र धर्म का महत्त्व समझाया। मर्म समझाया। उन्होंने धर्म के मर्म को समझा। फिर सबने अनुमति प्रदान कर दी।

**बड़े ठाठ से लेते दीक्षा, फिर गुरुवर से पाते शिक्षा।**
**संयम सत्रह है प्रकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।।**

बात समझ में आई। बात समझ में आई ना?

(श्रोताओं ने कहा- आई)

बड़े ठाठ, उत्कृष्ट भावों से उन्होंने दीक्षा स्वीकार की। म.सा. से शिक्षा प्राप्त की। संयम के सत्रह प्रकार को जाना। चरण सतरी-करण सतरी के ज्ञाता बने। आगम के ज्ञाता बने। फिर निर्दोष भावों से संयम की पालना करते हुए देश-विदेश विचरण किया। समाधि-मरण प्राप्त कर देवऋद्धि को प्राप्त करते हैं।

**भव्यजनों मोह त्यागो, कर्त्तव्य पथ से कभी न भागो।**
**बदलो द्वेष भाव भविकजन, सत्य सदा जयकार।।**

भव्यों को सम्बोधन किया, उपदेश दिया। यह कथानक हमने सुना। यह चारित्र हमने सुना। इस चारित्र से हमने क्या निष्कर्ष निकाला? हमने क्या निचोड़ निकाला? इसमें सारभूत बात क्या है?

सारभूत बात है कि भव्यो! जागो, मोह को त्यागो। हमारा जागरण हो। गुणमय दृष्टि हो।

**ममाइयं मइं जहाय...**

सुखी वही होगा जो मेरेपन की बुद्धि का त्याग करने में समर्थ होगा। औपचारिक साधु और श्रावक बनने से सुखी नहीं होगा। पोशाक पहनने से परिवर्तन नहीं होगा।

मेरेपन की बुद्धि छोड़ेंगे तो सुख अपने आप मिलेगा। सुख के लिए प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। सुख अपने आप भीतर उतरने लगेगा। सुख को प्राप्त करने के लिए प्रयास मत करो। मेरेपन की बुद्धि त्यागने का प्रयत्न करो। मेरेपन की बुद्धि को कैसे छोड़ा जा सकता है उसका लक्ष्य बनाओ।

ऐसे भ्रम में मत रहना कि साधु जीवन अपनाने से सुखी हो जाऊंगा। जब तक विचार नहीं बदलेगा, सोच नहीं बदलेगी, तब तक सुखी नहीं हो पाओगे। कपड़े पहनने से सुखी नहीं होगे। विचार बदलेगा, सोच बदलेगी, व्यवहार बदलेगा तो सुखी होगे। ये परिवर्तन हो जाएंगे तो देखना सुख अपने आप ही दौड़कर आएगा। उसको न तो बुलाने की आवश्यकता रहेगी और न ही कुछ करने की आवश्यकता रहेगी। हम कर्त्तव्य पथ से भागें नहीं। अपने मन में द्वंद्व पैदा नहीं होना चाहिए।

डॉक्टर सुरेश ने श्रावक व्रत स्वीकार किया। बहुत-से लोगों ने समकित व्रत को स्वीकार किया। इस प्रकार से धर्म का उद्योत हुआ। हम भी धर्म उद्योत में पुरुषार्थ करें। हम भी अपनी गति को आगे बढ़ाएं। ऐसा हमारा लक्ष्य होगा तो धर्म सुनना सार्थक होगा। नहीं तो सुनते रहेंगे, सुनते रहेंगे।

सुनते-सुनते कान घिस जाएंगे। कान घिसने से काम नहीं चलेगा। अपना मन घिसे, मन स्फूर्त बने। यदि हम अपने मन को स्फूर्त बनाने में समर्थ होंगे तो मानव जन्म सार्थक होगा। शांतिलाल का चारित्र सेक्टर चार में चालू किया और पूर्ण हुआ सेक्टर पाँच में। कहीं भी शुरू हो या कहीं भी पूर्ण हो, तद्गत शिक्षाएं हमारे जीवन का अंग बनें। वे जीवन का अंग बनेंगी तो धन्य बनेंगे। इतना कहते हुए विराम।

10 नवम्बर, 2022

# 5

# जो करें, आत्महितार्थ करें

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

'पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे' के माध्यम से अजितनाथ भगवान की स्तुति करते हुए जो भाव व्यक्त किया गया है, उसका आशय यह है– मैं दूसरे अजित भगवान के पथ को निहारना चाहता हूँ। देखना चाहता हूँ कि उनका मार्ग कैसा है और उस मार्ग पर चलने से व्यक्ति कहाँ तक पहुँच पाएगा।

मार्ग सुगम हो, किंतु चलने वाला सही तरीके से नहीं चले तो दुर्घटना होने की आशंका रहती है। मार्ग कठिन हो किंतु चलने वाला समझदार हो तो उस मार्ग को भी वह आसान बना सकता है। एक छोटा-सा काम किसी के लिए बड़ा कठिन हो सकता है और किसी के लिए बहुत आसान हो सकता है। प्राय: श्रावक-श्राविकाएं बृहदालोयणा बोला करती हैं। उसका वाचन किया करती हैं। उसमें एक दोहा है–

**खण निकमो रहनो नहीं, करनो आतम काम।**
**भणनो गुणनो सीखनो, रमनो ज्ञान आराम।।**

इसका अर्थ है कि एक क्षण भी निकम्मा नहीं रहना चाहिए। हर पल, हर क्षण कोई न कोई कार्य करते रहना चाहिए।

प्रश्न है कि कार्य क्या है? क्या है कार्य?

बहुत सारे काम हैं। व्याख्यान में आना भी एक काम है। घर की व्यवस्था संभालना भी एक काम है। दुकान, ऑफिस, फैक्ट्री संभालना भी एक काम है। ये सब कार्य जरूर हैं, किंतु ये कार्य हमें किस ओर ले जाने वाले हैं? ये कार्य अजितनाथ भगवान के मार्ग पर आगे बढ़ाने वाले हैं या उस मार्ग से दूसरी तरफ ले जाने वाले हैं? ध्यान रखना है कि हर मार्ग का उद्गम होता है और उसकी मंजिल होती है। एक जगह से सड़क शुरू होती है और एक जगह

जाकर पूरी हो जाती है।

ऐसी ही होती है ना?

(श्रोता– हाँ, ऐसी ही होती है)

सड़कें एक जगह से प्रारम्भ होती हैं और किसी एक जगह उनका अंत हो जाता है। उसकी पूर्णता हो जाती है। जिधर से सड़कों का उद्‌गम हुआ उसी तरफ हम बढ़ गए तो मंजिल नहीं मिलेगी। उधर जाना मंजिल से विपरीत मार्ग हो जाएगा, इसलिए 'खण निकमो रहनो नहीं, करनो आतम काम।'

प्रश्न है कि कार्य क्या है?

इसका जवाब है कि आत्मा के हित में जो कुछ हो, वही सच्चा कार्य है। स्पष्टता से बात करेंगे कि हम जो कर रहे हैं उसमें आत्महित कितना है? वह कार्य आत्महितार्थ सफलता दिलाने वाला कितना है? उसका परिणाम कैसा मिल रहा है? यदि उस कार्य में आत्मसंतुष्टि है तो बहुत सुंदर है। 'करनो आतम काम।' आत्मा का कार्य करना है। आत्मा का कार्य होगा तो आत्मा को संतुष्टि होगी। आत्मसंतोष होगा।

हमें अपने कार्य पर कितनी संतुष्टि है? संतुष्टि का अर्थ है तृप्ति। जैसे भोजन करने के बाद, पेट भरने के बाद भूखा व्यक्ति तृप्ति की अनुभूति करता है, वैसे ही आत्महित में किया गया कार्य हमें संतुष्टि दिलाने वाला होगा। हम अपने द्वारा किए गए धार्मिक क्रिया पर दृष्टि डालें कि उससे हमें कितनी संतुष्टि है। देखें कि मैं अपने आपमें संतुष्ट हूँ या रिक्तता की अनुभूति हो रही है! यदि रिक्तता की अनुभूति हो रही है तो किस कारण से हो रही है! उस कारण की खोज करना है।

तीसरी बात है भणनो गुणनो सीखनो, और चौथी बात है 'रमनो ज्ञान आराम।' आत्मा का कार्य क्या हुआ। आत्मा के कार्य के लिए कुछ सीखें। सीखना ही पर्याप्त नहीं है। उसको बार-बार रिवाइज करें। वैसे रिवाइज करने मात्र से ही कार्य नहीं होगा। वह परिणाम दिलाने वाला नहीं होगा। हमने कम्प्यूटर में या टेप में भर दिया। स्विच ऑन करने पर वह सारा विषय हमारे सामने आने लगा तो क्या इससे कार्य सिद्ध हो जाएगा? कई घरों में संत जाते हैं, तो टेपरिकॉर्डर चालू रहता है। 'ओम् नमो अरिहंताणं, ओम् नमो श्री सिद्धाणं...' चलता रहता है।

चलता है ना!

(श्रोताओं ने कहा– चलता है)

क्या उसको चलाने से कार्य सिद्ध हो गया? निर्जरा कितनी हुई? खर्चा कितना हुआ? बिजली का बिल उठेगा या नहीं?

(श्रोता– बिजली का बिल उठेगा)

निर्जरा नहीं हुई तो फिर फायदा क्या हुआ? दूसरी बात, यह विचार करें कि जो टेपरिकॉर्डर चल रहा है वह शुद्ध नहीं है। वह हमें तीर्थंकरों की आसातना कराने वाली बना रही है। नवकार मंत्र में ओम् नहीं है। आप घर में चला रहे हैं या नहीं?

(श्रोता– चला रहे हैं)

तो फिर सोचें कि ठीक कर रहे हैं क्या?

उस टेप से घर में 24 घण्टे जाप कराते हैं। कई लोग घरों में मूर्ति रखते हैं और छोटा–सा बल्ब लगा देते हैं। वह बल्ब 24 घण्टे जलता है। ऐसा करने वालों को लगता है कि हमारे यहाँ 24 घण्टे ज्योति प्रज्वलित है। पुराने समय में लोग 24 घण्टे दीया जलाते थे। अब दीये के स्थान पर बल्ब लगा दिया। दीपक की जगह बल्ब लग गया। कोई झंझट नहीं। खाली एक स्विच ऑन करना पड़ेगा। माचिस की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। नवकार मंत्र का टेप चल रहा होता है और हम सोच रहे होते हैं कि भक्ति हो रही है। कई घरों में भक्तामर का टेप चलता रहता है। कई लोग तो प्रतिक्रमण भी टेप चलाकर करते हैं। ऐसे लोगों का प्रतिक्रमण ऑनलाइन हो रहा है। हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की स्थितियों से आत्मकार्य सिद्ध नहीं होगा।

**'भणनो गुणनो सीखनो, रमनो ज्ञान आराम।'**

आत्मा के उद्यान में रमण करना। उसमें रमेंगे तो आनंद आएगा। घर में किसी ने उद्यान लगाया। अपने खेत–खलिहान में उद्यान लगाया। खेत में उद्यान लगा दिया और कभी खेत में जाकर देखा तक नहीं तो क्या होगा? उद्यान में जाकर थोड़ा भ्रमण करेंगे, वहाँ जाकर थोड़ा बैठेंगे तो खुली हवा (ऑक्सीजन) मिलेगी। वैसे ही हम आत्मरमण करेंगे तो वहाँ की ऑक्सीजन हमें मिल पाएगी, नहीं तो काम, क्रोध, मद, मत्सररूप कार्बनडाई ऑक्साइड गैस हमें मिलेगी और हम उसी में जीएंगे। श्वास लेना मुश्किल हो जाएगा। जैसे

ऑक्सीजन के आधार पर अपना जीवन है, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन आत्मरमण पर टिका है। आत्मरमण करने से आनंद आएगा। निश्चित आएगा। हमारा मन संतुष्ट होगा। हम संतुष्ट हो जाएंगे। हमें रिक्तता की अनुभूति नहीं होगी। हम अपने हाल में मस्त रहेंगे। यह है जिनेश्वर अजितनाथ भगवान का मार्ग।

अपने लाभ में संतुष्ट रहना है। मुझे जो मिला पर्याप्त है। ये बातें अच्छी तरह से जान लेना कि समय से पहले और भाग्य से ज्यादा कभी नहीं मिलेगा। वह समय कब आएगा और कब भाग्य खिलेगा? कई लोग ऐसा विचार करते हैं कि भाग्य में होगा तो मिल जाएगा, किंतु बिना पुरुषार्थ के भाग्य का ताला नहीं खुलता। जैसे ताले को खोलने के लिए चाबी की आवश्यकता होती है, वैसे ही भाग्य के ताले को खोलने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। पुरुषार्थ की चाबी लगेगी तो भाग्य का ताला अपने आप खुल जाएगा। हमारे भाग्य में क्या भरा है, हमें मालूम नहीं है।

मालूम है क्या?

(श्रोता- मालूम नहीं है)

कल भोजन में क्या मिलने वाला है यह मालूम है क्या? कम से कम गेहूँ की रोटी तो होगी शायद! मक्की की रोटी मिल जाएगी। आपने सोचा कि गेहूँ-मक्की की रोटी मिल जाएगी किंतु जब वहाँ गए तो पता लगा कि रोटी नहीं मिल रही, खाली लिक्विड पदार्थ मिल रहे हैं। कल क्या मिलेगा यह भी अपने को भरोसा नहीं है। हम अनुमान लगा लेते हैं। हम कल्पना करते हैं कि गेहूँ की रोटी मिल जाएगी, मक्के की रोटी मिल जाएगी। ठण्ड बहुत पड़ रही है इसलिए कभी मक्की की घाट मिल जाएगी। ये सारी चीजें मिल भी जाएं, किंतु निश्चित नहीं है। हमारे भाग्य में क्या भरा हुआ है, हमें मालूम नहीं है। कहते हैं कि देव भी नहीं जानते कि मनुष्य के भाग्य में क्या भरा हुआ है। जब देव भी नहीं जानते तो मनुष्य की क्या औकात कि वह जान पाए!

पूर्वजों से प्राप्त तिजोरी में क्या भरा हुआ है यह हमें मालूम नहीं है। क्योंकि हमने कभी खोला ही नहीं। खोले बिना मालूम नहीं होगा। वैसे ही भाग्य का भण्डार कभी खोला नहीं गया तो क्या मालूम पड़ेगा, इसलिए पहले पुरुषार्थ करने का लक्ष्य होना चाहिए। पुरुषार्थ आत्महितकर होना चाहिए। एक भी

कदम आगे बढ़े उसमें आत्महित निहित हो। वह कदम मन को संतुष्टि देने वाला हो। संतोष देने वाला हो। मन तृप्त हो। ऐसा यदि लक्ष्य बनता है तो सही दिशा में गति करने वाले होंगे अन्यथा धर्म क्रिया कितनी भी कर लें, मन आनंद से सराबोर नहीं हुआ तो वह क्रिया तद्रुप में काम नहीं आएगी।

मूर्तियों के सामने बल्ब जलाने से क्या मूर्ति संतुष्ट हो गई? सुबह-शाम अगरबत्ती जलाने से देवता कितने खुश हो गए? सुबह-शाम दीया-बत्ती करने से देव कितने राजी हो गए? रोज सुबह प्रार्थना करने से, रविवार को समता शाखा करने से क्या मन राजी हो गया?

हमें इसकी समीक्षा स्वयं करनी है कि अपने कार्य पर संतुष्टि हो रही है या नहीं! हम ही अध्ययन करने वाले हैं, हम ही परीक्षा देने वाले हैं और हम ही रिजल्ट देने वाले हैं। अपने लिखे पर हमें ही नंबर देना है। कितना नंबर देंगे? अपने मन से दे देंगे सौ में सौ। सौ में सौ नम्बर दे देंगे, किंतु उसके लिए हमारा मन तैयार नहीं होगा। भले ही हाथ सौ में सौ लिख दे, किंतु मन गवाही नहीं देगा। क्यों नहीं देगा मन गवाही? क्योंकि आजतक सौ में सौ ला नहीं पाए।

परीक्षा में विद्यार्थी सौ में सौ ला सकता है या नहीं?

(श्रोता- ला सकता है। कई लाते हैं)

फिर हमारी आत्मा क्यों नहीं गवाही देती। हमने कॉपी में सौ में सौ लिख दिया, किंतु मन गवाही क्यों नहीं दे रहा है? मन कह रहा है कि तुम गलत कर रहे हो। तुम फालतू में सौ में सौ दे रहे हो। कितने नम्बर मिलेंगे? यह बात भी संशय में पड़ गयी।

(एक श्रोता- 100 में से 90 मिल जाएंगे)

90 तो मिल जाएगा ना! जब आत्मविश्वास दृढ़ है तो 90 नम्बर तो मिल जाएंगे। अब दस प्रतिशत बाकी रहा। फिर तो मंजिल हमारे बहुत नजदीक आ गई। कहाँ तक पहुँच गए?

(श्रोता- 90 प्रतिशत तक पहुँच गए)

हकीकत में अपने जीवन के निर्णायक हम स्वयं ही हैं। हम ही उसमें रंग भरने वाले हैं। हम ही अंक देने वाले हैं। हम कैसा भी रंग भरें और कितने भी अंक दें वह आत्म संतुष्टिकारक हो। ऐसा नंबर दें जो आपके दिल को सांत्वना देने वाला बने। संतोष देने वाला बने। ऐसा नंबर दें जिसके लिए आपका मन

गवाही दे कि मैंने एकदम सही अंक दिया है। ऐसा यदि होता है तो यह आत्मविश्वास की बात है। हमारा आत्मविश्वास कितना सबल है, मजबूत है, कितना दृढ़ है कि कम से कम वह अपनी पहचान कर रहा है कि मेरे जीवन में कितना अंक प्राप्त होने वाला है। मेरी उत्तर पुस्तिका में क्या रिजल्ट आने वाला है, इतना अनुभव होना कम बात नहीं है। यह बहुत बड़ी बात है। इतना भी आत्मा को भरोसा हो जाए कि मैं 90 नम्बर दे रहा हूँ या दस नम्बर दे रहा हूँ तो बहुत अच्छी बात है। कम से कम अपने जीवन का परीक्षण तो किया। उत्तर पुस्तिका को जाँचने का काम तो किया। दस प्रतिशत नम्बर भी देने का प्रयत्न तो किया। उतना तो आत्मविश्वास जगे कि मेरा कार्य दस नम्बर का है। ऐसा यदि प्रयत्न हो जाता है, पुरुषार्थ हो जाता है तो बहुत बड़ी बात है। इसलिए

**''रोज शाम को जीवन खाता खोलो करो विचार,**
**श्रावक तेरा यह आचार, श्रावक तेरा यह आचार''**

समय बदल गया है। समय बदला या नहीं, किंतु हम कुछ बदल गए हैं। बदलाव आया या नहीं?

(श्रोता– बदलावा आया)

क्या बदलाव आया? एक समय मेवाड़ी मक्के की रोटी बड़े प्रेम से खाते थे। आसानी से खाते थे। अब गेहूँ की रोटी खानी शुरू कर दी। पहले कहा करते थे–

**'गेहूँ छोड़ मक्के को खाना, मेवाड़ छोड़ कहीं नहीं जाना'**

मेवाड़ छूट गया। अब गेहूँ की रोटी पसंद आने लगी इसलिए मेवाड़ छूट गया। कोई अहमदाबाद, मुम्बई, सूरत, बेंगलूरू तो कोई कहीं चला गया।

बदलाव आ गया ना! और क्या बदलाव आया? पहले लोग पगड़ी बाँधते थे। सभा में कोई मेवाड़ वाला है पगड़ी लगाने वाला? एक भी व्यक्ति पगड़ी में नहीं दिख रहा है। और क्या बदलाव आया। बहुत सारे बदलाव आए, किंतु जो बदलाव आना चाहिए, वह नहीं आया। क्या बदलाव आना चाहिए था? भाटे से पाटे पर आने का बदलाव आना चाहिए था किंतु भाटे से पाटे पर आने का बदलाव नहीं आया। जब तक यह बदलाव नहीं आएगा, तब तक कार्य सिद्ध नहीं होगा। सिद्ध बनने के लिए क्या करना होगा? सिद्ध बनना है तो संयम लेना पड़ेगा। संयम के बिना सिद्ध नहीं बन पाएंगे। सिद्धि नहीं मिल

पाएगी। यदि हमारा जीवन संयमित नहीं हुआ, हमारे जीवन में अहिंसा-संयम और तप नहीं आया तो हम सिद्धत्व को प्राप्त नहीं कर पाएंगे। सिद्धि तब मिलेगी जब अहिंसा-संयम और तप रूपी धर्म हमारे जीवन में रम जाएगा।

शरीर में खून कहाँ-कहाँ दौड़ रहा है?

(श्रोता- पूरे शरीर में दौड़ता है)

हाथ में दौड़ता है या नहीं! पैर में दौड़ता है या नहीं! आँखों में दौड़ता है या नहीं! कान में दौड़ता है या नहीं! अंगुलियों में दौड़ता है या नहीं! नाखून में दौड़ता है या नहीं!

(श्रोता- दौड़ता है)

दौड़ता नजर आ रहा है क्या?

(श्रोता- दौड़ता नजर नहीं आ रहा है)

फिर कैसे बोल रहे हो कि खून दौड़ रहा है। हम अनुमान से कहते हैं। यदि खून नहीं दौड़ता तो हाथ सुन्न हो जाते। खून नहीं दौड़ता तो हम धड़ाम से नीचे गिर गए होते। कहीं पर थोड़ा सा खून अटक जाय तो क्या हो जाएगा? हमारे शरीर में खून है। हमारे शरीर में खून दौड़ रहा है, दिखता नहीं। वैसे ही हमें दिखे या नहीं दिखे हम अनुमान लगा लेते हैं। यदि हम स्वस्थ हैं, ठीक हैं, हम सब काम कर रहे हैं तो निश्चित रूप से हमारे भीतर खून दौड़ रहा है। वैसे ही हमारा जीवन एकदम स्वस्थ हो। अशांति, तनाव, टेंशन नहीं हो। इसका मतलब है कि हमारे जीवन के कण-कण में धर्म रम रहा है। धर्म दौड़ रहा है। वैसे ही अहिंसा-संयम और तप रूपी धर्म हमारे अणु-अणु में व्याप्त हो जाएगा, रग-रग में व्याप्त होगा तो हमें सिद्धि मिलेगी।

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

अजितनाथ भगवान के अजित गुण धाम को कोई जीत नहीं सकता। यहाँ पर हमें कोई भी पराजित कर सकता है। हम हार सकते हैं। काम, क्रोध, मद, मत्सर हमें हरा देंगे, किंतु अजित धाम, अजित गुण धाम को कोई जीत नहीं सकता। जिस पर दूसरा कोई झण्डा नहीं फहरा सकता। हमारा ही झण्डा फहरता रहेगा। ऐसे अजितनाथ भगवान के उस अजित गुण धाम को, हम भी प्राप्त करना चाहते हैं तो एक लक्ष्य बना लें कि मेरे जीवन में निकम्मापन नहीं रहेगा। आत्महित के लिए जैसे ही मुझे अवसर मिलेगा मैं अवश्य कुछ-न-

कुछ क्रिया करूँगा। मेरा समय व्यर्थ में व्यतीत नहीं होगा। इस प्रकार हमने अपने आपको मर्यादित कर लिया कि समय वेस्ट नहीं करूँगा, अपना समय आत्महित में लगाऊँगा तो समय सार्थक होगा। बूँद-बूँद करते हुए एक दिन घड़ा भर जाएगा।

कुएं की खुदाई होती है। एक दिन में कुआँ भर नहीं जाता। शिराओं से पानी आना शुरू होगा तो कुआँ भरेगा। उसी तरह हमारा एक-एक क्षण स्वाध्याय में लग गया तो एक दिन हमारे भीतर उसका परिणाम परिलक्षित होने लगेगा। इस प्रकार का हम लक्ष्य बनाएं।

नानेश ध्यान केंद्र में कुछ दिनों से हम ठहरे हुए थे। विहार का मन बना और आज गणेश नगर आने का प्रसंग बना। यहाँ पहले भी आया हूँ। पहले भी गणेश नगर आने का प्रसंग बना है। फिर अभी आने की स्थिति बनी। हम सुनते हैं। सुनना भी चाहिए, किंतु सुनने के साथ सुनवाई भी होनी चाहिए। आप कहेंगे म.सा. हम विनती करते हैं, किंतु सुनवाई नहीं होती। सुनवाई हो जाए तो मन राजी। वैसे ही हम जो सुनते हैं उसकी सुनवाई कर लें। सुनवाई हो जाए तो हमारा मन राजी हो जाएगा। हमारे जीवन में चार चाँद लग जाएंगे। ऐसा हम प्रयत्न करेंगे तो धन्य होंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

24 नवम्बर, 2022
गणेश नगर

# 6

# सच्चे सुख का राजमार्ग

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

अवसर्पिणी काल के दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ भगवान की स्तुति के माध्यम से उनके पथ को, उनके मार्ग को देखने की बात कही गई है। देखने का मतलब है उस मार्ग का अनुसंधान करना। उस मार्ग का शोध करना। जब यह जान लिया जाएगा कि वह मार्ग कैसा है तो यात्रा उत्साह से सम्पन्न हो सकती है। अत: यात्रा प्रारम्भ करने से पहले मार्ग को जान लेना बहुत जरूरी है।

भगवान ने कहा है- 'पढमं नाणं तओ दया' अर्थात् जो क्रिया तुम करना चाहते हो, जो अनुष्ठान करना चाहते हो पहले उसका ज्ञान होना चाहिए।

हम कौन-कौन से अनुष्ठान करते हैं?

उपवास कर लेते हैं, आयंबिल और एकासना भी कर लेते हैं। सामायिक, पौषध व संवर भी कर लेते हैं। इन सबको सम्पन्न कर तो लेते हैं किंतु मूल बात है कि इन्हें सम्पन्न करने की विधियों का ज्ञान हमें है या नहीं! यदि ज्ञान नहीं होगा तो हम कहीं-न-कहीं ठोकर खाएंगे। कहीं-न-कहीं अटकाव आएगा। कई दोष लगाने वाले बन जाएंगे। निर्दोष रूप से इन अनुष्ठानों की परिपालना करने में समर्थ नहीं बन पाएंगे।

**'पढमं नाणं तओ दया'**

अर्थात् पहले ज्ञान करो, उसके बाद आचरण करो। इससे भिन्न भी श्रावक और साधु के लिए आगम एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा देता है, वह यह कि जीव-अजीव आदि नौ पदार्थों का ज्ञान होना चाहिए। जो जीव-अजीव को नहीं जानेगा, उसके स्वरूप को नहीं जानेगा, वह व्रत-नियमों की सम्यक् प्रकार से परिपालना करने में समर्थ नहीं हो पाएगा।

श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में एक बात और बताई

गई है कि जो पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय आदि के अस्तित्व को नहीं जानता है, नहीं स्वीकारता है, जिसकी पुण्य-पाप पर आस्था और श्रद्धा नहीं है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र पर आरूढ नहीं किया जा सकता। ऐसा व्यक्ति साधु बन भी गया हो तो उसको छेदोपस्थापनीय चारित्र पर आरूढ नहीं किया जा सकता अर्थात् उसको बड़ी दीक्षा नहीं दी जा सकती। महाव्रतों की आराधना तभी हो पाएगी, जब जीव आदि पदार्थों का ज्ञान होगा। इसलिए सबसे पहले यह जानना है कि जीव क्या है और अजीव क्या है। यह जानना है कि पुण्य क्या है और पाप क्या है। इनका ज्ञान होगा तो चर्या सही हो पाएगी। जिसे पुण्य-पाप का ज्ञान नहीं होगा, उसकी चर्या सही हो पाना मुश्किल है।

व्यापारी हानि-लाभ का विचार कर व्यापार करता है। वह सोचता है कि मैं क्या करूँगा तो लाभ हो पाएगा और क्या करने से नुकसान होगा।

ऐसा विचार करता है या नहीं?

जैसा व्यापारी विचार करता है, वैसा ही विचार धार्मिक क्रियाओं को करते वक्त आवश्यक है। यानी हमें विचार करना चाहिए कि मैं सामायिक-संवर आदि जो भी क्रिया कर रहा हूँ उसमें लाभ क्या है और हानि क्या है। एक बार सामायिक और अनुष्ठान को गौण कर अपने जीवन व्यवहार पर दृष्टि डालें कि मैं अपने जीवन में क्या कमाना चाहता हूँ। लाभ कमाना चाहता हूँ या जो पाया है उसको भी गँवाना चाहता हूँ। बड़ी पुण्यवानी से मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। पुण्यवानी को आगे बढ़ाना है तो इस मनुष्य जन्म का कुछ रिजल्ट प्राप्त करना है। पहला रिजल्ट है मोक्ष और दूसरा रिजल्ट देवगति है। यदि नरक और तिर्यंच गति में चला गया तो जीवन की हानि होगी। विकास का ग्राफ नीचे गिर जाएगा।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में तीन व्यापारियों का उदाहरण दिया गया है। उनमें एक व्यक्ति पूँजी लेकर जाता है और उससे खूब कमाई करता है। वह खूब माल जुटाता है। खूब धन जोड़ लेता है। दूसरा व्यक्ति व्यापार के लिए गया पर अनुकूल हवा नहीं थी, जिससे वह लाभ नहीं कमा पाया पर मूल पूँजी लेकर वापस लौट आया। उसने नुकसान नहीं उठाया। तीसरा व्यक्ति भी व्यापार के लिए निकला। संयोग ऐसा बना कि वह जो काम करता उसमें नुकसान ही होता। नुकसान होते-होते उसकी मूल पूँजी भी हाथ से चली गयी। उसने मूल पूँजी भी खो दी।

मनुष्य जीवन मूल पूँजी है। लाभ, मोक्ष और देवगति है। मूल पूँजी खोने का अर्थ है नरक और तिर्यंच गति। हमें कितना विश्वास है कि हम लाभ की ओर बढ़ रहे हैं? हमने कभी सोचा कि हमारी मूल पूँजी सुरक्षित रहने वाली है या नहीं? पैसों के लिए हम बहुत सोचते हैं। पाँच रुपए का भी मुनाफा प्राप्त करने के लिए तैयारी करते हैं। लक्ष्य होता है कि पाँच पैसा भी खोए नहीं, पर प्राप्त मनुष्य जीवन के बारे में हम वैसा नहीं सोचते जबकि मनुष्य जीवन को लाखिणा कहा गया है।

मनुष्य जीवन लाखिणा है या नहीं? अरबों-खरबों रुपये खर्च हो जाएं तो भी मनुष्य जन्म मिलना आसान नहीं है। पैसों से यदि मनुष्य जन्म मिलता तो कोई भी प्राप्त कर लेता। पैसों से मनुष्य जन्म नहीं मिलता। पुण्यवानी से मनुष्य जन्म मिल पाता है।

हमारा क्या लक्ष्य होना चाहिए? हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए? हम लाभ कमाने के लिए आगे बढ़ें या मूल पूँजी खोकर चले जाएं?

(श्रोता- लाभ कमाने के लिए आगे बढ़ें)

ऐसा विचार अभी इसलिए बन रहा है क्योंकि अभी आप मनुष्य जीवन की महत्ता को सुन रहे हैं, किंतु जब अपनी चर्या को देखेंगे, अपने व्यवहार को देखेंगे तो पता चलेगा कि हमारी करनी कैसा परिणाम देने वाली है। एक बात स्पष्ट रूप से ध्यान में ले लेना कि जो अच्छा करेगा, उसका रिजल्ट अच्छा आएगा और जो बुरा करेगा उसका रिजल्ट भी वैसा ही आएगा।

किसी के साथ धोखाधड़ी करने पर कैसा रिजल्ट आएगा? हो सकता है कि धोखाधड़ी करके किसी ने बहुत सारे पैसे कमा लिए, कोई पैसे वाला बन जाए, जमीन हड़प कर उसका मालिक बन जाए, पर यह मालिकाना थोड़ी देर के लिए है। जैसे आकाश में चमकने वाली बिजली कुछ क्षण के लिए चमकती है, वैसे ही किसी के साथ की गई ठगी, किसी के साथ की गई धोखाधड़ी थोड़ी देर के लिए ही मन को तसल्ली देने वाली हो सकती है। ध्यान में रखना कि बुरी नीयत का परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता। बुरी नीयत वाले को कभी शांति नहीं मिल सकती। बुरी नीयत से कभी भी समाधि नहीं मिल सकती। दुनिया जाने या नहीं जाने, किंतु उसका मन जानता है।

अपने मन में जो विचार पैदा होता है उसको हम जानते हैं या नहीं?

किसी के प्रति घात का विचार करने पर दूसरा कोई जाने या नहीं, किंतु अपना मन जान जाता है। किसी का बुरा सोचने पर अपना मन जानता है कि मैंने बुरा सोचा। दुनिया के जानने न जानने से कोई मतलब नहीं है। दुनिया के जानने या न जानने से हमें रिजल्ट नहीं मिलेगा। रिजल्ट अपने कार्यों का हम स्वयं ही पाने वाले हैं। दूसरा न कोई हमें रिजल्ट देने वाला है और न दिलाने वाला है। यहाँ तो हो सकता है कि जज के द्वारा दंड दे दिया जाए, कोई दंड दिला दे किंतु जहाँ कर्मों का फल मिलेगा, वहाँ दूसरा कोई नहीं होगा। अपना कर्ता और विकर्ता मैं स्वयं ही हूँ। मैं ही अपने भाग्य का विधाता हूँ। हम जैसी चाहें वैसी रचना अपने भाग्य की कर सकते हैं।

एक व्यक्ति ने जमीन खरीदी। उसने विचार किया कि मुझे इस जमीन का उपयोग मकान बनाने के लिए करना है। उसने नक्शा तैयार करवाकर बिल्डिंग खड़ी कर ली। बिल्डिंग खड़ी करने से पहले नक्शा बना या नहीं बना?

(श्रोता– बना)

पहले बिल्डिंग बनाने का विचार उसके दिमाग में आया, उसका एक कच्चा नक्शा तय किया। बाद में डिजाइन बनाने वाले ने दो–चार प्रकार के नक्शे बनाकर दे दिये। अब निर्णय उसे करना है कि किस नक्शे के अनुसार बिल्डिंग खड़ी करे। वह एक नक्शा तय करता है। उसके अनुसार बिल्डिंग खड़ी हो जाती है। (वैसे ही हमारे विचारों का नक्शा हमें तैयार करना होता है। हम अपनी सुविधा जैसी चाहते हैं वैसा नक्शा बना सकते हैं। उसमें कोई कठिनाई की बात नहीं है) मकान का नक्शा बनाने के बीच कई कठिनाइयाँ आ जाती हैं। सरकारी अड़चनें आ जाती हैं। पड़ोसियों द्वारा अड़चनें उपस्थित कर दी जाती हैं, फिर भी प्रयत्न करके अपनी मनोभावना के अनुसार नक्शा बनाया जाता है और वैसी बिल्डिंग खड़ी भी की जाती है। वैसे ही हमारे जीवन में बहुत सारी कठिनाइयाँ आ सकती हैं। व्यवहार की भूमिका पर कठिनाई आ सकती है। जीवन जीने के क्षणों में बहुत सारी दिक्कतें आ सकती हैं। आ नहीं सकती, बल्कि आती ही हैं। उनका निराकरण कौन करेगा? कोई–कोई व्यक्ति हाथापाई करने लगता है। हाथापाई करना समाधान नहीं है।

एक व्यक्ति ने किसी को चार चाँटे लगा दिए। जिसको चाँटे लगे, मौका लगते ही उसने आठ चाँटे लगा दिए। क्या होगा? इससे समाधान हो

जाएगा? नहीं, इससे समाधान नहीं होगा। दोनों के मन में टीस बनी रहेगी। दोनों मौके की तलाश में रहेंगे। मौका लगते ही बदला लेने की सोचेंगे। जीवन व्यवहार में ऐसी बातें घटती रहती हैं। आदमी कितनी ही तैयारी करे, किंतु कहीं-न-कहीं चूक हो जाती है। चूक हो जाने पर अफसोस होता है। इसलिए पहले यह विचार करना होगा कि हमें कौन-सी दिशा लेनी है! शत्रुता को बढ़ाने वाली दिशा में आगे बढ़ना है या प्रेम की दिशा में आगे बढ़ना है! इस संबंध में एक बात और कह देना चाहता हूँ कि कहने की बात अलग होती है और जीवन जीने की बात अलग हो जाती है। कहना भी अच्छी बात है, किंतु कहने के अनुसार प्रवृत्ति भी होनी चाहिए। जहाँ कषाय बढ़ रहा हो, घर में क्लेश बढ़ने का प्रसंग हो तो उससे पराङ्मुख कैसे हो सकते हैं, उससे हम कैसे अलग हो सकते हैं, इस पर हमारी समीक्षा होनी चाहिए। ऐसा कार्य करें कि हम किसी भी निमित्त से कषायों के सहभागी नहीं बनें। मेरे जीवन में भी क्लेश नहीं आए व मेरे कार्य से भी दूसरों में क्लेश पैदा नहीं हो। यदि आदमी थोड़ा सोचकर चले तो बचाव हो सकता है। नहीं सोचेगा तो बह जाएगा। और एक बार बह गया, तो बह ही गया। बहता ही चला जाएगा। बहना आसान है। फिसलना आसान है। फिसलने के लिए, बहने के लिए प्लानिंग नहीं करनी पड़ती, किंतु निर्माण के लिए, ऊँचाई तय करने के लिए प्लान बनाना पड़ेगा।

हम लोग धार्मिक आराधना कर रहे हैं। उसके लिए हमारी प्लानिंग क्या है? हम कौन सा उद्देश्य लेकर धर्म-अनुष्ठान और आराधना कर रहे हैं?

जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए कि मैं समाधान में जी सकूँ, सुख में जी सकूँ।

आपका मन सुख में जीना चाहता है या दुःख में?

(श्रोता- हमारा मन सुख में जीना चाहता है)

सुख कहाँ मिलेगा?

घर में सुख मिलेगा या धर्म स्थान में?

(श्रोता- धर्म स्थान में)

(एक श्रोता- स्वयं के अंदर सुख मिलेगा)

सुख न तो घर में है और न ही धर्मस्थान में है। सुख अपने भीतर है। अपनी विचारधारा ही सुखी बनाने वाली है। धर्मस्थान में आकर भी हम दुःखी

हो सकते हैं और घर में रहकर भी सुखी रह सकते हैं। एक दु:ख पैदा हुआ श्री कृष्ण वासुदेव को। वह दु:ख धर्म-स्थान में ही पैदा हुआ।

कौन-सा दु:ख पैदा हुआ?

जाली, मयाली, उवयाली आदि राजकुमारों को दीक्षित होते हुए देखकर उन्हें दु:ख पैदा हो गया। उनके मन में विचार पैदा हुआ कि छोटे-छोटे राजकुमारों के मन में वैराग्य पैदा हो रहा है, पर मेरे मन में विरक्ति भाव पैदा क्यों नहीं हो रहा! मैंने ऐसा कौन-सा कठोर कर्म किया कि मैं भगवान की वाणी सुन रहा हूँ, पर्युपासना कर रहा हूँ फिर भी मेरे भीतर वैराग्य पैदा नहीं हो रहा है!

हमारे भीतर कभी ऐसा विचार आया?

(कुछ श्रोता- आया)

कहाँ पर आया? घर पर आया या स्थानक में?

बोलो, घर में आया या स्थानक में?

हमने 'अंतगडदशा सूत्र' में एक बात सुनी है कि श्री कृष्ण वासुदेव आने वाली चौबीसी में, आने वाले तीर्थंकरों की शृंखला में एक तीर्थंकर बनेंगे। सुनी है ना?

(श्रोता- सुनी है)

कैसे बनेंगे तीर्थंकर?

**'करी धर्म दलाली गोत्र तीर्थंकर बांध्यो मुरार जी'**

भगवान ने उनसे कहा कि तुम निदानकृत हो और निदान करके आने वाले वासुदेव कभी दीक्षित नहीं हो पाते, वे साधु नहीं बन पाते। भगवान से उन्होंने सुना कि मैं साधु नहीं बन पाऊँगा तो उन्होंने लक्ष्य बना लिया कि जो साधु बनना चाहेगा, उसके लिए मैं सहयोगी बनूंगा। ऐसा लक्ष्य बनाकर उन्होंने घोषणा करवा दी कि जो कोई भी साधु बनना चाहता है, दीक्षा लेना चाहता है, संयम स्वीकार करना चाहता है, उसे वैसा करने में यदि किसी प्रकार की अड़चन है, कठिनाई है तो मैं उसकी कठिनाई दूर करूँगा। उसकी सारी समस्या का समाधान करूँगा। उन्होंने घोषणा करवा दी कि यदि किसी के माता-पिता वृद्ध हैं, उनको सेवा की आवश्यकता है तो वह जिम्मेदारी मेरी है। यदि किसी के बाल-बच्चे छोटे हैं तो उनके लालन-पालन के दायित्व का निर्वाह मैं करूँगा।

इस घोषणा को सुनकर अनेक महानुभवों ने अरिष्टनेमि के चरणों में साधु जीवन स्वीकार किया। इस भावना ने, उनकी इस विचारणा ने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करवा दिया।

**'सुख दिया सुख होत, दुःख दिया दुःख होय।'**

मैंने थोड़ी देर पहले बोला कि हमारे विचार ही हमें सुखी बना सकते हैं और हमारे विचार ही हमें दुःखी बनाने वाले होते हैं। दुःख और सुख का सर्जन हम स्वयं करने वाले होते हैं। श्री कृष्ण वासुदेव अपनी विचारधारा को बदलकर बहुत-से लोगों को संयम दिलाने में सहायक हो गए। उससे वे आने वाले समय में साधु बन जाएंगे या नहीं?

बन जाएंगे।

साधु बनना उनके लिए कठिन होगा क्या?

आने वाले समय में तीर्थंकर बनेंगे तो पहले साधु बनेंगे। उसमें उनको कोई कठिनाई नहीं आएगी। कोई रुकावट नहीं आएगी, क्योंकि उन्होंने अपना रास्ता साफ कर लिया। स्पष्ट कर लिया कि मुझे इस डगर पर आगे बढ़ना है। मुझे भी साधु बनना है। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं मोह की कँटीली झाड़ियों को दूर करता जाऊँ। अंतराय की झाड़ियों को दूर करता जाऊँ। कँटीली झाड़ियां तथाभूत दूर होने से आने वाले समय में वे मनुष्य जन्म को प्राप्त कर साधु जीवन स्वीकार करेंगे। फिर तीर्थंकर पद को प्राप्त कर चार तीर्थों की स्थापना करके धर्म प्रभावना करते हुए अपने सारे कर्मों को क्षय करके मुक्ति का वरण करेंगे।

यह जीवन कौन-सा जीवन है?

यह निर्णायक जीवन है। जो भी निर्णय करना है, यहीं से करना होगा। यहाँ किए गए निर्णय से आपकी आगे की यात्रा निर्धारित होगी। यात्रा दुष्कर भी हो सकती है और सुगम भी। आगे के मार्ग को बीहड़ बनाएंगे तो उसमें से गुजरना मुश्किल हो जाएगा। आगे के मार्ग को सुगम बना लिया तो आगे चलने में कठिनाई नहीं होगी। बड़ी सुविधा रहेगी। आज हमारे सामने कई कठिनाइयाँ आती होंगी, किंतु हमने सही रास्ता अपना लिया तो आने वाले समय में कठिनाइयों का समाधान स्वतः हो जाएगा। आज आप साधु नहीं बन पा रहे हैं तो साधु बनने वालों को प्रोत्साहित कर अपनी साधना का मार्ग सुगम बना

सकते हैं।

शालिभद्र का नाम हमने बहुत बार सुना होगा। क्या खासियत थी उसमें?

उसने सदाबहार जिंदगी जी थी। सदाबहार जिंदगी जीने का अर्थ है सुखमय जीवन जीया। कोई तनाव नहीं, कोई टेंशन नहीं। उसका उस रूप में जीवन जीने का नक्शा कब बना था? संगम के भव में वह नक्शा बना और आगे चलकर उस पर बिल्डिंग खड़ी हो गई। हम भी मनुष्य जीवन प्राप्त किए हुए हैं। मैं केवल भविष्य की बात नहीं कह रहा हूँ। भविष्य का निर्माण वर्तमान पर आधारित है। हमारा वर्तमान सुंदर बनेगा तो भविष्य निश्चित ही सुंदर होगा। यदि वर्तमान उलझनों से भरा होगा तो हम भविष्य को सुलझाएंगे कैसे। उन उलझनों का समाधान हमें यहीं पर प्राप्त कर लेना उचित है। सारी समस्याएँ यहाँ सुलझा ली तो आगे का मार्ग बड़ा सुगम होगा। सुंदर होगा। पर हम तो उलझनों में ज्यादा लगे रहते हैं। हम उलझाने का काम ज्यादा करते हैं या सुलझाने का?

(श्रोता- उलझाने का काम ज्यादा करते हैं)

आप क्या कर रहे हैं, यह निर्णय मुझे लेने की आवश्यकता नहीं है। आपको खुद समीक्षा करनी होगी। आचार्य पूज्य नाना गुरु ने समीक्षण ध्यान की विधि बताई कि तुम अपनी प्रज्ञा से जान सकते हो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अपनी यात्रा को कैसे सुगम बना सकते हो।

यहाँ पर जितने लोग बैठे हैं, उनमें से कितने लोगों को विश्वास है कि हमारा आने वाला जन्म नरक और निगोद का नहीं होगा? कितने लोगों को विश्वास है कि हम पशु योनि में जाने वाले नहीं हैं? एकदम पक्का विश्वास किन-किन को है?

कहने के लिए तो कुछ भी कह देंगे। कह देंगे कि मुझे विश्वास है कि मैं पशु योनि में नहीं जाऊँगा।

नरक-निगोद में नहीं जाने का भगवान ने एक उपाय बताया।

**एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी।**

भगवान ने फरमाया- तथारूप श्रमण माहण से एक आर्य वचन सुनकर उसे हृदय में धारण कर लिया तो नरक निगोद में नहीं जाएगा। 'एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी' कहकर मार्ग एकदम साफ

कर दिया कि इसको जिसने अपने जीवन में उतार लिया, वह नरक-निगोद में नहीं जाएगा। भगवान ने निर्णय दिया कि जिसने कभी विपरीत जीवन नहीं जीया, वह नरक-निगोद में नहीं जाएगा। भगवान ने कहा कि जिसने साधु जीवन की परिपालना की होगी, श्रावक व्रत की परिपालना की होगी, वह नरक-निगोद में नहीं जाएगा।

यह मार्ग किसने बताया?

(श्रोता- भगवान महावीर ने बताया)

किसको बताया?

(श्रोता- हमें बताया)

जो देखना चाहे उसको बताया।

टी.वी. चल रही है। हम देखना चाहेंगे तो टी.वी. देख लेंगे और आँख बंद करके बैठ जाएंगे तो नहीं देख पाएंगे। भगवान की वाणी पर चलेंगे तो रास्ता क्लीयर है। उस दिशा में आगे बढ़ेंगे तो अपने भविष्य का निर्माण करने वाले होंगे। उस दिशा में आगे नहीं बढ़ेंगे तो मनुष्य से नरक में जाने का रास्ता भी खुला हुआ है एवं पृथ्वीकाय, अपकाय, वनस्पतिकाय व बेइंद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरेंद्रिय योनियों में जाने के लिए भी इस मनुष्य जन्म से रास्ता खुला है। मनुष्य जन्म ऐसा चौराहा है जहाँ से जिधर जाना चाहते हैं उधर जा सकते हैं। निर्णय खुद करना होगा कि किधर जाना है।

हमें कहाँ जाना है बताओ?

(एक श्रोता- मोक्ष में जाना है)

देखो! फालतू की बातें करना सुहावे कोनी। कोई कहे कि मैं अरबपति बनना चाहता हूँ तो अरबपति बनने के लिए भूमिका क्या है? मोक्ष जाना है तो भूमिका क्या है? तुम सौ मंजिल की बिल्डिंग खड़ी करना चाहते हो पर तुम्हारे पास सीमेंट, बजरी-कंकरीट है ही नहीं तो बिल्डिंग खड़ी कैसे होगी। साधन होंगे तो बिल्डिंग खड़ी होगी। यदि पास में कुछ नहीं है तो नींव खोदने मात्र से बिल्डिंग खड़ी नहीं होगी? साधन नहीं होगा तो नींव खुदी रह जाएगी। नींव भरना भी मुश्किल हो जाएगा। हम मोक्ष की बात कर रहे हैं, किंतु हमारे पास साधन क्या है?

अमेरिका घूमने के लिए कितने पैसे पास में होंगे तो घूम पाएंगे? कोई

घूमने वाला है क्या? कोई घूमकर आया है क्या?

(एक श्रोता– तीन लाख होंगे तो घूम पाएंगे)

जानकारी करने पर मालूम पड़ जाएगा कि कितने पैसे पास होने चाहिए। जिसके पास तीस रुपये नहीं हैं, वह सोचे कि मैं अमेरिका घूम आऊँ तो सपना देखना ही होगा। इसी प्रकार जिसके पास तीन लाख रुपए हैं, उसका घूमना भी सपना देखने के समान है। हकीकत में उसका घूमना नहीं होगा, क्योंकि उसके पास तीन लाख की ही पूँजी है। हाँ, तीन करोड़ रुपये यदि पास में हैं तो वह एक बार सोच सकता है कि चलो लगा देते हैं तीन लाख रुपए। कोई दिक्कत नहीं है लगा देते हैं।

आचार्य गुरुदेव बीकानेर विराज रहे थे। जयपुर के डॉक्टर करणसिंह रतनू दर्शन करने के लिए आए। उन्होंने गुरुदेव के शरीर जाँच की। गुरुदेव ने उनसे कहा कि मैं विहार करना चाहता हूँ। डॉक्टर ने कहा कि जिसके पास दस रुपए हैं, वह सौ रुपए खर्च करना चाहे तो कैसे करेगा!

इसका मतलब क्या हुआ?

इसका मतलब हुआ कि आपके पास इतनी शक्ति नहीं है कि आप विहार कर सकें। विहार करना शरीर के लिए हानिकारक होगा। विहार करना यानी शरीर को और कठिनाई में डालना। दस रुपए पास में होंगे और सौ रुपए खर्च करेंगे तो 90 रुपए का कर्जा होगा। वैसे ही जिसके पास तीस रुपए, तीन सौ रुपए, तीन हजार रुपए हैं वह तीन लाख खर्च करने की बात करे तो क्या होगा?

इसलिए मोक्ष की बात अभी एक बार गौण करते हैं। ये खाली मन के लड्डू हैं। मन के लड्डू कितने भी खा लें, पेट नहीं भरेगा। अत: वर्तमान में हमारी साधना का इतना लक्ष्य बने कि मैं अपने जीवन को सुख से जी सकूँ। तनावमुक्त होकर जी सकूँ। तनावमुक्त होकर कैसे जी पाएंगे? सुख से जीने का उपाय क्या है? बहुत सारी परिस्थितियाँ आएंगी, कठिनाइयाँ आएंगी। बहुत सारे अच्छे–बुरे प्रसंग भी आएंगे।

उन प्रसंगों पर अपने आपको दर्पण की भाँति बना लो। दर्पण के सामने पुरुष भी आता है, स्त्री भी आती है। काला–कलूटा और गोरा भी आता है। ठिगना आता है तो लम्बा भी आता है। उसके सामने कोई भी आए उससे

उसको कोई फर्क नहीं पड़ता। जो जैसा है वैसा दिखा देता है। कोई उसे सोने के फ्रेम में मढ़ा दे, रत्न का फ्रेम मढ़ा दे और सोचे कि दर्पण मुझ काले को गोरा दिखा देगा, ठिगने को लम्बा दिखा देगा, तो क्या वह वैसा दिखाएगा? नहीं, दर्पण के सामने जो जैसा आएगा वह वैसा ही दिखाएगा। हमें भी दर्पण की भाँति बनना है। हमारे सामने विभिन्न प्रकार के विचार, अनेक तरह के प्रसंग आते रहेंगे, किंतु उनसे अपने आपको प्रभावित नहीं होने देना है। यह सुख का राजमार्ग है। यह सुख का सच्चा सूत्र है। आप चाहे स्थानक में रहें या घर में, यह विचारधारा अपना ली तो फिर आपको कोई तनाव देने वाला नहीं है।

कौन-सी विचारधारा?

यह विचारधारा कि कितनी भी कठिनाइयाँ मेरे सामने आ जाएं, कितनी भी समस्याएँ आ जाएं, कितनी भी ऊँच-नीच हो जाए, मैं उनसे प्रभावित नहीं होऊंगा।

**'दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवते बने वा'**

सुख का क्षण हो या दुःख का, सुविधाएं मिलें या असुविधाएं हो, शत्रु के बीच में छोड़ दिया जाए या बन्धु वर्ग के बीच, कोई फर्क नहीं पड़े। मेरी विचारधारा यह रहे कि ये सारे बनते-बिगड़ते रहेंगे, उतार-चढ़ाव के प्रसंग आते रहेंगे, किंतु इनसे मेरा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। मैं जब तक इनसे जुड़ नहीं जाऊँगा, तब तक मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं होगा। मैं स्वतंत्र हूँ।

ऐसी विचारधारा बनी हो तो दुनिया में कोई भी हमें तंग नहीं कर सकता। कोई भी दुःखी नहीं कर सकता। आप चाहकर भी दुःखी नहीं होंगे।

यह सूत्र किसके पास है?

(श्रोता- हमारे पास है)

सुखी बनने का राज किसके पास है?

(श्रोता- हमारे पास है)

हम सुखी बनना चाहें तो बन जाएं, नहीं तो जो चल रहा है वह तो चल ही रहा है। वह चलता रहेगा।

भगवान ने हमें रास्ता बता दिया। उस रास्ते पर चलना हमें होगा। जिसने यह मान लिया कि यह तो बहुत कठिन रास्ता है, वह कभी आगे नहीं बढ़ पाएगा। जिसने यह मान लिया कि इस रास्ते पर चलना बहुत मुश्किल है,

उसके लिए मुश्किलें बनी रहेंगी। वह कभी आगे नहीं बढ़ सकेगा। वह रास्ता तय नहीं कर सकता। इससे विपरीत जिसने चुनौतियाँ झेलने की हिम्मत कर ली, जिसने साहस बटोर लिया, उसके लिए कठिनाइयाँ किनारा कर लेंगी। उसका मार्ग साफ होगा। उसे अपना रास्ता तय करना है। वह रास्ता तय करेगा।

आप भी विचार करें। आप ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहाँ से हर तरफ जाने की छूट है। जिधर जाना चाहें आपकी मरजी है। मनुष्य गति में जाना है तो आपकी मरजी। देवगति में जाना है तो आपकी मरजी और पशु योनि में जाना चाहते हैं तो भी आपकी मरजी। सुख में जीना चाहते हैं या दु:ख में, आपकी मरजी। निर्णय आपको करना है। निर्णय करने के लिए आगे बढ़ें।

आपको जितने समय तक संत म.सा., सतिया जी का सान्निध्य मिले उनसे लाभान्वित हों। अपने आपको लाभ की स्थिति में आगे बढ़ाने का प्रयत्न करें। यह तो आपको मालूम है कि अभी ज्यादा समय रुकने की गुंजाइश नहीं है। मेरे को कई बार विचार आता है कि लोगों को जितनी कम फुरसत होती है, साधुओं को उससे भी कम फुरसत है। फिर भी जितने समय तक साधु-साध्वियों का सान्निध्य मिले आप उनका लाभ उठाएं। मैंने सुख का जो राज बताया, जो सूत्र बताया उसको स्वीकार कर लेंगे तो सदा के लिए प्रकाश मिल जाएगा। फिर संतों के संगत की आवश्यकता नहीं रहेगी।

हमने जो रसायन प्राप्त किया है, उसको आजमाने का प्रयत्न करें। उसके लिए प्रयत्नशील बन जाएंगे तो वह जीवन को सुखी बनाने वाली होगी। भविष्य में सुख प्रदान करने वाली होगी। इस दिशा में आगे बढ़ें और अपने आपको लाभान्वित करें। इतना ही कहते हुए विराम।

25 नवम्बर, 2022
आयड़

# 7

# प्रभु निहालूं तेरा पथ

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

**'चरम नयणे करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार'**

बहुत मार्मिक बात कही गयी है कि जो मनुष्य चर्म चक्षुओं से ही देखता है, वह भटक जाता है। चर्म चक्षुओं से भगवान के मार्ग को नहीं देखा जा सकता है। जो इनसे देखने का प्रयत्न करता है, वह अपने मन को समझाने का प्रयास करता है।

ध्यान में लेना, चर्म चक्षु का मतलब जो आँख हमें मिली है, उससे है। इनसे आदमी भटकता है। अब इससे एक प्रश्न खड़ा होगा कि क्या आँख मिलना दोष है? बिना आँख वाले कौन-से जीव होते हैं? एकेंद्रिय, बेइंद्रिय, त्रींद्रिय जीवों के आँख नहीं होती। उनके सामने अँधेरा ही अँधेरा है। बिना आँख के चारों तरफ अँधेरा है। बिना आँख के हम अज्ञान में जीने वाले होंगे। आँख हमारे ज्ञान के लिए सहयोगी है। ऐसा होते हुए भी ऐसा कैसे माना जाय कि वह भटकाने वाली है?

जिज्ञासा उत्तम है। भटकाने वाली होने का अर्थ समझ लेना जरूरी है। ऊपर कहा गया है कि चर्म चक्षुओं से ही देखना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मात्र उसी को महत्त्व देना है। दूसरे अर्थ में उसका उपयोग जिस रूप में किया जा रहा है, उस पर विचार किया जाना चाहिए। उसका सही उपयोग किया जाता है तो वह हमें आगे बढ़ाने वाली बन सकती है, पर यदि उसका दुरुपयोग किया गया तो मंजिल नहीं मिलेगी, भटकाव होगा।

**'चरम नयणे करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार'**

इसमें बताया गया है कि चर्म चक्षुओं से देखता हुआ सारा संसार भूला है क्योंकि चर्म चक्षुओं से बहुधा किसी की बुराइयों पर ही ध्यान देते हैं।

किसी को वंदन करते देखते हुए भी देखते यह हैं कि वह 'ऐसे' वंदना कर रहा है यानी अविधि से कर रहा है। अमुक सामायिक में 'ऐसे' बैठ रहा है। सामायिक में इधर-उधर देख रहा है। उसने धार्मिक क्रिया नहीं की। उसने आहार-पानी छोड़ दिया। हम प्रतिक्रिया ज्यादा करते हैं। किसी की अच्छाई देखना बहुत कठिन है और बुराई देखना बहुत आसान है। हमसे कोई पूछे कि आप बुराई चाहते हो या अच्छाई तो हमारा उत्तर होगा कि हम अच्छाई चाहते हैं। अधिकांश लोग अच्छाई चाहते हैं, किंतु गले बुराई को लगाते हैं। अच्छाई सुनने में अच्छी लगती है, समझने में भी अच्छी लगती है, किंतु आचरण के समय बुराई ज्यादा प्रिय लगती है। क्योंकि आसानी से प्रवाह रूप में उसका आचरण हो जाता है।

एक बार की बात है। हम लोग विहार कर रहे थे पश्चिम बंगाल की ओर। झारखण्ड की राजधानी क्या है?

(कुछ श्रोता- झारखण्ड की राजधानी रांची है)

किसको जाना पड़ता है रांची? खैर, वह बात अलग है। हम लोग रांची पहुँचे। जैन मुनियों का विचरण उधर बहुत कम होता है। एक पढ़े-लिखे युवा को सामायिक करने की प्रेरणा दी गई। वह कहने लगा, म.सा. आप और कुछ भी बता दो मैं करने के लिए तैयार हूँ किंतु सामायिक के लिए मत बोलो। उसने कहा कि मैं उपवास कर लूँगा, बेला-तेला कर लूँगा, किंतु सामायिक नहीं कर पाऊंगा। उसके लिए मत बोलो। सामायिक से वह चिढ़ा हुआ था। सामायिक के लिए उसका अलग ही सोच बना हुआ था। मान लो कि उसको सामायिक के नाम से एलर्जी थी।

सामायिक से एलर्जी होती है या एनर्जी मिलती है?

(श्रोता- सामायिक से एनर्जी मिलती है)

किसी को एलर्जी होती है तो किसी को एनर्जी मिलती है। किसी को सामायिक से एलर्जी भी हो सकती है।

उस भाई ने कहा कि मैं सामायिक नहीं कर सकता, कुछ और करना हो तो कर सकता हूँ। तपस्या कर लूँगा, किंतु सामायिक मेरे लिए नहीं जम पाएगी।

हमने उसके भीतर बैठे हुए भ्रम को निकालने का प्रयत्न करने की दृष्टि

से पूछा कि भाई ऐसा क्या हो गया जिससे तुम सामायिक से एकदम से चिढ़े हुए हो?

उसने कहा, म.सा. हमने सामायिक देखी है। मेरी ऐसी मान्यता है कि सामायिक में बैठने वाला उस समय एक विस्फोटक शक्ति का सर्जन करता है और सामायिक से उठते ही विस्फोट करता है अर्थात् सामायिक में बैठकर प्लान बनाता है और सामायिक से उठते ही बम बरसाने लगता है।

आप समझ गए बात। विशेष समझाने की आवश्यकता नहीं है। वह भाई किस कारण से सामायिक से दूर हो रहा था? सामायिक उसके लिए एलर्जी का कारण क्यों बन रही थी? उसने घर में ऐसा ही देखा कि सामायिक करने वाला सामायिक से उठते ही बहू पर, पोते पर, बेटे पर शब्दों की बौछार करने लगता है। वह कहने लगता कि तुमने यह नहीं किया, वह नहीं किया, ऐसा कर दिया, वैसा कर दिया। घर में एक प्रकार से क्लेश का वातावरण खड़ा हो जाता। इसलिए उसने कहा कि ऐसी सामायिक करके क्या करूँ! उसने कहा, सामायिक के लिए मुझे मत कहो, और जो कुछ कराना है करा लो।

यह क्या था? यह भ्रम था या सही था?

उसने देखा ही ऐसा है तो मापदण्ड बनाएगा कि सामायिक ऐसी होती है।

आपको वंदना करते देखकर नया व्यक्ति क्या सीखेगा? जिसको पता नहीं है कि वंदना कैसे की जाती है वह वैसे ही वंदन करेगा जैसा आपको करते देखेगा। आपने खड़े-खड़े वंदना की तो वह भी खड़े-खड़े करेगा। आपने उठ-बैठकर वंदना की तो वह भी उठ-बैठकर वंदना करेगा। वह देखेगा कि आप हाथ कैसे घुमाते हो। हमारे यहाँ पर कोई नया आदमी आ जाए, हमारे भाइयों की वंदना और सामायिक देख वह भी वैसी ही वंदना और सामायिक करे तो उसको सुकून मिलेगा या क्या मिलेगा? यहाँ पर बहुत बड़ा बेजाल है। समझाना बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि हमारी आँखें कुछ ग्रहण करती रहती है और हमारा मन आँख के द्वारा जो ग्रहण किया उसकी समीक्षा करता है। उस समीक्षा में बहुत बार वह स्वयं उलझन में पड़ जाता है कि क्या करूँ, कैसे करूँ, क्योंकि वंदना करने वालों में एकरूपता नहीं है। सामायिक में एक सदृशता नहीं है। वंदना करने वाले कई लोग दाहिनी तरफ से हाथ घुमाते हैं तो कई दूसरी तरफ से। कोई वंदन करता हुआ भी इधर-उधर देखता रहता है। इसी प्रकार

सामायिक करने वालों की भी भिन्न-भिन्न रूप से क्रियाएं होती हैं, जिन्हें देखकर व्यक्ति भ्रान्त बन जाता है। वह भी यदि वैसी ही क्रियाएं करने लगे तो वह सही मार्ग से भटक जाता है।

इसलिए दिव्य विचार रूपी नयनों से, समीक्षण प्रज्ञा से विचार किया जाय। हम उस मार्ग की समीक्षा करें। बुराई हर जगह भरी होगी। बुराइयों को मिटाना संभव नहीं है। क्या पूरी दुनिया के लोगों से बुराई निकल जाएगी?

(श्रोता- नहीं निकलेगी)

यदि बुराई हट गयी तो फिर मोक्ष में और संसार में क्या फर्क होगा। मोक्ष और संसार में क्या फर्क है?

संसार में बुराई भरी रहेगी। जैसे काँटा, कंकर और पत्थर बिखरे रहते हैं। आप बाइक से या पैदल चलते हो तो कंकर-पत्थर आते हैं या नहीं? खड्डे-खोचरे होते हैं या नहीं?

होना नहीं चाहिए किंतु होता है। सड़कों की सफाई रोज होना बहुत मुश्किल है। गाँव और नगर की सफाई करना भी कठिन होता है फिर मेन रोड कैसे साफ-सुथरा होगा। बुराई हर जगह मिलेगी। इन बुराइयों से बचकर निकलने के लिए, इनसे बचाव करने के लिए संभलकर चलना है। जागरूक होना है। जो जागरूक हो जाएगा, जिसका मस्तिष्क जागृत हो जाएगा, वह संभलकर चलेगा। वह चाहेगा कि मुझे कोई काँटा नहीं चुभे। मुझे कोई बुराई नहीं लगे। जागरूक व्यक्ति अपने आपको बुराई से बचाकर चलेगा। जैसे संसार में बुराई रहेगी, वैसे ही राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ भी होंगे। होंगे या नहीं होंगे?

होंगे। रहेंगे। इन्ही के कारण संसार है। ये हट जाएंगे तो संसार नहीं रहेगा। हम सोच भी लें कि किसी में क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं मिले पर यह संभव नहीं है। ये रहेंगे। हम भी उनसे बचे हुए नहीं हैं, किंतु उनसे बचाव का लक्ष्य बनाया जा सकता है। बनाना चाहिए।

अर्जुन माली ने कितने मनुष्यों की घात की?

(श्रोताओं ने कहा- 1141 मनुष्यों की घात की)

यह बात आपको याद है। साल में एक-दो बार सुनते होंगे तो भी याद है। आज पाँच-दस, पच्चीस आदमियों को मारने वाला कोई आदमी साधु बन

जाए, तो हम उसके प्रति क्या विचार करेंगे? हमारे मन में उसके प्रति क्या विचार पैदा होगा?

कुछ लोग उसको वंदना भी करेंगे। कुछ लोग उसको अच्छा भी समझेंगे, किंतु कुछ लोग प्रतिक्रिया किए बिना नहीं रहेंगे। कहेंगे–

**'सौ-सौ चूहे खाय बिलाडी हज को चली'**

कहेंगे, अरे साहब इतने मर्डर किए, इतना गबन किया और साधु बन गया। इस तरह की प्रतिक्रिया होती है या नहीं?

(श्रोता– होती है)

अर्जुन माली को भी ऐसी प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ा, किंतु उसने अपने आपको शांत रखा। उसने अपना बचाव किया। किसी ने व्यंग्य कसे, पत्थर फेंके, किसी ने डण्डे से मारा किंतु उसने इन सबसे अपने आपको अलग रखा। उनमें अपने आपको लिप्त नहीं होने दिया। मन में प्रतिक्रिया पैदा नहीं होने दी। उसके मन में कोई शिकायत पैदा नहीं हुई। यह दिव्य विचारों में देखना हुआ।

उसका परिणाम क्या निकला?

(श्रोता– छह महीनों में मोक्ष प्राप्त हो गया)

छह महीनों में मुक्ति हो गयी। छह महीनों में मोक्ष हो गया। अर्जुन माली का दृष्टांत हमें एक मौका उपलब्ध कराता है समीक्षा करने का। विचार करने का अवसर देता है कि 1141 मनुष्यों की घात करने वाला जीव भी छह महीनों में मोक्ष जा सकता है, तब हमको मोक्ष क्यों नहीं हो सकती? हमने तो 1141 व्यक्ति की घात की ही नहीं फिर हमें क्यों नहीं होगा मोक्ष।

थोड़ा पीछे लौटकर उस घटना पर गौर करें, जब ऋषभदेव भगवान द्वारा देशना फरमाने के बाद भरत चक्रवर्ती खड़ा होकर निवेदन करता है कि भगवन्! मेरी मुक्ति कब होगी?

क्या पूछा भरत चक्रवर्ती ने?

(उन्होंने पूछा कि मेरी मुक्ति कब होगी)

मन में ऐसा प्रश्न पैदा होना भी बहुत कठिन है। यहाँ बैठने वालों ने कभी पूछा कि मेरी मुक्ति कब होगी? परेशानियों में जरूर पूछा होगा कि म.सा. व्यापार में बहुत अड़चन आ रही है। कोरोना के बाद तो हालत बहुत मुश्किल

हो रही है। आपको कोई मंत्र वगैरह बताना है तो बता दीजिए। ऐसी पृच्छा तो हम बहुत बार सुनते हैं। म.सा. के पास क्या मंत्र होगा। जो जिस रास्ते पर चला नहीं वह उसके बारे में क्या बताएगा, आत्म-विश्वास व पुरुषार्थ से बढ़कर क्या मंत्र होगा? किंतु आदमी के मन में हो जाता है कि मैंने म.सा. के सामने बात कह दी, मेरा मन हलका हो गया। बहुत कम लोगों ने ऐसे सपने देखे होंगे कि मैं साधु बन गया। दूसरे-दूसरे सपने तो बहुत देखें होंगे। देखते भी होंगे। कई लोग ऐसे होते हैं जो नींद में गए नहीं कि स्वप्न देखना शुरू कर देते हैं। रात भर सपने देखते रहते हैं। वे सपने अलग ही होते हैं।

ऐसे स्वप्न कितने लोगों को आए कि मैं साधु बन गया, मैं भगवान महावीर की पर्युपासना कर रहा हूँ, मैं सुधर्मा स्वामी की सभा में बैठा हूँ। किसी को आए क्या ऐसे स्वप्न?

(सभा में उपस्थित एक श्रोता ने हाथ खड़ा किया)

क्या सपना आया?

(श्रोता ने कहा- मैंने दीक्षा ले ली)

अच्छा! दीक्षा ले ली। वह व्यक्ति, व्यक्ति क्या जिसने सपना साकार नहीं किया। कुछ लोग स्वप्न देखकर ही राजी हो जाते हैं और कुछ लोग स्वप्न देखते ही साकार करते हैं। सावधान! सारे सपने साकार करने के नहीं होते। किसी ने सपना देखा कि मैंने अमुक का मर्डर कर दिया। वह यदि उसे साकार करने जाएगा तो क्या होगा? जेल में चला जाएगा। अत: स्पष्ट है कि यदि कोई अच्छा स्वप्न देखा हो, कुछ अच्छा भाव बना हो तो उसे पूरा करना चाहिए। केवल स्वप्न देखकर नहीं रह जाना चाहिए। केवल अच्छा भाव बनाकर नहीं रह जाना चाहिए। उसे पूरा करना चाहिए। उसे पूरा करने को कहते हैं सपने को साकार करना।

यह भी प्रमोद का विषय है कि इतनी बड़ी सभा में एक भाई ने तो अपना हाथ खड़ा किया कि उसने स्वप्न देखा कि वह साधु बन गया। जम्बूकुमार, आर्य सुधर्मास्वामी की सभा में पहुँचे, उनकी देशना सुनी। पहले व्याख्यान को सुनकर ही उनका मन वैराग्य से ओत-प्रोत हो गया। उन्होंने विचार कर लिया कि मुझे साधु बनना है। कितने व्याख्यान सुनने के बाद वैराग्य आ गया?

(एक व्याख्यान सुनने से ही वैराग्य आ गया)

सभा में बहुत-से लोग थे किंतु जम्बूकुमार की तरह सुनने वाले कितने लोग थे। वर्षा मारवाड़ में भी होती है, मेवाड़ में भी होती है और दूसरे अंचलों में भी होती है। वर्षा केवल भारत में ही नहीं होती है अपितु अमेरिका व इंग्लैण्ड में भी होती है।

वर्षा अन्यान्य देशों में भी होती है। ऐसा नहीं है कि भारत में ही होती है। वर्षा का पानी चट्टानों पर भी गिरा, रेत के धोरों पर भी गिरा और काली मिट्टी पर भी गिरा। क्या अंतर आएगा? चट्टानों पर गिरा पानी बह जाएगा। धोरों पर गिरा पानी नीचे से निकल जाएगा। पहाड़ों का पानी ऊपर से फिसलता है और धोरों का पानी भीतर जाकर फिर बाहर बह जाता है। काली मिट्टी पर पानी गिरता है तो वह पानी को सोख लेती है। सूर्य की किरणों को भी काली मिट्टी ज्यादा एब्जार्ब करती है। काला रंग ज्यादा एब्जार्ब करता है। उसका यदि अनुभव करना है तो डामर की सड़क पर चलकर देखा जा सकता है। काली सड़क जितनी गर्म होती है, उतनी गर्म सड़क के साइड में लगी सफेद पट्टी नहीं होती। सफेद हिस्सा किरणों को एब्जार्ब कर वापस छोड़ देता है और काली मिट्टी अपने में संग्रह कर लेती है। काली मिट्टी पानी को पी लेती है। अपने आप में रमा लेती है। जैसे काली मिट्टी पानी को अपने भीतर रमा लेती है वैसे ही कुछ व्यक्ति सुने गए व्याख्यान को पी जाते हैं। पूरा का पूरा पी जाते हैं। पूरा का पूरा पी जाने का मतलब है उसको हृदयंगम कर लेते हैं।

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

जम्बूकुमार ने आँखों से क्या देखा? शब्द आँखों से नहीं देखे जाते। शब्द कानों से सुने जाते हैं। कानों से सुनने के बाद मन उसकी समीक्षा करता है।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. छोटे-से गाँव दाँता के रहने वाले थे। उन्होंने भादसोड़ा में एक बार व्याख्यान सुना। व्याख्यान सुनना नहीं चाहते थे, किंतु बहनोई और सगाजी के आग्रह से सुना। उन्होंने जब व्याख्यान सुना तो सुनाने वाले म.सा. ने कहा कि कल छह आरों की कहानी सुनाएंगे। कहानी सुनने के लिए उनका भी मन हुआ और वे रुक गए। अगले दिन म. सा. ने छह आरों का वर्णन भी सुनाया कि वनस्पति की हिंसा करके व्यक्ति कैसे कर्मों का बंध करता है।

उसे सुनने के बाद उन्होंने घोड़े की लगाम कसी और चल पड़े। बढ़ गए। कहानी सुननी थी वह सुन ली। अब क्यों रूका जाय। रास्ते में जंगल पड़ता था। जंगल के शांत वातावरण में उनकी अनुप्रेक्षा चालू हुई कि छठा आरा कितना भयंकर है। क्या मुझे छठे आरे में जन्म लेना पड़ेगा? उनकी आत्मा चीख पड़ी कि नहीं, मैं छठे आरे में जन्म नहीं लेना चाहता।

छठे आरे में जन्म नहीं लेना है तो क्या करना पड़ेगा? बचाव का रास्ता क्या है? यदि साधु जीवन या श्रावक जीवन की आराधना कर ले तो शास्त्र कहता है कि साधु जीवन और श्रावक जीवन की आराधना करने वाला देवलोक में ही जाएगा।

देवलोक में कम से कम आयुष्य कितना होता है?

(एक श्रोता ने कहा- दस हजार साल होता है)

दस हजार साल में क्यों जाएंगे? जो साधु-श्रावक आराधक हो गया वह तो पल्योपम सागरोपम की स्थिति में जाएगा, दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव भव में नहीं जाएगा। छठा आरा निकल जाएगा। देवलोक से वापस आएगा तब छठा आरा निकल जाएगा।

नानालाल जी ने छठे आरे पर विचार किया और मन में संकल्प कर लिया कि मुझे साधु बनना है। इस संकल्प का उनके जीवन में, व्यवहार में असर आया। उनकी माँ पीहर में थीं। वे ननिहाल पहुँचे और माता से धर्म चर्चा करनी शुरू कर दी। उनकी माँ विचार करने लगीं कि यह धर्म क्रिया को मानता नहीं था। आज धर्म की बातें करने लगा है। नानालाल जी को मालूम पड़ा कि अमुक जगह संत पधारे हुए हैं तो उन्होंने माँ से कहा कि चलो माँ तुम्हें संतों का दर्शन करा देता हूँ। माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि अब तो यह संतों का दर्शन कराने के लिए भी तैयार हो रहा है। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी बात स्पष्ट कर दी कि मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है। खोजी दिमाग था। उन्होंने जगह-जगह साधुओं के दर्शन किए। पर्युपासना की। व्याख्यान सुना। ज्ञान-ध्यान सीखा, किंतु मन नहीं भरा। उनके मन में संतुष्टि नहीं हुई।

युवाचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. उस समय कोटा में विराज रहे थे। उन्होंने गणेशलाल जी म.सा. के दर्शन किए। दर्शन करते ही उनके मन ने गवाही दे दी कि ये तुम्हारे गुरु होने लायक हैं। कहानी लम्बी है। मैं पूरी

कहानी नहीं सुना रहा हूँ। कहने का मतलब है कि नानालाल जी ने भी विशेष व्याख्यान नहीं सुने थे। भादसोड़ा में व्याख्यान सुना और जैसे ही उस पर विचार किया, उन्हें लगा कि मुझे छठे आरे में जन्म नहीं लेना है। उससे बचने के लिए उन्होंने कवच धारण कर लिया। साधु जीवन स्वीकार कर लिया।

जम्बूकुमार ने सुधर्मा स्वामी से व्याख्यान सुना और मन में संकल्प किया कि मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है। मैं अनमोल मनुष्य जन्म को ऐसे ही नहीं खोना चाहता।

संसार में मनुष्य जन्म की उपदेयता क्या है? मनुष्य जीवन को राजा जीवन माना गया है।

हमें क्या प्राप्त हुआ है?

(श्रोता– हमें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है)

यदि हमने इस जन्म को ऐसे ही खो दिया तो फिर हाथ मलते रह जाएंगे। पश्चात्ताप करेंगे कि मुझे मनुष्य जीवन प्राप्त तो हुआ था, किंतु मैं उसका लाभ नहीं उठा पाया। लोग अंतिम समय में पश्चात्ताप करते हैं कि जिंदगी में मौका मिला मुझे, किंतु मैं अपनी वृत्तियों को सुधार नहीं पाया। संशोधन नहीं कर पाया। बाद में दु:खी होने से क्या फायदा? यह सुंदर अवसर मिला है। मैं तो यह कहूँगा कि हम वी.आई.पी. ही नहीं, वी.वी.आई.पी. हैं कि हमें मनुष्य जन्म के साथ तीर्थंकर भगवान का शासन मिला है। ऐसा अद्भुत शासन, तीर्थंकरों का शासन हमें मिला है। उसका यदि हम लाभ नहीं उठा पाए, तीर्थंकर भगवान की वाणी का लाभ नहीं उठा पाए और अपने जीवन को परिवर्तित करने का प्रयत्न नहीं किया तो हम कोरे के कोरे रह जाएंगे।

जैसे बंजर भूमि बीजों को उत्पन्न नहीं करती वैसे ही हमारी भूमि बंजर बनी रह जाएगी। मैं नहीं चाहता कि हमारा जन्म बंजर रहे। हमारी भूमि उपजाऊ बने। सरसब्ज बने। फसल देने वाली बने। भगवान की वाणी को सुन कर काली मिट्टी की भाँति हम उसे अपने भीतर एब्जार्ब करें। फिर समीक्षा करें, अनुप्रेक्षा करें कि मुझे क्या करना चाहिए। मेरी शक्ति क्या है। मेरा सामर्थ्य क्या है। भावुकता नहीं होनी चाहिए। अपने सामर्थ्य और अपनी शक्ति को देखें कि मुझे क्या स्वीकार करना है।

भगवान महावीर के समवसरण में बहुत–से राजा, सार्थवाह, सेठ,

साहूकार आए और दीक्षिए हुए। आनंद श्रावक भी वहाँ पहुँचा था। उसने भगवान की वाणी को सुना और भगवान से निवेदन किया कि भगवन्! आपकी वाणी सुनकर कई राजा, सेठ, सार्थवाह, साहुकार दीक्षित हो गए। साधु बन गए। मैंने भी आपकी वाणी सुनी, किंतु अभी मैं अपने सामर्थ्य को देखता हूँ तो पाता हूँ कि अभी साधु बनने की शक्ति मेरे भीतर नहीं है।

बहुत सुंदर बात है, विचार करने जैसी बात है। कोई भावुकता में साधु बन जाता है तो उससे साधु जीवन की पालना नहीं होती है। उसे बड़ी कठिनाई होती है। भावुकता में साधु नहीं बनें। अपनी शक्ति को तौलें कि मैं पाँच महाव्रतों की भव्य आराधना करने में समर्थ हूँ या नहीं! देखें कि सभी प्रकार से हिंसा का त्याग, असत्य का त्याग, चौर्य कर्म का त्याग, ब्रह्मचर्य की पालना और निस्पृह जीवन जीने की शक्ति अपने भीतर है या नहीं! यदि अपने भीतर शक्ति हो तो कभी भी पीछे नहीं रहना चाहिए। आगे आना चाहिए, फिर यह मौका मिलेगा या नहीं, क्योंकि अगले जन्म का भरोसा नहीं है।

आनंद श्रावक ने कहा अभी मेरा इतना सामर्थ्य नहीं है कि मैं साधु जीवन स्वीकार कर सकूँ, किंतु भगवन्! मेरे भी ये भाव जगे कि मैं श्रावकों के बताए गए नियम और प्रतिज्ञा (पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत) को स्वीकार करूं। उसने कहा कि मैं इन बारह व्रतों को स्वीकार करना चाहता हूँ।

भगवान ने कहा, तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो। जैसा तुम्हारा सामर्थ्य है, जैसी शक्ति है वैसा करो। मन को संक्लेशित करके नहीं करना। जैसा तुम्हें सुख हो, जिसमें तुम्हारी आत्मा शांति की अनुभूति करे, जिससे तुम्हें कोई टेंशन नहीं हो, संक्लेश नहीं हो ऐसा कार्य करना।

कई लोग कहते हैं कि म.सा. मैं तपस्या करना चाहता हूँ, किंतु घर में बहुत क्लेश होता है।

क्लेश करने में कोई फायदा नहीं है। घर वालों को समझाने की आवश्यकता है। हम अपने व्यवहार से, विनय से समझाने का प्रयत्न करें। हालांकि विनय से समझाने की बात बहुत कम होती है, ज्यादा जिद होती है। जिद करने से खिंचाव पैदा होता है। एक कहेगा नहीं करना और दूसरा कहेगा कि करूँगा तो फिर क्या होगा? कोई मानने को तैयार नहीं होगा। दोनों तरफ आग्रह बना रहेगा। आग्रह नहीं होकर हमारे भीतर विनय की भावना आए। हम

विनय से समझाने का प्रयत्न करेंगे तो घरवाले पत्थर हृदय के नहीं होंगे जो समझेंगे नहीं। समझ जाते हैं, बस कोई समझाने वाला चाहिए। हमारा लक्ष्य समझाने का रहेगा तो निश्चित रूप से समझा लेंगे।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. के माता व भाई कहने लगे कि हम तो दीक्षा नहीं देंगे, किंतु आखिर में समझे और नानालाल जी ने दीक्षा ले ली।

जम्बूकुमार के माता-पिता तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा एक बार शादी करनी होगी। जम्बूकुमार का आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ। उन्होंने एक रात में सबको समझा दिया। रात लगी की नहीं, कहना कठिन काम है। माता-पिता समझे। आठों पत्नियाँ समझीं। प्रभव चोर, पाँच सौ चोर समझे। समझने के बाद सारा काफिला दीक्षा के लिए चल पड़ा।

कैसा अद्भुत अवसर रहा होगा जब 527 जने एक साथ दीक्षित हुए होंगे। आज तो पाँच, सात, दस दीक्षा हो जाए तो कहते हैं, अरे साहब! इतनी दीक्षा हो गयी। जम्बूकुमार की प्रेरणा से 526 लोग दीक्षा के लिए तैयार हुए। केवल प्रेरणा से। अभी तो वे साधु बने ही नहीं हैं। बिना साधु बने प्रेरणा की। मार्मिक उद्बोध दिया। समझाया कि साधु जीवन का स्वरूप क्या है।

आसान काम नहीं है 527 लोगों द्वारा एक साथ दीक्षित होना। 527 में पुरुष कितने थे? आठ रानियों के पिता, एक स्वयं व उनके पिता और पाँच सौ चोर। 510 हो गए।

हाँ! गिनती लगा लो फिर बताना अच्छे से। एक बात का ध्यान रखना जब हमारा सामर्थ्य जगे तो हमें अपने पुरुषार्थ को कम नहीं करना है। सबसे पहले तो अपना सामर्थ्य जगाएं। अपने भीतर समीक्षण करें कि मैं साधु जीवन की परिपालना में कितना समर्थ हूँ। मेरे भीतर कितनी ताकत है। यदि साधु जीवन की परिपालना में मैं समर्थ हूँ तो मुझे वैसा ही करना है। यदि उसमें असमर्थता लगे तो आनंद श्रावक की तरह पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत स्वीकार करें।

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

तीर्थंकर भगवान के मार्ग को जानूँगा और उसको स्वीकार करूँगा। जानने का मतलब है स्वीकार करना। खाली देख-देखकर रह जाना नहीं।

एक आदमी गया बाजार में कपड़ा खरीदने के लिए। वह कपड़े की दुकान में गया और कपड़ों को देखता रहा। यह दिखाओ, वह दिखाओ कहता रहा। दुकानदार ने बहुत सारे कपड़े दिखा दिये किंतु उसने एक भी कपड़ा नहीं खरीदा। वह आदमी दो-चार दुकान गया, किंतु एक भी टुकड़ा खरीद के नहीं लाया। बाजार में चीजें देखता रह गया। वैसे ही हम केवल सुनते हुए रह जाएंगे तो कुछ भी लेने वाले नहीं बनेंगे। हम केवल बाजार में मोल-तोल नहीं करें। बाजार में केवल चीजों को देखें नहीं। खरीदने के लक्ष्य से पहुँचे। खरीदकर यदि एक पीस भी लाएंगे तो वह हमारा होगा। एक व्रत भी स्वीकार करेंगे तो तीर्थंकर भगवान के मार्ग पर हमारी गति हो पाएगी। हम तीर्थंकर भगवान के मार्ग पर आरूढ हो जाएंगे। हम आगे बढ़ते रहेंगे और एक दिन मंजिल मिल जाएगी।

हमारा प्रयत्न इस दिशा में बने। हम नियम-पच्चक्खाण अवश्यमेव करें। एक सूची बना लें कि मुझे एक दिन में एक पच्चक्खाण निश्चित रूप से करना है। कोई भी एक पच्चक्खाण करें। श्रावक के लिए चौदह नियम बताये गए हैं।

चौदह नियम रोजाना पाले जा सकते हैं। थोड़ी सी सावधानी बरत कर चला जाय तो पाँच मिनिट चितारने में लगेंगे कि इस इस का त्याग। वापस शाम को देखें कि मैंने जो नियम लिया उससे कुछ ज्यादा तो नहीं लगा। एक बार नियम चालू हो गया तो दूसरे-तीसरे दिन यह परम्परा पड़ेगी। चौदह नियम चितारते हुए बहुत सारे पाप से अपने आपको बचा सकते हैं। यह बहुत सुंदर उपाय है। कितने लोग रोजाना चौदह नियम चितारते हैं?

(ग्यारह लोगों ने हाथ खड़े किए)

ग्यारह जने हैं, फिर भी बहुत कम लोग हैं। चौदह नियम देखे किस-किसने हैं, जानकारी किस-किस को है?

(पहले से कुछ अधिक लोगों ने हाथ खड़े किए)

बहुत कम लोगों को जानकारी है। अब बताओ ऐसे-कैसे चलेगा? चौदह नियम की छोटी-छोटी किताबें प्रकाशित हुई हैं। यदि चौदह नियम रोज चितारते हैं तो समझो कि समुद्र जितना पाप एक लोटे में समा गया। अन्यथा क्या होगा? गीत में कहा गया है-

**''कैसे हो कल्याण करणी काली है,**
**नहीं होगा भुगतान हुण्डी जाली है।''**

चौदह नियम जानेंगे ही नहीं तो कैसे कल्याण होगा। चौदह नियमों को जानने का प्रयत्न करें। यहाँ (आयड़ में) चौदह नियम की किताब मिल जाएगी। आप एक बार जरूर देखें और पालने का विचार करें। जितना सामर्थ्य है उसके अनुसार नियम लें। आगे बढ़ें। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

26 नवम्बर, 2022
आयड़

# 8

# दिव्यता के दर्शन दिल से

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

इस स्तुति के द्वारा अजितनाथ भगवान के पथ को निहारने की बात कही गई है। देखने की बात कही गई है। क्या खासियत है उस पथ की, जिसको देखने के लिए भक्त लालायित हो रहे हैं! क्या विशेषता है उस पथ की, जिसको देखने के लिए भक्त उल्लसित हो रहे हैं!

ध्यान देना है कि पथ उसे कहा गया है जिस पर चलने से व्यक्ति मंजिल प्राप्त करे। जो मंजिल दिलाने वाला होता है, मंजिल तक पहुँचाने वाला होता है उसको पथ कहा गया है।

**'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्गः'**

मंजिल है मोक्ष और उस मंजिल को प्राप्त करने का पथ है सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र का संयुक्त रूप। यह पथ मंजिल दिलाने वाला है। मंजिल तक पहुँचाने वाला है। अजितनाथ भगवान उसी पथ पर चले। उन्होंने उसी पथ को स्वीकार करके मंजिल प्राप्त की। जितनी भी भव्य आत्माएँ हैं, जो मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ रही हैं, वे इसी पथ का अवलम्बन लेकर आगे बढ़ रही हैं।

**'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्गः'**

दर्शन, ज्ञान, चारित्र यानी देखो, जानो और आचरण करो। इनके पहले सम्यक् विशेषण लगा हुआ है। वैसे देखता तो हर इनसान है। जिनको भी आँखें मिली हैं वे देखते हैं, किंतु सामान्य देखने और सम्यक् प्रकार से देखने में बहुत अंतर है। एक देखना राग और द्वेष बढ़ाने वाला बन जाता है। जिस देखने में सम्यक् विशेषण लगा होगा, वहाँ ऐसी बात नहीं होगी। दर्शन और देखना में थोड़ा अंतर है। देखने की क्रिया सामान्य होती है, दर्शन विशिष्ट होता है। दर्शन

श्रद्धेय का होता है, श्रद्धा से होता है। बिना श्रद्धा के देखना होगा, दर्शन नहीं होगा।

भगवान महावीर के युग की बात लें। गोशालक, भगवान के साथ भी रहा किंतु उनके दर्शन नहीं कर पाया। वह केवल ऊपरी तौर पर देखता है, दर्शन नहीं कर पाता। दर्शन के लिए दिव्य विचार, दिव्य नयन होने जरूरी हैं।

**'नेणा ते दिव्य विचार'**

मनुष्य के दिव्य विचार श्रेष्ठ नेत्र हैं। सुविचार से दर्शन किया जाता है। भावों में श्रद्धा नहीं है, आस्था का भाव नहीं है, तो दर्शन नहीं हो पाएगा। संगम देव भगवान महावीर के पास लम्बे समय तक रुका। लम्बे समय का मतलब रात भर।

क्या देखा उसने भगवान महावीर को? क्या वह दर्शन कर पाया?

वह दर्शन नहीं कर पाया। वह दर्शन कर पाता तो भयंकर उपसर्ग नहीं दे पाता।

इंद्रभूति गौतम आए थे वाद करने के लिए। शास्त्रार्थ करने के लिए। वे सोच कर आए थे कि महावीर से जब मेरा शास्त्रार्थ होगा तो सारी स्थिति क्लीयर हो जाएगी। स्थिति साफ हो जाएगी, किंतु भगवान महावीर के सामने आते ही उनका हृदय नम गया। झुक गया। श्रद्धा से ओत-प्रोत हो गया। उन्होंने महावीर के दर्शन कर लिए। देखने में और दर्शन में केवल इतना ही अंतर है। दर्शन श्रद्धा से होता है और देखना ऊपर से होता है।

हम सबका शरीर औदारिक पुद्गलों से बना हुआ है। आपका शरीर हो या हमारा या फिर भगवान महावीर का। हो सकता है कि कोई पुद्गल अच्छा हो, कोई पुद्गल अच्छा न हो, किंतु पुद्गल औदारिक के ही हैं। फिर क्या देखना भगवान महावीर में?

भक्तामर स्त्रोत लोगों को याद होगा। कई लोग बोलते हैं-

**'दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीयं**
**नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः'**

अर्थात् हे भगवन्! आपके दर्शन करने के बाद मेरी आँखें दूसरी जगह रुकती नहीं हैं। और कहीं ठहरती नहीं हैं।

**'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं'**

किस-किसको पाठ याद है?

(समवेत आवाज आती है- सबको याद है)

**'कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं'**

इन शब्दों का अर्थ क्या है?

कल्लाणं का अर्थ क्या होता है?

(एक श्रोता ने कहा- कल्याण रूप)

कल्याण मतलब क्या?

कल्याण क्या?

(श्रोता- आत्मा का कल्याण)

हमने कितनी बार पाठ का उच्चारण किया? 'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं' कितनी बार बोला? यह कौन-सा भवन है?

(श्रोता- विज्ञान भवन है)

विज्ञान भवन नाम है या और कुछ नाम है?

विज्ञान समिति का भवन है। मुझे जैसी जानकारी मिली उसके अनुसार डॉक्टर दौलतसिंह की स्मृति में यह बनाया गया है। विज्ञान शब्द क्या बोल रहा है? आगमों में भी विज्ञान शब्द क्या है?

भगवान महावीर से पूछा गया, भगवन्! तथारूप श्रमण माहण् की पर्युपासना करने से जीव को क्या लाभ होता है?

भगवान महावीर ने कहा

**'सवणे नाणें विण्णाणे...'**

अर्थात् सुनने का लाभ होता है। सुनने का अवसर प्राप्त होता है। हमें थोड़ा सोचना चाहिए, नहीं तो ऊपरी-ऊपरी बात रह जाएगी। तथारूप श्रमण माहण् से ही सुनने को मिलेगा, दूसरी जगह सुनना नहीं होता है क्या? सुनना तो बहुत जगह होता है, बहुत-से लोग सुनाने वाले हैं, उनसे लोग सुन रहे हैं, सुना जा रहा है।

फिर सुनने का जो लाभ बताया उसका क्या तात्पर्य है?

ध्यान में रखना एक बात, बहुत सारी बातें दुनिया में मिल जाएंगी, किंतु आत्महितकर, आत्मा के उत्थान की बात, आत्मा से परमात्मा तक पहुँचाने की बात हमें तीर्थंकर देवों के शासन में ही प्राप्त हो सकती है। इसलिए

तथारूप श्रमण माहण् की पर्युपासना से सुनने का लाभ होना बताया है। पूछा गया कि भगवन्! सुनने से क्या लाभ होगा, सुनने का परिणाम क्या होगा, निष्पत्ति क्या होगी? तो समाधान मिला कि सुनने से ज्ञान की प्राप्ति होगी। क्या होगी? सुनने से ज्ञान की प्राप्ति होगी।

प्रश्न है कि पढ़ने से ज्ञान होगा या सुनने से?

(कई श्रोताओं ने कहा कि सुनने से ज्ञान होगा तो कई ने कहा कि पढ़ने और सुनने से ज्ञान की प्राप्ति होगी)

भगवान कहते हैं कि सुनने से ज्ञान होता है, पढ़ने से नहीं।

ज्ञान किससे होता है?

(श्रोताओं ने कहा- सुनने से ज्ञान होता है)

सुनने से आशय है गुरु मुख से वाणी को सुनना। पढ़ने से आप वैसा ग्रहण करेंगे, जैसी आपकी मति होगी। जैसा लिखा होगा, आपकी मति वैसा अर्थ लगाएगी।

स्वाध्याय के पाँच भेद बताए गए हैं। सबसे पहला भेद है वाचना।

**गुरु मुख से वाचना धार, प्यारे जीवन में।**

वाचना कैसे प्राप्त होती है? वाचना प्राप्त होती है गुरु के मुख से। शिष्य, गुरु से जो सुनता है उसको वाचना कहा गया है। गुरु, मुख से जो उच्चारण करते हैं, उसे शिष्य तक पहुँचने को वाचना कहा गया है। श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र में बताया गया है कि कल्याण मार्ग का ज्ञान भी सुनकर होता है और पाप मार्ग का ज्ञान भी सुनने से होता है। पढ़ने को महत्व नहीं दिया गया।

आज लोग पोथी के पंडित हो रहे हैं, ज्ञानी नहीं हो रहे हैं।

क्या फर्क है पोथी के पंडित और ज्ञानी में?

पोथी का पंडित यानी किताबों को दिमाग में भर लेना किंतु अपनी पहचान नहीं कर पाना, जबकि ज्ञानी का मतलब है अपनी पहचान कर लेना।

हमने किताबें पढ़-पढ़कर दिमाग भर लिया, किंतु जब तक अपनी पहचान नहीं करेंगे, तब तक पढ़ा हुआ सार्थक नहीं हो पाएगा। जब अपनी पहचान हो जाती है कि मैं कौन हूँ तब ज्ञान का दायरा चालू होता है। अपनी पहचान करने वाला ही ज्ञानी होता है। इसलिए भगवान कहते हैं कि सुनने से कल्याण मार्ग का बोध होगा और सुनने से ही पाप मार्ग का भी ज्ञान होगा। दोनों

को सुनना और सही मार्ग को स्वीकार करना।

बात मैं बता रहा था– 'कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं'

ये हमारे रटे हुए शब्द हैं। बहुत बार हमने इनका उच्चारण किया, किंतु इसके भीतर नहीं गए। कल्याण शब्द बना है कल्य से। कल्य का अर्थ होता है आनंद। कल्य का अर्थ होता है मोक्ष। वह जिनके माध्यम से मिलता है, उनके लिए कल्लाणं कहा गया है यानी आप आनन्द प्रदाता हैं।

मंगलं का क्या अर्थ होता है?

(एक श्रोता ने कहा– मंगलं का अर्थ होता है मंगल)

क्या मंगल? किसको कहते हैं मंगल?

जो पापों को गलाने में समर्थ हो, वह है मंगल। साधु के दर्शन करने से मेरे पाप गलेंगे, नष्ट होंगे, इसलिए संत–महात्मा मंगल स्वरूप हैं।

देवयं का अर्थ क्या होता है?

जिसमें दिव्यता हो वह देवयं।

साधु में ऐसी कौन–सी दिव्यता है जो गृहस्थ में नहीं है?

ज्ञान, दर्शन और चारित्र से साधु के भीतर दिव्यता प्रकट होती है। नमस्कार शरीर को नहीं, रत्नत्रय युक्त आत्मा को किया जाता है। जिस शरीर से आत्मा चली जाएगी, क्या वह शरीर वंदनीय होगा? लोग शरीर की भी वंदना कर लेते हैं, पर वैसा करना उपयुक्त नहीं है। शरीर से आत्मा चली गई, शरीर पड़ा है। वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आधाररूप था, किंतु शरीर, ज्ञानरूप नहीं है। शरीर में ज्ञान नहीं है। ज्ञान करने वाला तत्त्व शरीर से भिन्न है। ज्ञान करने वाली आत्मा है।

किसी कमरे में बैठकर कोई खिड़की से बाहर देखना चाहे तो देखता है।

कौन देखता है?

देखने वाला देखता है। खिड़की नहीं देखती। खिड़की के पीछे रहने वाला आदमी देखता है। खिड़की और देखने वाला भिन्न–भिन्न है। आँखें नहीं देख रही हैं। आँखों के माध्यम से आत्मा देखती है। मान लो एक मृत कलेवर पड़ा है, उसकी आँख खुली हुई है, तो क्या वह देख रही है?

(श्रोताओं ने कहा– वह नहीं देख रही है)

देखने वाला कोई और है। शरीर सुन नहीं रहा है, कान सुन नहीं रहे हैं।

सुनने वाला कोई और है। उसकी पहचान जब हो जाती है, तब ज्ञान प्रकट हो पाता है। जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक व्यक्ति पोथी के पंडित बने रहते हैं।

गौतम स्वामी पाँच सौ शिष्यों को आत्मा-परमात्मा का ज्ञान कराते थे। उन्हें पढ़ाते थे और समझाते थे, किंतु स्वयं आत्मा से अनभिज्ञ थे। वे यह नहीं जानते थे कि आत्मा का स्वरूप कैसा है। पाँच सौ शिष्यों को आत्मा का बोध जरूर करा रहे थे, किंतु यह नहीं समझ रहे थे कि आत्मा क्या है और उसका स्वरूप कैसा है।

वे शास्त्रार्थ करने के लिए भगवान महावीर के पास गए। भगवान ने उनकी दुखती रग को पकड़ लिया। भगवान ने कहा, गौतम! बड़े विज्ञ हो तुम्हें आत्मा के प्रति संशय क्यों है?

भगवान से ऐसा सुनकर गौतम चौंक गए कि आज तक किसी ने मेरे भीतर की बात नहीं जानी, इन्होंने कैसे जान ली। वहीं से उनके भीतर श्रद्धा जग गई। उनको भगवान की दिव्यता के दर्शन हो गए।

हम 'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं' कहकर कहते हैं कि भगवन् आपकी दिव्यता मेरे मन को स्पर्श कर रही है। पर क्या वस्तुत: भगवान महावीर मिलते हैं? मृगावती, साध्वियों के साथ भगवान के दर्शन करने पहुँची और लीन हो गई। किसमें लीन हो गई? शरीर में लीन हो गई क्या?

(श्रोता- भगवान में लीन हो गई)

भगवान की दिव्यता में लीन हो गई। उनके भीतर की जो चमक थी, उनके भीतर की जो दिव्यता थी, वह उसकी आँखों में समा गई। उसी में वह लीन हो गई। वह उस दिव्यता का पान करने लगी। वह है दर्शन। साधुओं के पास जा कर उनकी दिव्यता का अनुभव किया क्या? हमने उनकी दिव्यता का अनुभव किया क्या? लोग बाहर की रौनक देखने के लिए तैयार हैं। लोगों का मन रहता है कि बाहर से म.सा. का दर्शन हो जाए। शरीर का दर्शन हो जाए। शरीर का दर्शन महत्त्वपूर्ण है या दिव्यता का दर्शन?

(श्रोताओं ने कहा- दिव्यता का दर्शन महत्त्वपूर्ण है)

हमें दिव्यता का दर्शन करना चाहिए। दिव्यता का दर्शन इन आँखों से नहीं हो पाएगा।

**'नेणा ते दिव्य विचार'**

दिव्य विचार, अनुप्रेक्षा करेंगे तो दर्शन हो पाएगा। उसी से उसका विराट रूप हमारी समझ में आ पाएगा। नहीं तो केवल देखना होगा। दर्शन नहीं कर पाएंगे। दर्शन शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। दर्शन शब्द का हम तात्पर्य निकालें तो एक तो दर्शन रूप में दर्शन है और दूसरा सिद्धांत को भी दर्शन कहा गया है।

अब बात आती है ज्ञान की। जिससे जाना जाता है, वह ज्ञान है। कौन कैसा है, किसका स्वरूप कैसा है, आत्मा का रूप कैसा है, इन सबको समझने वाला, इन सबका ज्ञान कराने वाला ज्ञान है। ज्ञान के माध्यम से इसकी पहचान होती है। यदि ज्ञान नहीं होगा तो पहचान नहीं कर पाएंगे। तत्त्व को जान नहीं पाएंगे। ज्ञान के साथ में भी सम्यक् विशेषण लगा है। यहाँ सम्यक् विशेषण यह बोध कराता है कि बाहर का तुम कितना भी ज्ञान कर लो, अक्षरों का कितना भी ज्ञान कर लो, किंतु अक्षर की पहचान नहीं कर पाए तो ज्ञान नहीं हो पाएगा। अक्षर का अर्थ क्या होता है?

(एक श्रोता- अक्षर का अर्थ होता है शब्द)

एक से अधिक अक्षर मिलने पर शब्द हो पाएगा। तीन-चार अक्षर होंगे तो शब्द बन जाएगा। अक्षर का तात्पर्य है जिसका कभी क्षरण नहीं हो। जो सदा विद्यमान रहे। सदा विद्यमान रहने वाला कौन है? आत्मा सदा विद्यमान रहने वाली है। जिसने आत्मा का ज्ञान कर लिया, आत्मा की पहचान कर ली, उसका ज्ञान सम्यक् ज्ञान हो जाएगा। जिसने उसकी पहचान नहीं की, उसने भले ही बहुत सारे शास्त्रों को रट लिया, सारे आगमों के सार रट लिया, उसे ज्ञान नहीं होगा।

रटने से ज्ञान हो जाएगा क्या?

कोई मजदूर 100-200 गन्ने सिर पर बाँधकर चल रहा हो तो क्या उसको गन्ने के रस का स्वाद मिल जाएगा?

(श्रोता- उसको स्वाद नहीं आएगा)

उसको गन्ने के रस का स्वाद नहीं आएगा, क्योंकि वह गन्ने को माथे पर लेकर चल रहा है। वैसे ही हमने बहुत रट लिया किंतु उसका स्वाद नहीं चखा तो वह भार रूप ही है। बहुत आवश्यक है इसको समझना। हम कितना पढ़ रहे हैं इसका महत्त्व नहीं है। महत्त्व उसका है कि पढ़ने के बाद समझ में कितना आया और समझने के बाद उसका आचरण कितना किया। आचरण

मंजिल दिलाने वाला बनता है।

पाँच समिति और तीन गुप्ति का सम्यक् पालना करने वाला साधु मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। चौदह पूर्वों का ज्ञान करने वाला मोक्ष में चला ही जाएगा, यह निश्चित नहीं है, किंतु आठ प्रवचन माता, पाँच समिति और तीन गुप्ति का सम्यक् पालन करने वाले के लिए मोक्ष खुला है। इसका मतलब क्या हुआ? जो ज्ञान जीवन में उतर गया वह अपना है, बाकी पराया है। कितना ज्ञान उतरा हमारे भीतर?

एक सेठ का इकलौता बेटा जवान हो गया। सेठ ने सोचा कि अब इसकी शादी हो जानी चाहिए। लड़का और लड़की जब जवान होते हैं तब क्या करते हैं?

(श्रोता- शादी करवाते हैं)

लड़का-लड़की के जवान होते ही माता-पिता विचार करते हैं कि अब इसका हाथ पीला करवा दें। हाथ पीला करवाने का मतलब है कि शादी करवा दें। आपसे कोई पूछ ले कि शादी करके आप कितने सुखी हुए तो...

(श्रोतागण हँसने लगे)

हँसो मत। बहनें बैठी हैं। ये घर जाते ही आपकी खबर ले सकती हैं। हँसना क्या बता रहा है, यह बताओ?

**'मैं तो ढूँढ़ियो सहू जग माय, सुखी न मिलियो एक भी'**

मुझे जग में एक भी सुखी नहीं मिला। धन भरा हुआ है, परिवार भरा हुआ है। सबकुछ है, किंतु सुख नहीं मिल रहा है। संतोष नहीं मिल रहा है। मन में तृप्ति की अनुभूति नहीं हो रही है। धन की कमी नहीं है, परिवार की कमी नहीं है। लोग इज्जत बहुत देते हैं, मान-सम्मान बहुत दे रहे हैं, फिर भी सुख नहीं मिल रहा है। उदयपुर तो मेवाड़ का बड़ा शहर है। राजाओं के समय की राजधानी है। यहाँ सुख नहीं मिलगा तो मेवाड़ में कहाँ मिलेगा। यदि सुख मिल गया होता तो लोग इधर से उधर क्यों भागते!

अभी मेवाड़ के गाँवों में जाते हैं तो गाँव खाली मिलते हैं। जहाँ कभी पचास घर थे वहाँ आज पाँच घर भी मुश्किल से मिलेंगे। जहाँ कभी सौ घर थे वहाँ दस घर भी नहीं मिल रहे हैं। सोचने की बात है कि क्या कारण हुआ?

जीने का आनंद कैसे मिले इसकी हमने कभी खोज नहीं की। हमने

कभी सच्चे सुख की चाह नहीं की। कहाँ है सच्चा सुख? सच्चा सुख कहाँ मिलता है?

(श्रोता– सच्चा सुख भगवान के चरणों में मिलता है)

**'मिलता है सच्चा सुख, भगवान तुम्हारे चरणों में'**

यह गीत की पंक्ति है।

कहाँ है सच्चा सुख?

(श्रोताओं ने कहा– सच्चा सुख भगवान के चरणों में है)

वहाँ जाने के बाद आदमी का सारा तनाव खत्म। कोई तनाव नहीं, कोई टेंशन नहीं। यह महापुरुषों की महानता थी कि उनके सान्निध्य में लोग वैर-विरोध भूल जाते। शत्रुता समाप्त हो जाती। आपने भी सुना होगा कि भगवान के समवसरण में सिंह के जबड़े के आगे बकरी बैठी हुई थी। अन्य समय बकरी, शेर के सामने जाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती, किंतु वहाँ शेर के सामने बैठी हुई थी। शेर के मन में बकरी के प्रति हिंसा का भाव नहीं बनता। इस प्रकार का कोई भाव नहीं रहता कि बकरी को खा जाऊँ। एकदम शांत भाव।

ये भाव कब पैदा होते हैं?

ये भाव दर्शन करने से पैदा होंगे, देखने से नहीं। संतों के प्रति दर्शन के भाव होंगे तो आपको सुख मिलेगा, शांति मिलेगी, समाधि मिलेगी। देखने का भाव रहेगा तो यह देखोगे कि म. सा. गोरे हैं कि काले हैं, चश्में वाले हैं या बिना चश्में वाले हैं। शरीर देख लोगे। और क्या देखोगे?

**'जात न पूछे साध की, पूछ लीजिए ज्ञान'**

साधु की पहचान ज्ञान से करें। वह ज्ञान से कितना आप्लावित है, इस पहचान से सारी बात समझ में आ जाएगी।

बात कहाँ से चली और कहाँ चली गई। सेठ की बात चली थी। सेठ का एक लड़का था। सेठ लड़के की शादी करने का विचार कर रहा था। मैं कई बार श्रावकों को सुझाव देता हूँ कि लड़का-लड़की जब बड़े हो जाएं तो उनको कहो कि भाई दो मार्ग हैं; एक मार्ग आत्मकल्याण का है और दूसरा संसार का। आत्मकल्याण का मार्ग है साधु जीवन स्वीकार करना। सच्चा पिता वही है जो बेटे को हकीकत समझाए। अन्यथा मैं तो डूबा बेटे को क्यों छोड़ूं। सच्चे पिता

का काम डुबोना नहीं है, किंतु आज होता ऐसा ही है। बीच में बात दूसरी कर रहा हूँ। सेठ की बात किनारे रह गई।

पुराने समय में नौळी (कमर में बाँधने की चमड़े आदि की थैली) होती थी। यह लम्बी ज्यादा, चौड़ी कम होती थी। उसमें अशरफी आदि रखकर कमर में बाँध लेते थे। एक व्यक्ति नौळी में अशरफियाँ भरकर जा रहा था। रास्ते में रीछ दिख गया। रीछ को देख कर उसने सोचा कि आज बचना मुश्किल है, पर उसे तुरंत किसी सज्जन पुरुष से सुनी बात का स्मरण हुआ। उसने किसी सज्जन पुरुष से सुन रखा था कि रीछ का कान पकड़ लेने पर उसका जोर नहीं चलता। शेर से जो आँख मिला ले, शेर उस पर आक्रमण नहीं करता। रीछ के कान पकड़ने से उसकी ताकत वैसा काम नहीं करती। समस्या है तो उसका समाधान भी है।

एक बार चूहों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए मीटिंग की। चूहों का कहना था कि भारत आजाद हो गया, हम आजाद क्यों नहीं हुए। हम क्यों बिल्ली से डरें। चूहों ने बिल्ली के लिए एक प्रस्ताव बनाया। किंतु वह प्रस्ताव बिल्ली तक पहुँच नहीं सका, क्योंकि एक भी चूहा बिल्ली तक प्रस्ताव पहुँचाने के लिए तैयार नहीं हुआ। सब डर गए। सब पीछे हो गए। मीटिंग में जोर-शोर से बातें करने वाले चूहे भी डर गए। ऐसे में उपदेश से, प्रस्ताव से क्या फायदा होगा।

खैर, उस व्यक्ति ने सोचा कि रीछ मेरे पर आक्रमण करे या मैं उस पर आक्रमण करूँ, दोनों ही स्थितियों में संकट तो है। मरना भी हो तो दो-दो हाथ करके क्यों न मरूँ! ऐसा सोचकर उसने छलांग लगाई और रीछ के कान पकड़कर उसकी पीठ पर बैठ गया। ऐसा करने में उसकी नौळी फट गयी। उसमें जो अशरफियाँ थीं वे एक-एक कर गिरने लगीं। अशरफियों के गिरने से उसका कलेजा निकलने लगा।

कहा जाता है कि 'चमड़ी जाए तो जाए पर दमड़ी न जाए'

पाँचवें आरे में पैसे आ गए तो सब कुछ आ गया। पैसा आने से लोगों को लगता है कि भगवान आ गए। लोगों को लगता है कि अब मुझे संतों के पास जाने की जरूरत नहीं है, भगवान की आवश्यकता नहीं है। लोगों की ऐसी नीयत हो जाती है।

आते हैं पुन: रीछ और उस व्यक्ति की बात पर। रीछ इधर से उधर

घूमता है। व्यक्ति ने रीछ के कान पकड़ रखे थे किंतु उसके मन में हलचल हो रही थी। उसकी अशरफियाँ बिखरती जा रही थीं। तभी एक दूसरा व्यक्ति आया और कहने लगा कि यह क्या माजरा है भाई! आज तूने रीछ के कान कैसे पकड़ लिए?

उसने कहा भाई! यह कोई सामान्य रीछ नहीं है। यह अशरफियाँ उगलने वाला है। देखो मैंने कितनी अशरफियाँ उगला लीं।

दूसरे व्यक्ति ने कहा, थोड़ी देर मुझे भी अशरफियां ले लेने दो।

पहले व्यक्ति ने कहा, तुम कह रहे हो तो तुम्हें भी मौका दे देता हूँ। आओ तुम कान पकड़ो और चढ़ जाओ रीछ पर। पहले व्यक्ति ने उस व्यक्ति को रीछ पर बैठाया और कहा कि इसका कान कस कर पकड़ना और मसलते रहना।

दूसरा व्यक्ति रीछ पर बैठकर उसका कान घुमाने लगा।

अब क्या निकलेगा। अशरफियाँ कहाँ से निकलेंगी। उस व्यक्ति ने अपनी अशरफियाँ समेटनी शुरू की।

दूसरे व्यक्ति ने कहा, भाई! मैं तो कान मरोड़ रहा हूँ, किंतु अशरफियाँ निकल ही नहीं रही हैं?

पहले व्यक्ति ने कहा, अरे बेवकूफ! ऐसे अशरफियाँ निकलती तो मैं छोड़ देता क्या?

जैसे उस व्यक्ति ने तिकड़म लगाकर दूसरे व्यक्ति को रीछ के कान पकड़ा दिए, वैसे ही प्राय: आप करते हैं। आप सोचते हैं कि मैं तो दु:खी हुआ, अब रीछ का कान बेटे को पकड़ा दूँ; ले बेटा अब तू कान पकड़ ले और घुमाते रहना... घुमाते रहना...

इस तरह से क्या उसे शांति मिल जाएगी? क्या अशरफी रूपी सुख मिलता रहेगा?

पिता का कार्य होता है सच्चाई बता देना कि बेटा! मैंने शादी की है, मैं जानता हूँ कि क्या होता है शादी करने से।

(सभा में उपस्थित बहनें हँसने लगीं)

अरे! और तो और, बहनें भी हँस रही हैं। भाई हँसें तो बात समझ में आती है, यहाँ तो बहनें भी हँस रही हैं।

पिता का काम है बेटे को सच्चाई बताना कि बेटा मैंने शादी की और क्या-क्या भुगता है। जब शादी की तब पत्नी चंद्रमुखी लग रही थी। सालभर निकले तो सूर्यमुखी लगने लगी और दो-चार साल बाद ज्वालामुखी लगने लगी।

अपनी संतान को सही ज्ञान देना या नहीं देना?

(श्रोता- सही ज्ञान देना)

कोई कह दे कि चढ़ जा बेटा रीछ पर और कान घुमाते रहना। अब जब तक कोई दूसरा आदमी नहीं आए, तब तक कान घुमाते रहो। कान छोड़ोगे तो तुम्हें रीछ खा जाएगा, इसलिए जब तक कोई दूसरा न मिल जाए, तुम्हारा बेटा न मिल जाए, तब तक कान घुमाते रहो।

बंधुओ! इसलिए सच्ची बात बताना। मैं यह कहता हूँ कि अपनी संतान को सही रास्ता बता दो। उसके बाद में उसकी जैसी मरजी वह उस रास्ते से जाए। वह संसार के रास्ते पर जाना चाहे तो आप पहुँचाने को तैयार ही हैं। किंतु यदि वह मोक्ष के रास्ते पर जाने के लिए तैयार हो तो आप कहोगे बेटा, रुको, थोड़ा रुको। आप जान रहे हो कि यह सही रास्ता है, फिर भी आप कहोगे कि रुको।

म.सा. के पास जाना ठीक है, म.सा. के दर्शन करना ठीक है, म.सा. की वाणी सुनना ठीक है, किंतु उसके आगे क्या होगा? नरेंद्र सिंह जी (सिंघवी), उसके आगे क्या होगा? म.सा. के पीछे जाए तो ठीक नहीं है। पीछे नहीं जाएगा तो फिर क्या मिलेगा? यह बताओ आपने शादी की तब कितने फेरे लिए?

(श्रोताओं ने कहा- सात फेरे लिए)

सात फेरों में आप कितने फेरों में आगे चले और आपकी पत्नी कितने फेरों में आगे चली?

(श्रोताओं ने कहा- हम तीन फेरे आगे चले और पत्नी चार फेरे आगे चली)

पत्नी चार फेरे में आगे रहती है और तीन फेरे में आप आगे रहते हो। अब आगे कौन है? घर में किसकी चलती है? अत: अपनी संतान को बताना, उसके बाद जैसी उसकी रुचि।

खैर, बात मैं बता रहा था सेठ की। सेठ ने लड़के की शादी करने का विचार किया। कई जगहों से खबर आई कि अपनी लड़की की शादी आपके लड़के से करना चाहते हैं। वह पाँच-सात जनों को साथ लेकर लड़की की खोज में निकला। सेठ गया देखने को। पाँच-दस जगह देखी और पसंद कितनी आई?

(श्रोताओं ने कहा- पसंद आई एक)

घर में कितनी लड़कियाँ आएंगी?

(श्रोताओं ने कहा- एक लड़की आएगी)

दस लड़कियों को देखा, किंतु बहुरानी एक बनेगी। वैसे ही हम बहुत सारे शास्त्र पढ़ते हैं, ज्ञान की बातें सुनते हैं, उनमें से एक भी अपना कर लें तो वह हमारा हो गया, नहीं तो पूरे के पूरे 32 शास्त्र पढ़ लेने से क्या होगा। मेरा क्या हुआ, मेरा कितना हुआ? कितने शास्त्र मेरे हो पाए?

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. पर एक पुस्तक लिखी गई। पुस्तक का नाम दिया गया 'आगम पुरुष।' किस-किसने वह पुस्तक देखी?

(एक महिला ने कहा- मैंने देखी)

कितनी मोटी थी? कितनी लम्बी थी? कितनी चौड़ी थी? कितने इंच की थी? कितने सेंटीमीटर की थी?

(महिला ने कहा- वह नहीं पता)

दिगम्बर समाज के डॉ. नेमीचंद जी जैन ने वह पुस्तक लिखी। उन्होंने विचार किया कि पुस्तक तो मैंने लिख दी, किंतु इसका नाम क्या दूँ, शीर्षक क्या दूँ? इसी तरह का विचार एक बार मेरे मन में भी आया था। एक पण्डित जी मुझे हिंदी पढ़ा रहे थे। उन्होंने मुझसे लेख लिखने के लिए कहा। मैंने कहा शीर्षक बताओ, किस पर लेख लिखूँ तो उन्होंने कहा, देखो वैरागी जी, हमारे भारत का संस्कार है, पहले बालक जन्म लेता है फिर उसका नामकरण होता है। उन्होंने कहा कि पहले लेख लिखो फिर उसका नामकरण होगा। मैंने कहा ठीक है।

डॉ. नेमीचंद जी ने किताब लिख दी। उन्होंने एक बार बताया था कि किताब लिखने के बाद मैं सोचता रहा कि उसे क्या नाम दूँ। कई नाम दिमाग में आए, पर लगता रहा कि यह नाम ठीक नहीं है। आखिर में मन 'आगम पुरुष'

पर अटक गया और वह नाम रख दिया।

दिगम्बर समाज के किसी मुनि ने इस पर उनके समक्ष सवाल उठाया तो नेमीचंद जी ने कहा, मैंने 24 घण्टे आचार्य श्री नानालाल जी के साथ बिताए। अलग-अलग समय में 24 घण्टे उनके साथ बिताए। कभी आधा घण्टा, कभी एक घण्टा। ऐसा करते-करते मैंने 24 घण्टे उनके साथ बिताए। मैंने हर प्रकार से उलटे-सुलटे प्रश्न किए। हर तरह से मैंने उनको देखा-परखा, प्रश्न किया, जानने की कोशिश की कि कितनी गहराई में हैं। न कभी गुस्से में देखा, न कभी लोभ में। न कोई लालच देखा और न किसी की निंदा करते सुना। नेमीचंद जी कहते हैं कि मैंने जितना समय उनके साथ बिताया, आगम के अलावा मुझे कुछ नजर नहीं आया, इसलिए मेरे मन में आया कि आगम पुरुष ठीक है।

यह समझने की बात है, और कुछ नहीं है। उन्होंने आगम अपने जीवन में उतार लिया। हम भी अपने ज्ञान को जीवन में उतार लेंगे तो वह हमारा होगा, नहीं तो सुना हुआ, समझा हुआ, पढ़ा हुआ यहीं रह जाने वाला है।

जिसके ज्ञान के साथ हमने फेरे ले लिया, जिस ज्ञान से संबंध जोड़ लिया, जिस ज्ञान को अपने जीवन में उतार लिया, वह ज्ञान हमारा होगा। ज्ञान आचरण रूप में होने पर ही परिणाम देता है।

'ज्ञानस्य फलं विरतिः' अर्थात् जो ज्ञान आचरण में आ जाए वही ज्ञान का सार है।

**'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्गः'**

पहले दर्शन करना, फिर दिव्यता का बोध करना और फिर दिव्यता को अपने भीतर उतारने का प्रयत्न करना। जिसके भीतर दिव्यता उतर गई वह धन्य-धन्य हो जाएगा।

**देवयं के बाद चेइयं पद है। चेइयं का क्या अर्थ है?**

चेइयं का अर्थ है चैत्य स्वरूप। चैत्य का मतलब है आप ज्ञान स्वरूप हैं। ज्ञान और आत्मा एकान्त भिन्न नहीं है। कथंचित् भिन्न व कथंचित् अभिन्न है। आप ज्ञान स्वरूप हैं यानी आत्मरूप में स्थित हैं। ज्ञान की आभा आपके भीतर प्रकट हो गई है। उसका दर्शन चर्म चक्षु से नहीं होगा। उसका दर्शन होगा दिव्य नयन से। इस प्रकार से एक बार भी किया गया वंदन हमें बहुत लाभ देने

वाला होगा। उससे हमारे भीतर का ग्राफ इतना ऊँचा उठेगा कि हमारे कर्मों के वृंद टूट जाएंगे। संतों को सुनने से, संतों की पर्युपासना करने से, संतों के दर्शन करने से कर्मों की निर्जरा होती है।

**'साधुनां दर्शनं पुण्यं'**

साधु पुण्य रूप होता है। उसकी पर्युपासना से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है। साधु आपकी निर्जरा कराने वाला नहीं है। आपके भाव में जो शुभता आएगी, वह आपके कर्मों की निर्जरा कराने वाली होगी। वह पाप कर्मों को हटाने वाली होगी। साधु केवल निमित्त है। अत: साधु की जो दिव्यता है, उसका दर्शन करो। कोई आवश्यकता नहीं है कि साधु उपदेश दे। आप मुनि के पास बैठ जाओ, उनके दिव्य दर्शन करते रहो। उनकी दिव्यता अपने भीतर उतारते रहो और उतारते चले जाओ। उनकी दिव्यता आपको ज्ञान रूप देने वाली होगी।

मृगावती, भगवान महावीर के दर्शन में इतनी लीन हो गई कि थोड़ी ही देर में केवली बन गई। उसके भावों की विशुद्धि इतनी हो गई कि उसको केवलज्ञान हो गया।

बंधुओ! हमने सुना बहुत है, किंतु सुनने के साथ उतरना चाहिए। गाय-भैंस चारा खाने के बाद जैसे जुगाली करती है, वैसे ही हम जुगाली करेंगे तो भाव की विशुद्धि होगी। दिव्यता प्रकट होगी। आनंद प्रकट होगा। सुख मिलेगा। शांति मिलेगी। समाधि मिलेगी। शांति और समाधि कहीं दूसरी जगह नहीं है।

शांति-समाधि कहाँ है?

(श्रोताओं ने कहा- अपने भीतर है)

और भगवान कहाँ हैं? वीतराग कहाँ हैं?

(श्रोता- अपने भीतर हैं)

**'आनंद तुम्हारे भीतर है, जरा आँख खोलकर तो देखो'**

आनंद हमारे भीतर है, केवल आँख खोलकर देखने की आवश्यकता है। ऊपर की आँख बंद करें और भीतर की आँख खोलकर उसका दर्शन करें। आपकी तिजोरी में बहुत सारा धन भरा हुआ है। आपको मालूम है कि तिजोरी में बहुत सारा सोना है, रत्न है। आपको उसमें से निकालना है और सारे दरवाजे

खुले हैं तो पहले आप दरवाजा बंद करोगे। कोई आ न जाए, कोई देख न ले, इसलिए पहले दरवाजा बंद करोगे, फिर तिजोरी का दरवाजा खोलोगे। हम बाहर की आँख बंद कर दें, भीतर की आँख खोल लें। भीतर का दरवाजा खुलेगा तो क्या नजर आएगा?

**आनंद तुम्हारे भीतर है, जरा आँख खोलकर तो देखो**

आनंद हमारे भीतर है। उसको प्राप्त करने के लिए थोड़ा-सा प्रयत्न करना पड़ेगा। थोड़ा-सा प्रयत्न आनंद की अनुभूति कराने वाला होगा।

अशोक नगर में पहले भी मेरा गुरुदेव के साथ आने का काम पड़ा, अलग से भी आने का काम पड़ा। अब कुछ नयापन नजर आ रहा है। अब स्थानक भवन नया बन गया। यह विज्ञान समिति भी बनी है। नयापन होता रहता है, किंतु हमारे भीतर नयापन आया या नहीं आया? हमारे भीतर आनंद आया या नहीं आया? उस आनंद की अनुभूति करने के लिए हमें संतों का सान्निध्य प्राप्त है।

उनकी दिव्यता के दर्शन करेंगे तो भीतर ज्ञान प्रकट होगा। आचरण प्रकट होगा। समाधि में लीन होंगे। यदि ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

27 नवम्बर, 2022
अशोक नगर

# 9

# शांति का मार्ग उपशम

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

इस स्तुति के द्वारा जिनेश्वर देवों के मार्ग को देखने की बात कही गई है। इस पर एक प्रश्न उठता है कि कैसे देखा जाएगा उनके मार्ग को? उस मार्ग को देखने का उपक्रम क्या है?

तीर्थंकर देवों का मार्ग कषायों को जीतने वाला मार्ग है। उपशम भावों का मार्ग है। उपशम का अर्थ है उत्तेजना के समय अपने आपको शांत रखना। उत्तेजना के समय शांत रखने वाले भाव को उपशम भाव कहते हैं।

जलते चूल्हे पर रखे दूध में एक समय के बाद उफान आ जाता है। दूध में उफान नहीं आए या दूध बाहर नहीं निकले उसके लिए क्या उपाय हो सकते हैं?

(श्रोता- दूध में पानी के छींटे देंगे)

कितने चतुर हैं आप! 40-50 या 60 रुपए लीटर का दूध व्यर्थ में नहीं चला जाए, उफन कर बह न जाए, इसलिए कितनी सावधानी रखते हैं। दूध उफनने लगे तो दूसरा काम छोड़कर पहले दूध को बचाने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में पानी के छींटे देंगे, गैस बंद करेंगे या अन्य कुछ भी उपाय करेंगे। यह उपाय किसलिए किया जाता है?

दूध को उफनने से बचाने के लिए किया जाता है। ताकि दूध उफनकर बरतन के बाहर नहीं चला जाए। दूध को बचाने के लिए हम बहुत प्रयत्न करते हैं पर क्रोध के उफान को रोकने का क्या उपाय करते हैं? क्रोध आने पर उसे और बढ़ने देते हैं या उसको सीमित करने की सोचते हैं? क्रोध को शांत करने की सोचते हैं या उसको बढ़ने का अवसर देते हैं?

(श्रोता- उसको शांत करने के लिए सोचते हैं)

बहुत मुश्किल है शांत करने के लिए सोच पाना। यहाँ पर आप कुछ भी जवाब दे दें किंतु जिस समय वैसा प्रसंग आता है उस समय बहुत मुश्किल होता है शांत रह पाना। कभी दो आदमी लड़ाई करते हैं, उस समय उन्हें खींच कर अलग किया जाए, उन्हें शांत रहने के लिए कहा जाए तो दोनों कहेंगे कि मैं कैसे चुप हो जाऊँ। मैं छोटे बाप का थोड़ी न हूँ, मैं क्यों पीछे हट जाऊँ। ये दृश्य हमने देखे हैं। हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता है कि हमने अपने जीवन का मूल्य कितना समझा? कषाय संसार में रोकनेवाले हैं या मुक्ति की ओर ले जाने वाले हैं?

(श्रोता– संसार में रोकने वाले हैं)

किसी के भीतर उपशम भाव नहीं हो और वह बाहर से सामायिक या प्रतिक्रमण कर रहा हो तो ऐसा करना भगवान की आज्ञा की आराधना नहीं होगी। भगवान की आज्ञा की आराधना है– राग–द्वेष को पतला करना। राग–द्वेष को जीतना। राग–द्वेष को पतला करना आसान नहीं है। बड़ा मुश्किल है राग–द्वेष को पतला करना। आप लोग बृहदालोयणा करते हुए बोलते हैं–

**'राग-द्वेष पतला करो, तो पहुँचो निर्वाण'**

किससे होगा निर्वाण?

(श्रोता– राग–द्वेष पतला करने से निर्वाण होगा)

पतला करने से काम नहीं चलेगा। राग–द्वेष को पूरा हटाना होगा। राग–द्वेष पूरा हटेगा तो निर्वाण हो पाएगा। निर्वाण के पहले अपना निर्माण करना आवश्यक है। निर्वाण तो हो जाएगा, किंतु पहले अपना निर्माण करो। मकान बनाने में, बिल्डिंग खड़ी करने में बहुत समय लगता है किंतु गिराने में सेकेंड लगते हैं। सेकेंडों में बिल्डिंग गिर जाएगी किंतु सेकेंडों में खड़ी नहीं होगी। कोई चाहे कि सेकेंडों में बिल्डिंग खड़ी कर लूँ तो नहीं होगा। चाहे कितने ही विज्ञान का प्रयोग कर लिया जाए, कितना ही साधनों का प्रयोग कर लिया जाए, किंतु आज की तारीख में सेकेंडों में बिल्डिंग खड़ी नहीं हो सकती। हाँ, खड़ी बिल्डिंग को सेकेंडों में गिराया जा सकता है। निर्माण में समय लगता है। गिरने में, गिराने में, पतन में विशेष समय की आवश्यकता नहीं है और न किसी विशेष प्रयत्न की। निर्माण में बहुत प्रयत्न करना होता है। निर्माण में पुरुषार्थ करना होता है।

हमने अपने जीवन निर्माण के लिए क्या सोचा? क्या उपाय किया?

हमारा जवाब हो सकता है कि मैंने सामायिक की, प्रतिक्रमण किया। कोई कह सकता है कि मैं रोज प्रतिक्रमण करता हूँ। कोई कहेगा कि रोज चार-पाँच सामायिक करता हूँ। यह सच है कि बहुत से लोग क्रिया करते हैं, किंतु मूल बात है कि कषाय कितने शांत हुए! कषायों का भार हलका हुआ या नहीं! क्रोध, मान, माया, लोभ का भार हमें दिखता नहीं है, पर आत्मा उससे भारी होती है।

भगवान से पूछा जयंती बाई श्राविका ने- जीव किससे भारी तथा हलका किससे होता है?

यह बात हमने कई बार सुनी है कि 18 पापों से जीव भारी होता है और 18 पापों से निवृत्त होने पर हलका होता है। 18 पापों में क्रोध, मान, माया, लोभ भी है। हो सकता है कि हिंसा एक बार आदमी को भारी नहीं बनाए, किंतु कषाय भारी बनाने वाले हैं। द्रव्य हिंसा जीव को भारी बनाने वाली नहीं होती है।

क्या अर्थ होता है आकुटी बुद्धि का? आकुटी बुद्धि का मतलब होता है जान-बूझकर करना। जान-बूझकर किसी जीव की हिंसा करना आकुटी हिंसा है। इससे विपरीत बहुत सावधानी से चलने के बाद भी कोई जीव पैर के नीचे आ जाए, तो वह हिंसा जरूर होगी किंतु द्रव्य हिंसा होगी। वह आत्मा को भारी करने वाली नहीं होगी, लेकिन क्रोध से की गई हिंसा, मान, माया, लोभ से की गई हिंसा, आत्मा को भारी करेगी। अत: कषायों से हलके होने पर मुक्ति मिल पाएगी।

नीति का एक श्लोक है-

**''कषाय मुक्तिः किल मुक्तिरेव''**

अर्थात् कषायों से मुक्ति हो गई तो कर्मों से मुक्त होने में देर नहीं लगेगी और कषायों से मुक्ति नहीं हुई तो कर्म कितने भी हलके कर लिये जाएं भारी कर्मा बने रहेंगे। कषायों को हलका करने से कर्म हलके हो जाएंगे। भले ही धीरे-धीरे हो, किंतु हो जाएंगे। रहेंगे नहीं। कर्मों को रहने के लिए कषायों का आश्रय चाहिए। कर्मों का जीवन कषायों पर टिका हुआ है। यदि हमने कषायों को हलका कर दिया तो हमारे कर्म भी हलके हो जाएंगे। कर्मों का भार हमें

सताएगा नहीं, किंतु कषाय बड़े भयंकर हैं।

एक जमाने में कैंसर की बीमारी बहुत भयंकर मानी जाती थी। कोई डॉक्टर किसी को कह देता कि तुम्हें कैंसर की बीमारी है, तो उसको मौत सामने नजर आती थी। अब डॉक्टर कहते हैं कि कैंसर हमारी मुट्ठी में है। हमने कैंसर का इलाज ढूँढ लिया है। उन्होंने इलाज ढूँढा या नहीं, यह अलग विषय है। यदि कैंसर के जर्म्स पूरे शरीर में फैल जाएं तो उसका इलाज बहुत मुश्किल है। कठिन है।

क्रोध, मान, माया, लोभ के जर्म्स हमारी आत्मा में फैले हुए हैं। वे पूरे जीवन में हलचल पैदा करते रहते हैं। किसी एक अंग पर असर नहीं होता। पूरे जीवन पर उसका असर होता है। इससे जीवन अनबैलेंस हो जाता है। बैलेंस बिगड़ जाता है। बैलेंस बिगड़ने के बाद भी हम उनसे सावधान नहीं हो पा रहे हैं। जैसे उफनते दूध में ठण्डे पानी का छींटा देते हैं, गैस बंद कर देते हैं, दूध के बरतन को नीचे रख देते हैं, उसी तरह क्रोध, मान, माया, लोभ से बचने के भी उपाय हैं पर हम लोग उसका उपयोग कम कर पाते हैं।

क्रोध को जीतने का क्या उपाय है?

(एक श्रोता– उपशम क्रोध को जीतने का उपाय है)

कैसे करें उपशम?

जैसे दूध उफनने पर गैस बंदकर देते हैं, वैसे ही क्रोध आने पर मौन रख लें। आज का पच्चक्खाण यही करा दूँ कि गुस्सा आए तो मौन कर लेना! बोलना नहीं। चाहे घर में हों, चाहे ऑफिस में या फिर रास्ते में। ऐसा भी नहीं है कि हम क्रोध के समय कभी मौन नहीं रहते! सामने वाला बलवान हो तो कई बार हम मौन रह भी जाते हैं। यदि बॉस कुछ कहे तो वहाँ बोल नहीं पाएंगे। यदि वहाँ बोलेंगे तो बॉस कहेगा, यू कैन गो। वह कहेगा कि तुम जा सकते हो और जाना हमको है नहीं, क्योंकि हमारी गाड़ी औरों पर टिकी हुई है। वहाँ पर तो मौन रह जाएंगे, किंतु अपने से छोटे पर, अपने से कमजोर पर गुस्सा आए तो मौन रखना बहुत कठिन है।

यदि क्रोध को जीतना है, अपने आत्मगुणों को विकसाना है तो उपाय करना पड़ेगा। पहला उपाय है, मौन रखना। मौन नहीं रखने पर बाँध टूट जाता है। बाँध टूटेगा तो पानी बह जाएगा। दूध को उफनने से बचाने का दूसरा उपाय

है, बरतन को उतारकर नीचे रखना। उसी प्रकार जिस समय गुस्सा आए, उस समय उस स्थान को छोड़ देना। यदि नीचे की मंजिल में गुस्सा आए तो ऊपर चले जाओ, ऊपर गुस्सा आए तो नीचे चले जाओ। स्थान छोड़ देने पर भी क्रोध कम हो जाएगा। जिस व्यक्ति से, जिस प्रसंग से गुस्सा आ रहा है, वह प्रसंग सामने से हट जाएगा तो गुस्सा कम हो जाएगा। अभी थोड़ी देर पहले दूध को उफनने से बचाने का एक उपाय आपने बताया कि पानी के छींटे डालेंगे तो दूध नहीं उफनेगा। वैसा ही काम गुस्सा आने पर करना है। अपने मन की अनुप्रेक्षा करनी है कि गुस्सा करने से फायदा क्या होगा, लाभ क्या होगा? पाँच मिनट इस पर विचार करना। यदि पाँच मिनट का समय निकाल दिया तो आप उस वेग में गुस्सा नहीं कर पाओगे। उसमें उफान नहीं आएगा। उफान शांत हो जाएगा। दूध को उफान से बचाने के लिए लाख उपाय करेंगे, किंतु क्रोध से अपने आपको बचाने के लिए उपाय नहीं कर पाते हैं। उस समय दिमाग में अहंकार प्रभावी हो जाता है। अहंकार बोलता है कि तू चुप रह जाएगा तो लोग तुम पर हावी हो जाएंगे। अहंकार कहता है कि 'टिट फॉर टैट' यानी ऐसा उत्तर दो कि सामने वाले का बोलना बंद हो जाए।

यह शिक्षा कौन देता है?

यह शिक्षा देता है भीतर बैठा हुआ अहंकार। अहंकार शिक्षा देता है कि पीछे मत रहना, दृढ़ रहना। मैं तुम्हारे पीछे हूँ। इससे वह डटा रह जाता है। वह सोचता है कि मेरा बल बढ़ गया। उस स्थिति में पीछे हटने का नाम नहीं लेगा। डटा रहेगा। वह कहेगा कि आ जाओ, मैं तुमसे दो-दो हाथ करने के लिए तैयार हूँ।

और होता क्या है?

अहंकार पहले भागता है और क्रोध बाद में भागता है।

तीसरा नंबर है माया का। माया दाँव-पेच खेलती रहती है। दाँव-पेच, छल-कपट, उसी के प्रपंच हैं। वह कुटिलता की सीख देती है। कहती है कि ऐसा नहीं तो ऐसा करो। यह दाँव नहीं तो वह दाँव चलाओ। उसकी बातों में पड़ा व्यक्ति दाँव चलाते-चलाते अपनी आत्मा को भूल जाता है। मान लें कि दाँव चलने से थोड़ी देर के लिए वह जीत गया तो भी वह जीत नहीं है। वह हार होगी।

चौथा है लोभ। भगवान ने बताया है कि लोभ सर्व भस्मक रोग है।

दु:खविपाक सूत्र में मृगा लोढ़ा का वर्णन आता है। मृगा लोढ़ा को कितना भोजन चाहिए था?

उसकी माँ उसके लिए गाड़ी भर के भोजन ले जाती थी। वह उस पर टूट पड़ता और झट से खा लेता। खाने के बाद वमन कर देता और फिर वमन को भी खा लेता।

यह सुनकर विचार आ रहा होगा कि क्या स्थिति रही होगी। हम भी उस रास्ते से कभी-न-कभी गुजरे होंगे। हमारे जीव ने भी वैसे-वैसे खेल खेले होंगे। यह मत सोचना कि मृगा लोढ़ा ने ही ऐसा किया। हम दूध के धुले नहीं हैं। हमारी आत्मा ने भी क्या-क्या काले कर्म किए और कैसे-कैसे कर्मों का भोग किया उसका इतिहास मिलेगा केवलज्ञान में।

कम्प्यूटर की फ्लॉपी में हमारा इतिहास मौजूद है, किंतु कम्प्यूटर किसी ने बंद कर दिया। किसी ने पासवर्ड लगा दिया। पासवर्ड नहीं मालूम होगा तो कम्प्यूटर नहीं खुल पाएगा। पासवर्ड होगा तो कम्प्यूटर खोलकर एक-एक कर्म को बताया जा सकता है कि हमने किस जन्म में कैसे-कैसे कर्म किये और उनका क्या भुगतान किया। यह फ्लॉपी हमारे कार्मण शरीर रूपी कम्प्यूटर में रही हुई है। उसे केवलज्ञान से जाना जा सकता है। अभी तो हमें केवलज्ञान होगा नहीं, किंतु यह निश्चित है कि हमने अनुत्तर विमान में देवरूप को छोड़कर बाकी कोई जगह नहीं छोड़ी। पाँच अनुत्तर विमान क्षेत्र में भी स्थावर के रूप में हमने जन्म लिये हैं। सारे लोक में एक भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ हमने जन्म न लिया हो। हमने हर जगह जन्म-मरण किये हैं। लोक का कोई भी हिस्सा नहीं छोड़ा। जहाँ सिद्ध भगवान हैं, वहाँ पर भी हमने जन्म-मरण किया। एक बार नहीं, अनेक बार वहाँ जन्मे हैं। कई लोग कहते हैं कि महाविदेह क्षेत्र में चले जाने से कल्याण हो जाएगा। क्या कल्याण होगा? कल्याण करने वाला भरत क्षेत्र में भी कल्याण कर लेगा और नहीं करने वाला महाविदेह क्षेत्र में जा कर भी कल्याण नहीं कर पाएगा।

महाविदेह जाने से कल्याण होगा या कषाय छोड़ने से होगा?

(श्रोता- कषाय छोड़ने से कल्याण होगा)

यह सुविधा यहाँ भी है या नहीं है? कषायों को छोड़ने की सुविधा

यहाँ पर भी है।

क्या सुविधा है और हमने उस सुविधा का क्या उपयोग किया?

(एक श्रोता ने कहा- संयम लेना सुविधा है)

संयम लेना ही खाली सुविधा नहीं है भाई साहब! संयम लेने के बाद भी क्रोध आ जाता है।

संभूति को कैसे क्रोध आया? उसे चक्रवर्ती सम्राट पर भयंकर गुस्सा आया। उसकी तेजोलब्धि फूट पड़ी जिससे पूरे नगर में धुआँ फैल गया। चक्रवर्ती सम्राट दौड़े-दौड़े उसके सामने आ क्षमायाचना करते हैं। सम्राट द्वारा क्षमायाचना करने के बावजूद संभूति का गुस्सा शांत नहीं हुआ। मुनि बनना ही उपाय नहीं है। उपाय है उपशम करना। उपशम करने पर ही आराधना होगी। उपशम घर में भी किया जा सकता है। घर में रहकर भी कषायों को शांत किया जा सकता है और साधु बनकर भी शांत किया जा सकता है। भरत क्षेत्र में भी रहकर शांत किया जा सकता है और महाविदेह में भी किया जा सकता है। उसके लिए किसी विशेष क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है भावों की। आवश्यकता है जागरूकता की। जागरूकता से क्रोध पर ठण्डे पानी के छींटे डाले जा सकते हैं। नहीं डालेंगे तो स्वयं का बिगाड़ होगा। स्वयं का बिगाड़ नहीं करना है तो किसी भी उपाय से आत्मा के सद्गुणों का विनाश होने से बचा लें, नहीं तो आत्मा का पतन होना ही है। उपाय करने वाला अपना बचाव कर सकता है।

क्रोध के कारण भगवान महावीर की आत्मा ने कैसे-कैसे जन्मों में कैसी-कैसी बुराई का सेवन किया। कैसे-कैसे कष्टों को उठाया। चाहे भगवान महावीर के जीवन की कहानी लें या अपने जीवन की, सबमें ये कषाय मिलेंगे। विनाश या पतन कषायों से हुआ है। नरक में गए तो कषायों के कारण गए। निगोद में गए तो भी कषायों से गए। हम कितनी बार निगोद में चले गए, इसकी कोई गिनती नहीं है। हम गिन ही नहीं सकेंगे। अभी हमें मौका मिला है। आज हमें तीर्थंकर भगवान की वाणी सुनने का मौका मिल रहा है। ऐसे समय में यदि हमने अपने आपको नहीं संभाला, अपने आपको नहीं समझाया और कषायों से बचने का कोई उपाय नहीं सोचा तो क्या होगा? फिर जीवन का दूध उफन जाएगा और हम देखते रह जाएंगे। दूध उफनते-उफनते बरतन खाली हो

जाएगा। बहुत सारा दूध उफन कर बाहर निकल जाएगा। फिर पछताने से कुछ नहीं होगा।

**'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत'**

पछताना न पड़े, इसलिए पहले से ध्यान देना है।

एक सास-बहू की कहानी है। उनमें झगड़ा हो गया। उदयपुर में तो झगड़ा नहीं होता होगा! उदयपुर में तो समझदार लोग होंगे। बाहर के लोग ज्यादा आ गए इसलिए उदयपुर वालों को गुस्सा आने लगा होगा! यह हमारी नीयत है। क्या नीयत है अपनी? दूसरों पर दोष डालने की नीयत है। हम दोष दूसरों पर डालते हैं। उदयपुर वालों को लड़ाई करनी नहीं आती, किंतु बाहर के बहुत सारे लोगों के आने के कारण लड़ाइयाँ होने लगी। देखा-देखी होने लगी। देखा-देखी होने लगने का मतलब है कि आपकी समझदारी काम नहीं आई। आपकी समझदारी काम आई होती तो बाहर वाले सुधरते। आपके बिगड़ने की बात नहीं होती।

खैर, सास-बहू में झगड़ा हुआ। दोनों, दो तरफ मुँह करके बैठ गईं। दोनों एक-दूसरे से नहीं बोल रहीं। रसोई का दरवाजा खुला था। रसोई में रोटियाँ रखी हुई थीं। एक कुत्ताराज अंदर घुसा और...

उसने अच्छी तरह से फायदा उठाया। वह खा-खवाकर निकल गया। दोनों की लड़ाई में उसने फायदा उठाया। दो की लड़ाई में तीसरे को फायदा होता है। जब उन दोनों का गुस्सा शांत हुआ तब उनको नजर आया कि सारी रोटियाँ तो कुत्ता खा गया।

लोग केवल रोटियों का नुकसान देखते हैं। केवल रोटियों का नुकसान न देखें। स्वयं का नुकसान कितना हुआ यह देखें। रोटी गई वह तो दिख गया, दूध पी गया वह तो हमें दिख गया, किंतु हमारे भीतर का नुकसान कितना हुआ, यह बात हमने नहीं जानी। इस बात की हमने पहचान नहीं की। बाहर की चीज हमें नजर आएगी किंतु भीतर कितनी हानि हुई, कितना नुकसान हुआ, उस बात को नहीं समझ पाते। इसी बात को स्तुति में इस प्रकार कहा गया है-

**'चरम नयणे करी, मार्ग जोवतां रे...'**

अर्थात् सारा संसार बाहरी क्रियाओं को देखकर जी रहा है। बाहरी

क्रियाओं के आधार पर निर्णय हो रहा है। उस निर्णय से हकीकत का पता नहीं चल पा रहा है।

**'जेणे नयणे करी मारग जोइए रे, नेणा ते दिव्य विचार'**

बाहरी क्रियाओं की जगह यतना के नयनों से उसका अवलोकन करो। यदि किसी को गुस्सा आ रहा है, तो सोचो कि उसको गुस्सा क्यों आ रहा है। बहुत कम लोग यह सोचते हैं कि उसको गुस्सा क्यों आ रहा है।

बाप पर बेटे को गुस्सा आ गया। बाप पर बेटे को गुस्सा आ सकता है या नहीं?

(श्रोता- आ सकता है)

बाप पर बेटे को गुस्सा आ सकता है, ऐसा नहीं है कि नहीं आ सकता। बाप यह सोचता है कि इसको गुस्सा क्यों आया, वह यह नहीं सोचता कि यह गुस्सा क्यों कर रहा है, क्या कारण है जो यह गुस्सा कर रहा है। बाप को गुस्सा आए तो बेटा नहीं देखता कि पापा को गुस्सा किस कारण से आया। हम उसकी स्थिति को देखें-जानें। यह देखें कि उसको गुस्सा कैसे आया, क्यों आया। गुस्सा आने के पीछे कोई-न-कोई कारण होगा। बिना कारण गुस्सा नहीं आ सकता। यदि उस कारण का निवारण कर दिया जाय तो उसका भी गुस्सा शांत हो जाएगा और हमारा बिगाड़ भी रुक जाएगा, किंतु यह सोच हमारी जल्दी से नहीं बनती।

बहुत-से श्रावक आ कर कहते हैं कि म.सा. गुस्सा बहुत आ जाता है। घर में व्यवस्था ठीक नहीं होती तो गुस्सा आ जाता है। घरवालों ने कुछ बुरा किया तो गुस्सा आ जाता है। घरवालों ने बुरा किया, किंतु जिसने गुस्सा किया उसने अच्छा किया क्या? घरवालों ने काम समय पर नहीं किया, घर की व्यवस्था ठीक नहीं रखी, किंतु जिसने गुस्सा किया उसने अच्छा किया क्या? दूसरों की गलती पर तो तुम्हें गुस्सा आ रहा है और तुम गलत रास्ते पर जा रहे हो उस का उपाय क्या? तुम जो करो वह सही और दूसरा करे तो गलत! यह दृष्टि दोष है। इस दृष्टि से गुस्सा शांत नहीं होगा। इस दृष्टि से कभी भी हम उपशम भाव में नहीं आएंगे। हमें सोचना होगा कि गुस्से का कारण क्या है।

और एक बात ध्यान में लेना, गुस्सा कमजोर व्यक्ति को आता है। व्यक्ति अपने भीतर की कमजोरी को छिपाने के लिए गुस्से को सामने करता है

ताकि दूसरा आदमी चुप हो जाए।

बंधुओ! दूध बचाने के लिए हम उपाय करते हैं। रोटी जल न जाए इसके लिए उपाय करते हैं। खिचड़ी बरतन में चिपक न जाए उसके लिए उपाय करते हैं। राब बनाने में सावधानी रखते हैं, किंतु अपने जीवन के लिए सावधानी क्या रखी? हम क्या सावधानी रख रहे हैं, यह अपने आप में सोचने की बात है। मुझे उत्तर देने की बात नहीं है। मुझसे या किसी अन्य से यह बताने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं से पूछो कि मैंने अपने जीवन के लिए, जीवन की रक्षा के लिए, आत्मगुणों की सुरक्षा के लिए क्या उपाय किए! कषायों को जीतने के लिए क्या तकनीक अपनाई! मैंने कितनी सार्थकता प्राप्त की! कितनी सफलता प्राप्त की! आत्मशुद्धि की तकनीक का नाम है प्रतिक्रमण। आत्मगुणों के संरक्षण की तकनीक का नाम है प्रतिक्रमण। हम कौन-सा प्रतिक्रमण कर रहे हैं?

मिच्छामि दुक्कडं, मिच्छामि दुक्कडं। कुम्हार वाला मिच्छामि दुक्कडं करते रहने से क्या होगा। खाली मिच्छामि दुक्कडं बोलने से क्या होगा। जो गलती की, उस गलती को सुधारने का प्रयत्न करें। उसको सुधारें। दृष्टि अपनी गलतियों पर जाए। दूसरों की गलतियाँ नहीं ढूँढें। यह दृष्टि बनेगी तो हम खुशी से मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने की दिशा में अपने कदम आगे बढ़ाने में समर्थ होंगे। ऐसा हमारा प्रयत्न बने, हमारा लक्ष्य बने। हमारी इस प्रकार की सोच बने। ऐसा कर पाएंगे तो निश्चित है कि इस मनुष्य जन्म में कुछ हासिल कर पाएंगे। कुछ ऐसा हासिल कर पाएंगे, जिससे हमारा मन संतुष्ट होगा। इस प्रकार का हम विचार करें।

भूपालपुरा संघ धर्मनिष्ठ संघ है। यहाँ साधु-साध्वियों का समागम होता रहता है। चातुर्मास भी होता रहता है। मेरा भी आज यहाँ आना हुआ। जितने समय तक संतों का सान्निध्य मिले अपने आपको लाभान्वित करें। इतना ही कहते हुए विराम।

28 नवम्बर, 2022
भुपालपुरा

# 10

# सही समझ सदा सुखदायी

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**
**धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।**
**देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।**

ऐसा कह दूँ कि दशवैकालिक सूत्र की प्रथम गाथा पूरे आगमों का निष्कर्ष और निचोड़ है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस गाथा में कहा गया है कि धर्म मंगल है, उत्कृष्ट है, किंतु धर्म के नाम पर आज बहुत-से लोग भ्रमित हो रहे हैं। बहुतों को धर्म का नाम सुहाता नहीं है। धर्म का नाम आते ही चौकन्ने हो जाते हैं। इसका कारण है कि धर्म को समझा नहीं गया है। धर्म को सही तरह से समझ लिया जाए तो उसके बिना जीना नहीं हो पाएगा। जैसे श्वास की जरूरत है, वैसे ही धर्म की आवश्यकता है। धर्म कोई अलग चीज नहीं है। धर्म की क्रियाएं अलग हो सकती हैं। सामान्य लोग क्रियाओं को ही धर्म समझते हैं।

सामायिक-संवर नहीं करने पर भी धर्म हो सकता है या नहीं?

(श्रोताओं ने कहा- हो सकता है)

फिर सामायिक क्यों करना? सामायिक क्यों करना, बताओ?

सामायिक या साधना का मार्ग हमें धर्म को जीना सिखाता है। यह बात अलग है कि हमने क्वालिटी को घटा दिया। क्वालिटी कम कर दी। साधना की जो क्वालिटी होनी चाहिए उसे बरकरार नहीं रख पाए। क्वालिटी बनी रहती तो धर्म के नाम पर कोई विवाद खड़ा नहीं होता। क्वालिटी गिरने का एक कारण क्रियाओं का सम्यक् ज्ञान नहीं होना भी है। कई लोग सामायिक नहीं कर रहे होते हैं अपितु समय पास करते हैं। यथार्थ में सामायिक का मतलब है समभाव की आराधना से जुड़ना। कैसा भी प्रसंग आ जाए, ऊहापोह नहीं हो। उतार-चढ़ाव नहीं आए। ऐसा होना समभाव है।

इसको साधने के लिए हम कितना प्रयत्न करते हैं?

बहुत कम लोग होंगे जो सामायिक को साधना मानकर करते होंगे। बहुत कम लोग समभाव की दिशा को स्वीकार करते हैं या समभाव की दिशा में आगे बढ़ते हैं। बहुत सारे लोग माला जप लेंगे, जाप कर लेंगे, कुछ पुस्तकें पढ़ लेंगे, स्वाध्याय कर लेंगे और विचार करेंगे कि हो गई सामायिक। मैं यह नहीं कहता कि वह सामायिक नहीं हुई, किंतु सामायिक का स्वरूप इतना ही नहीं है। हमने इसमें ही सामायिक को समेट कर रख दिया। सामायिक का बहुत महत्त्व है। सिद्धांत में जीना सामायिक है। सिद्धांत को ही नहीं मानेंगे तो उसमें जीएंगे कैसे! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को कैसे स्वीकार करेंगे!

अहिंसा का दूसरा नाम है समता। उसी का दूसरा नाम है सरलता। इन अवस्थाओं को प्राप्त नहीं करने वाले धर्म से दूर रह जाते हैं। धर्म, ऑक्सीजन का काम करने वाला है। जैसे जीने के लिए ऑक्सीजन जरूरी होता है, वैसे ही आत्मा के लिए धर्म जरूरी है।

व्यक्ति बिना खाए-पीए कुछ दिन तक रह सकता है, किंतु ऑक्सीजन के बिना थोड़ी देर भी नहीं रह सकता। हम दो साल पीछे चलें। कोरोना के समय ऑक्सीजन के अभाव में कितने लोग तड़पे और मर गए। उस समय एक ऑक्सीजन सिलेण्डर का भाव क्या हो चुका था?

लोग कहते हैं कि ऑक्सीजन सिलेण्डर का भाव आसमान छूने लगा था। यहाँ तक कि सहजता से मिल ही नहीं रहा था। उस समय लोगों को मालूम पड़ा कि ऑक्सीजन की कीमत क्या होती है। मृत्यु के समय मालूम होता है कि किस वस्तु की जरूरत कितनी होती है।

कहा जाता है कि सिकंदर रेगिस्तान में एक बार भटक गया। उस समय वह पानी के लिए तड़प रहा था। उसे लग रहा था कि बिना पानी के वह मर जाएगा। उस समय वह एक गिलास पानी के लिए अपनी आधी सम्पत्ति देने को तैयार हो गया था। इसके बावजूद उसे एक गिलास पानी नसीब नहीं हुआ। उसने पानी की कीमत समझी। हम पानी का मूल्य कितना समझ रहे हैं? हमारे यहाँ पर पानी का बहुत दुरुपयोग हो रहा है। हजारों गैलन पानी गाड़ियों को साफ करने में खत्म हो जाता है। दुपहिया वाहन वगैरह धोने में बहुत पानी खत्म

हो जाता है। उस पानी से कितने ही लोगों की प्यास बुझ जाती। ऐसा मैंने पढ़ा है कि विश्व में तीन प्रतिशत पानी पीने लायक रह गया है। तीन प्रतिशत पानी ही पीने लायक रह गया और हमें कोई चिंता नहीं है। हमने कभी चिंता नहीं की कि तीन प्रतिशत पानी ही है। हमने कभी सोचा नहीं कि पानी का उपयोग सीमित करें। जितना कम से कम में काम चले उतने पानी का प्रयोग करें।

भगवान महावीर ने पहले ही कह दिया कि किसी भी वस्तु का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। अपव्यय नहीं होना चाहिए। पानी बचाने का संदेश देने वाले बहुत से स्लोगन आज भी लगे हुए हैं। 'जल ही जीवन है', 'जल है तो कल है', 'पानी बचाओ' जैसे स्लोगन लिखे मिलते हैं। 'बिजली बचाओ', 'बेटी बचाओ', 'लड़कियाँ बचाओ' जैसे और भी स्लोगन मिलते हैं, किंतु कितने लोगों के कानों पर जूँ रेंगती है? देखिए कि कहीं पानी को व्यर्थ तो नहीं कर रहे हैं! व्यर्थ करने का मतलब है अनर्थ हिंसा।

हिंसा के दो रूप बताए गए हैं; अर्थ हिंसा व अनर्थ हिंसा। अर्थ हिंसा का मतलब है कि प्रयोजन से हिंसा करना। यथा, अपने जीवन के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए मजबूरी में हिंसा करना। ऐसी हिंसा करना मजबूरी है, क्योंकि ऐसी हिंसा न करे तो जीवन नहीं चलेगा। दूसरी हिंसा है, अनर्थ हिंसा। अनर्थ हिंसा यानी जिस हिंसा की आवश्यकता नहीं है। नहीं करने पर भी काम चल सकता है, फिर भी आदमी शौक से कर लेता है। अपनी शान-शौकत के लिए कर लेता है। जैसे एक गिलास पानी ले कर आधा पीया और आधा फेंक दिया। जहाँ आधे गिलास पानी की जरूरत थी वहाँ एक गिलास पानी ले कर आधा पीना अर्थ हिंसा है। आधा पानी फेंक देना अनर्थ हिंसा है।

क्या यह बात समझ में आती है?

(श्रोता- आती है)

आती तो है, किंतु कम आती है।

पुराने लोग परात में बच्चों को नहलाते और वही पानी कपड़े धोने के काम में लेते थे। आज नल खोलकर कपड़े धुलते हैं, बरतन माँजते हैं। यह बताओ कि अभी जिस तरह से बरतन माँजा जा रहा है और पहले जिस तरह माँजा जाता था, उन दोनों में से किसमें पानी का व्यय ज्यादा होता है? पहले ज्यादा होता था या अभी ज्यादा होता है?

(श्रोता- अभी ज्यादा होता है)

कई लोग कहते हैं, म.सा. अभी धर्म पहले से बहुत बढ़ गया। दरअसल धर्म नहीं बढ़ा, दिखावा बढ़ गया। तपस्या बढ़ गई, मासखमण बढ़ गया, अठाई बढ़ गई किंतु जीवन में धर्म का जो प्रवाह होना चाहिए, वह कहाँ आया! कषाय कितने घटे! कितने कषाय कम हुए! राग-द्वेष कितना कम हुआ! मेरे खयाल से पूरे भारत में जैन संघों की खोज कर लें तो बहुत कम संघ मिलेंगे जिसमें कोई विवाद नहीं हो। कुछ-न-कुछ तनाव है। क्यों है भाई? धर्म संघ है या राजनीति का खेला? लगता है राजनीति में जीने वाले धर्म संघ में आ गए। दिनभर राजनीति की चर्चा करते हैं और एक घण्टा धर्म कर लेते हैं। धर्म को जीते कहाँ हैं?

व्याख्यान से जाने के बाद कितने लोग सत्-साहित्य का अध्ययन करते हैं? कितने लोग आगम पढ़ते हैं? आगम पढ़ने के लिए कितना समय है और कितने पढ़ने वाले हैं? हो सकता है कि पाँच-दस आदमी एक घण्टा पढ़ लेते हों। ज्यादा से ज्यादा दो घण्टा पढ़ लेते हों। और कितना पढ़ेंगे? पढ़ते समय नींद आने लगेगी, उबासी आने लगेगी, झपकी आने लगेगी, किंतु राजनीति की चर्चा पूरी रात करेंगे तो नींद उड़ जाएगी। धर्म की चर्चा एक घण्टा करेंगे तो नींद आने लगेगी, किंतु राजनीति पूरी रात करेंगे तो भी कम पड़ेगी।

मैं बात बता रहा हूँ विवेक की, यतना की। विवेक घटा या बढ़ा? यतना घटी या बढ़ी?

(श्रोता- घटी)

पहले बरतन मिट्टी से माँजते थे। पहले सीमित पानी का उपयोग होता था, क्योंकि पानी कुएं से लाना पड़ता था। आज की तरह घर-घर नल की सुविधा नहीं थी। आज की तरह घर-घर नल नहीं लगे थे कि नल चालू किया और पानी मिल गया। आज लोग पैसों की चिंता करते हैं, हिंसा व पाप की नहीं। कहते हैं कि ज्यादा बिजली मत जलाओ नहीं तो बिल ज्यादा आएगा। बिजली बचाने के पीछे यह मंशा नहीं है कि हिंसा ज्यादा हो जाएगी, यह सोच है कि बिल ज्यादा नहीं आना चाहिए। बिल की चिंता करते हैं, जीवों के घात की नहीं। मोबाइल से होने वाली तेऊकाय जीवों की हिंसा के प्रति हमारी संवेदना घटी या बढ़ी?

मोबाइल स्विच ऑन करते समय कोई झटका लगता है क्या दिमाग में? केवल स्विच ऑन करने से तेउकाय के असंख्यात जीवों की घात होती है। मेरे खयाल से 20-30 साल हुए होंगे मोबाइल के युग को। पहले मोबाइल के बिना काम चलता था या नहीं?

(श्रोता- काम चलता था)

अभी कोई विशेष शांति मिल गई?

अब ज्यादा सुविधा मिल गई क्या?

(श्रोता- अभी ज्यादा सुविधा नहीं है)

हम ज्यादा सुविधा में फँसे या निकले?

(श्रोताओं ने कहा- अभी ज्यादा सुविधा नहीं है)

भगवान ने कितनी सुंदर बात कही कि साता की चाह करने वाला सद्गति को प्राप्त नहीं हो सकता। साता की वृत्ति वाला अपने सुख के लिए न जाने कितने जीवों को मारता है। असंख्यात जीव मारे बिना तो साता मिलेगी ही नहीं। पानी की एक बूँद में असंख्यात जीवों की हिंसा होती है। अग्नि की एक चिनगारी से असंख्यात जीवों की घात होती है।

धर्म की परिभाषा क्या होगी?

धर्म जीने की कला सिखाता है। किसी भी चीज का दुरुपयोग करना धर्म नहीं है। कितना भी खाओ, खाने-पीने की मनाही नहीं है, किंतु दुरुपयोग करना धर्म नहीं है। कुछ लोग अतिवाद में भी चले जाते हैं। ऐसे लोग संसार तो बसा लेते हैं पर कर्त्तव्य के समय बगलें झाँकने लगते हैं।

आनंद श्रावक के पास कितना गौ-धन था? कितना पशुधन था?

(श्रोताओं ने कहा- 40 हजार पशुधन था)

40 हजार पशुधन था। उनके चारे-पानी की व्यवस्था थी। गायें भूखी मर रही हों और कोई यह कहे कि मैंने तो बारह व्रत स्वीकार कर रखे हैं, मैं उनके चारे-पानी की व्यवस्था करूंगा तो मुझे पाप लगेगा, अत: मैं नहीं करता सोचो, आनंद श्रावक एक भव करके मोक्ष जाने वाला है। ऐसा नहीं है कि वह संसार में रुकेगा। कितने लोग कहते हैं कि मुझे तो पाप लग जाएगा। कर्त्तव्य से विमुख होना भी पाप है। अपने कर्त्तव्य को नहीं समझना भी पाप है।

कोई बाप अपने बेटे की देख-रेख नहीं करे, कहे कि मुझे पाप लग

जाएगा तो बेटे को जन्म क्यों दिया। जन्म देने का पाप क्यों किया। उससे पहले बचना था। एक पाप तो कर दिया, अब कर्त्तव्य पालन में शर्म आ रही है! ऐसे बहुत सारे किस्से हैं। श्रावक के आश्रित जो प्राणी है उनका निर्वाह करना उसका कर्त्तव्य है। यदि दूसरा कोई उनका निर्वाह करने को तैयार है, जिम्मेदारी ले रहा है तो वह स्वयं को फ्री कर सकता है।

40 हजार गायें आनंद श्रावक के पास थी। 60 हजार गायें कामदेव श्रावक के पास थी। वे उनके चारे-पानी की व्यवस्था करते थे। आज घर में एक गाय पालना मुश्किल हो गया। 40 हजार, 60 हजार गायों के लिए कितनी व्यवस्था चाहिए? कितने लोग वहाँ काम करने वाले होंगे? वहाँ काम करने वाले सभी सम्यक् दृष्टि थे क्या?

(श्रोता- सारे सम्यक् दृष्टि नहीं थे)

ऐसे आदमियों को काम देंगे तो पाप बढ़ेगा या घटेगा?

(एक श्रोता ने कहा- उनको रोजगार मिल जाएगा)

रोजगार देने की बात नहीं है। असल बात है पशुओं की रक्षा करना। पशुओं की रक्षा करने के लिए रखा, न कि रोजगार देने के लिए। पशु-रक्षार्थ इतने लोगों को काम मिल गया, ऐसा कह सकते हैं। कहीं-कहीं लोग बताते हैं कि आनंद श्रावक गायों को धोवन पानी पिलाता था। इतनी गायों के लिए धोवन पानी उपलब्ध हो जाएगा क्या? मान लो पानी उपलब्ध हो जाएगा, किंतु धोवन पानी कैसे बना लेगा। उसमें जीवों की घात होगी या नहीं होगी?

(श्रोता- उसमें जीवों की घात होगी)

यह अतिवाद है कि वे धोवन पानी पिलाते थे।

एक गाय दिनभर में कितना लीटर पानी पी लेती है?

(प्रकाश जी सुराणा ने कहा- तीन-चार बालटी पी लेती है)

लगभग 20-25 लीटर पानी दिनभर में एक गाय को चाहिए।

40 हजार गायों को कितना पानी चाहिए?

(प्रकाश जी सुराणा ने कहा- बारह लाख लीटर पानी चाहिए)

(एक श्रोता ने कहा- बारह लाख पचास हजार लीटर पानी चाहिए)

और कोई है बताने वाला?

अब नहीं बोलने में ही फायदा है। इतना पानी रोजाना खर्च हो रहा है।

इसको भगवान ने अर्थ हिंसा बताया, अनर्थ हिंसा नहीं। वह उनका दायित्त्व था। उनका कर्त्तव्य था। ऐसा नहीं कि थोड़ी ऊनोदरी करा दूँ। पच्चीस लीटर पानी पिलाने के स्थान पर बीस लीटर पानी ही पिलाऊं, पाँच लीटर की ऊनोदरी करा दूँ। ऐसा करना भी गलत होगा। जबरदस्ती किसी से तपस्या नहीं करायी जाती। समझा लो, वह समझ जाए तो आधा लोटा, आधा गिलास पानी कम हो जाएगा तो चलेगा, किंतु जबरदस्ती किसी को ऊनोदरी तप नहीं कराया जा सकता। वह ऊनोदरी तप कराना नहीं होगा। वह अंतराय देना होगा। भगवान ने कहा है कि तपस्या स्वेच्छा से होती है। स्वेच्छा से धर्म होता है। धर्म तत्त्व को समझें। आज भी बहुत-से लोग यह मानते हैं कि वेस्टेज नहीं होना चाहिए, पर वेस्टेज कितना हो जाता है उसकी कोई सीमा नहीं है, कोई गणित नहीं है।

मैंने पढ़ा था कि रूस में इतना झूठन छोड़ा जाता है कि रोज चार हजार लोग भोजन कर लें तो भी कम नहीं पड़ेगा। ज्यादा ही होगा। रोज चार हजार लोगों के भोजन करने लायक झूठन छोड़ा जाता है। क्यों छूटता है झूठन? कई लोग जूठा छोड़ना अपनी शान मानते हैं। सोचते हैं कि थाली को चाटकर खाएंगे तो लोग कहेंगे कि कैसा भुक्खड़ है, इसलिए थोड़ा जूठा छोड़ देते हैं। दुनिया क्या सोचती है, उसकी चिंता नहीं करनी। चिंता अपने धर्म की करनी है।

एक बात मेरे सुनने में आई। एक कंपनी में सर्विस के लिए इंटरव्यू जारी था। एक जैन भी गया इंटरव्यू देने। इंटरव्यू लेने वाले ने उसका नाम पूछा तो उसने नाम बताया। उसके नाम के पीछे जैन लगा था। इंटरव्यू लेने वाले ने उससे पूछ लिया कि तुम रात्रि में भोजन करते हो?

इंटरव्यू देने वाले ने कहा कि हाँ! करता हूँ साहब। यस सर।

इंटरव्यू लेने वाले ने उसे फेल कर दिया। कहा कि तुम अपने धर्म के प्रति वफादार नहीं हो, तो हमारी कंपनी के प्रति क्या वफादार होओगे! जब हम हमारे परिवार, धर्म, मजहब के लिए वफादार नहीं हो सकते, तो किसी दूसरे के लिए कितने वफादार हो सकते हैं! परिवार को एक बार जाने दो। जो व्यक्ति धर्म के लिए वफादार नहीं है, वह व्यक्ति दूसरों के लिए कितना वफादार होगा?

ये बातें खाली सुनने के लिए नहीं हैं। देखो अपने आपको कि हम धर्म के प्रति कितने वफादार हैं! एक गीत है-

**'धन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म ना जाए'**

किंतु आज हो गया है कि 'धर्म जाए तो जाए, मेरा धन कहीं नहीं जाए।' क्या बचना चाहिए?

धन बचना चाहिए या धर्म?

(श्रोता- धर्म बचना चाहिए)

आवाज तो बुलन्द है, पर ईमानदारी से बात करना, किसकी रक्षा करोगे?

(श्रोता- धर्म की रक्षा करेंगे)

धर्म की रक्षा तो दूर की बात है, पहले नैतिकता का पालन होना चाहिए। धर्म से पहले आती है नैतिकता। नीति। हम नैतिकता में कितने खरे उतर पाते हैं? हम नैतिकता में खरे नहीं उतर पाएंगे तो धर्म की रक्षा तो आगे की बात है। नैतिकता की रक्षा नहीं कर पाएंगे तो धर्म की रक्षा कहाँ से होगी। प्रतिक्रमण में बोलते हैं कि झूठा तौल-माप किया, झूठा लेख लिखा हो तो 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' किंतु अगले दिन लेखनी क्या लिखती है?

ध्यान देने की बात है कि नैतिकता धर्म की नींव है। नैतिकता के अभाव में धर्म की बिल्डिंग खड़ी नहीं होगी। इसलिए धर्म को समझना जरूरी है। केवल धर्म को समझ लिया तो बाकी चीजें स्वत: समझ में आ जाएंगी।

तनावमुक्त जीवन धर्म दे सकता है। दूसरे किसी में ताकत नहीं है। धर्म की सही आराधना करने पर कोई तनाव नहीं होगा। कोई टेंशन नहीं होगा। अधर्म और अनैतिकता तनाव का कारण है। गलत करने से तनाव होता है। सही करने से नहीं होता।

**'जो करना सो अच्छा करना, फिर दुनिया में किससे डरना'**

जो बुरा नहीं करेगा, उसे तनाव नहीं होगा, किंतु हम कहीं-न-कहीं गड़बड़ी कर देते हैं। वही गड़बड़ी जीवन में तनाव पैदा करने वाली होती है। धर्म सारी गड़बड़ियों से अलग रहने की बात करता है, इसलिए उसको उत्कृष्ट कहा गया है।

**'धम्मो मंगलमुक्कट्ठं...'**

धर्म मंगल है, उत्कृष्ट है। उत्कृष्ट यानी सबसे श्रेष्ठ। उससे बढ़कर और

कोई भी चीज श्रेष्ठ नहीं हो सकती।

हरिश्चंद्र राजा, सत्य धर्म की रक्षा के लिए बिक गए। उन्हें कहाँ काम करना पड़ा?

(श्रोताओं ने कहा- श्मशान में काम करना पड़ा)

चौकीदार बनकर श्मशान में खड़ा रहना पड़ा। सत्य के लिए एक सम्राट को श्मशान में खड़े रहकर चौकीदारी करनी पड़ी।

**सत्य के खातिर हरिश्चंद्र राजा, भंगी घर बिक जाए।**

मेरा सत्य धर्म न जाए।।

तन जाए तो जाए, किंतु सत्य धर्म नहीं जाना चाहिए। सत्य धर्म की रक्षा करने वाली बहुत सारी कहानियाँ मिलेंगी आपको। अर्हन्नक श्रावक समुद्र यात्रा कर रहे थे। देवता आकर उनसे कहता है कि तुम धर्म को छोड़ दो। अर्हन्नक कहता है कि धर्म है तो जहान है। बिना धर्म के जीना बेकार है। देवता ने गिनती गिनी एक... दो... तो दूसरे लोगों का दिल काँपने लगा। लोग डरने लगे कि तीन बोल दिया तो...

हमारे सामने कोई बंदूक तानकर खड़ा हो और एक-दो बोले तो...

हम तीन तो बोलने ही नहीं देंगे। कहेंगे कि रुको-रुको। इनकम टैक्स वालों की रेड पड़ जाए और कुछ काला कागज उनके हाथ में चला जाए तो कितने में सौदा होगा? कितने में सौदा होगा, मुझे नहीं मालूम। यह तो आप लोगों ने जाना होगा, मैं क्या जानूँ। करोड़ों रुपए लग जाते हैं। जैसा व्यापार, जैसे काले कागज उसके अनुसार सौदा होगा। जैसा माल होता है, वैसी ही कीमत होती है। अफसर जानते हैं कि यह कितने में राजी हो सकता है और लोग भी जानते हैं कि अफसर कितने में राजी हो सकता है। कुछ धन दलाल के पास जाएगा, कुछ अफसर के पास जाएगा।

यह सारा खेल धर्म की रक्षा के लिए होता है क्या? वहाँ पाँच, दस, पच्चीस करोड़ ही दिया जा रहा है। बच कितने करोड़ रहे हैं?

(श्रोता- 50-100 करोड़ बचे होंगे)

इतने करोड़ उनको दे रहे हैं, तो पीछे कितने करोड़ बचेंगे? यह नहीं कि पाँच करोड़ की गड़बड़ी की और पाँच करोड़ दे रहे हैं। पच्चीस करोड़ दे रहे हैं तो कितनी गड़बड़ी की होगी। किसको बचाने के लिए काम कर रहे हैं? धन

को बचाने के लिए काम कर रहे हैं या धर्म को बचाने के लिए? धर्म गया तो गया, धन बचना चाहिए। मरोगे तब छाती पर कितना धन जाएगा? एक फूटी थाली और कच्चा आटा साथ में जाएगा। रोटी भी सिंकी हुई नहीं जाएगी। यहाँ कच्ची रोटी खाएंगे तो कहेंगे कि पेट खराब हो जाएगा और वहाँ साथ क्या जा रहा है?

(श्रोताओं ने कहा– कच्चा आटा जा रहा है)

वह तो शरीर के साथ जा रहा है। आत्मा के साथ क्या गया?

(एक श्रोता ने कहा– पाप की पोटली साथ ले जा रहे हैं)

श्रावक है तो पाप की पोटली क्यों ले जाएगा? खैर, बताओ हमारे सीने पर क्या जाएगा? हमारे साथ क्या जाएगा?

(एक श्रोता ने कहा– खाली हाथ आए, खाली हाथ जाएंगे)

खाली हाथ नहीं आए, आए थे तब मुट्ठी बंद थी। मुट्ठी में पुण्यवानी लेकर आए थे। जाते हुए क्या ले जाएगा जाने वाले के ऊपर निर्भर है। जब आए तब मुट्ठी बंद थी।

सिकंदर ने अपना हाथ जनाजे से बाहर रखने की बात कही, ताकि लोगों को मालूम चले कि मैं कुछ भी साथ नहीं ले जा रहा हूँ। कितने लोग सीख पाए कि सिकंदर के पास इतना धन था, फिर भी साथ कुछ नहीं ले जा सका। सिकंदर के पास इतना धन था कि 17 हजार ऊँटों पर तो उनकी चाबियाँ रहती थीं। सोचो उसके पास कितना धन था, किंतु मरते समय वह खजाना काम नहीं आया। खजाना तो दूर, एक गिलास पानी भी नसीब नहीं हो पाया।

सोचने की आवश्यकता है कि हम किसलिए कर रहे हैं और क्या कर रहे हैं! धन हर जगह काम नहीं आता है। संसार में कारनामों से बचने के लिए पैसे खर्च करेंगे, किंतु नरक में चले गए तो वहाँ परमाधर्मी देव पैसों से राजी नहीं होंगे। आप पर विश्वास ही नहीं करेंगे। अत: धर्म के महात्म्य को समझें।

बंधुओ! धर्म बहुत ऊँची चीज है। बहुत उत्कृष्ट है। जिसने धर्म का दामन थाम लिया उसका बेड़ा पार है। धर्म के रास्ते पर चलने में कठिनाइयाँ आएंगी। कठिनाइयाँ तो वैसे भी आ रही हैं, किंतु धर्म उन कठिनाइयों को सहन करने की ताकत देगा। अभी कठिनाइयों के सामने हालत खस्ता हो जाती है। उन कठिनाइयों को झेलने की ताकत धर्म से मिलेगी। कितने भी कष्ट आ जाएं,

उनको झेलने की ताकत मिलेगी।

अर्हन्नक श्रावक से देवता कहता है, एक... दो...

पर अर्हन्नक सोचता है कि तिराएगा तो धर्म ही, अधर्म कभी नहीं तिरा सकता है। वह सोचता है कि मेरा जीवन चला जाए, किंतु मेरा धर्म नहीं जाना चाहिए।

इस पर देवता इतना खुश हुआ कि उसने वापस जहाज को समुद्र के तल पर रखा, हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कानों के कुण्डल भेंट किये। यह सब किसकी बदौलत हुआ? यह धर्म की बदौलत हुआ। देव, धर्म छोड़ने से राजी हुआ या धर्म पालने से राजी हुआ?

(श्रोता- धर्म पालने से राजी हुआ)

**'धर्मो रक्षति रक्षितः'**

जिसने धर्म की रक्षा की, धर्म उसकी रक्षा करेगा। उसको इधर-उधर देखने की आवश्यकता नहीं है। निश्चित रूप से धर्म उसकी रक्षा करेगा।

मोतीलाल जी सेठ को नवकार मंत्र पर बड़ा विश्वास था। नवकार मंत्र के जाप के बिना उनकी दिनचर्या प्रारंभ नहीं होती थी। वह खाली औपचारिकता नहीं निभाते थे, आस्था से नवकार मंत्र का जाप करते थे। सेठ जी एक बार बाहर व्यापार के लिए निकलने वाले थे, तब उन्होंने लोगों से कहा कि जो भी मेरे साथ चलना चाहे वह चल सकता है। उसको व्यापार करने की राशि मैं दूँगा। रास्ते का खर्चा मेरा रहेगा। व्यापार में लाभ होने पर दोगुना राशि दे देना, नहीं तो तुम्हारे पास जब हो तब दे देना। उसके लिए कोर्ट-कचहरी नहीं की जाएगी।

हमारा ईमान क्या कहता है? हमारा धर्म क्या कहता है? कितनी जगह साइन होना चाहिए? और साइन हो जाएगा तो क्या पक्का हो गया कि पैसे आ जाएंगे? उसने हाथ खड़े कर दिए फिर साइन आपके किस काम आएंगे? उसने पुलिस वालों से बोल दिया कि ये लोग मुझे परेशान कर रहे हैं, मैं आत्महत्या करूँगा तो क्या होगा...

पुलिस वाले कहेंगे, खबरदार, उसको परेशान किया तो... उसको कुछ कहा तो...

अब साइन किए हुए किस काम आएंगे! आदमी की नीयत बदल गई

तो साइन किस काम का! यदि अच्छे भावों से पैसे दिए गए हैं तो वापस आ जाएंगे। नीयत बदलेगी नहीं। यदि भाव यह है कि ब्याज लूँगा और दूसरों से ज्यादा लूँगा, आदमी को फँसाऊँगा तो कौन फँसेगा?

(एक श्रोता ने कहा– मूल भी वापस नहीं आएगा)

आप कितनी बातें जानते हैं। अब मैं आपको क्या बताऊँ!

खैर, यात्रा के दौरान बहुत सारे लोग मोतीलाल जी के साथ हो गए। यात्रा चल रही थी। एक तस्कर दल उनके पीछे पड़ गया कि इन्हें लूटना है, किंतु तस्करों को दिन में कुछ नजर नहीं आता और रात को देखते तो 35 लोग पुलिस वर्दी में वहाँ पहरा लगाते। एक दिन तस्करों के सरदार ने मोतीलाल जी से कहा कि मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि दिन में कुछ दिखता नहीं और रात में लोगों द्वारा सुरक्षा घेरा लगा रहता है, उनका घेरा चलता है। हम लोग पिछले कई दिनों से पीछा कर रहे हैं, किंतु उस घेरे में प्रवेश नहीं कर पा रहे हैं, क्या बात है?

मोतीलाल जी ने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं है। मैं तो भगवान का नाम लेकर, भगवान की शरण स्वीकार करके शांति से सो जाता हूँ।

बाद में स्पष्ट हुआ कि 34 व्यक्ति पूरे शरीर से होते थे पर एक व्यक्ति का धड़ रहता था, सिर नहीं। नवकार मंत्र में 35 अक्षर हैं। 34 अक्षर सही बोल रहे थे, किंतु एक अक्षर की बिंदी में गड़बड़ी हो गई इसलिए एक व्यक्ति का सिर नहीं था।

यह बात ज्यादा पुरानी नहीं है, कुछ वर्षों पहले की है। हमने पुरानी बातें बहुत सुनी। सेठ सुदर्शन के बारे में बहुत सुना। वर्तमान युग में भी ऐसे-ऐसे प्रसंग हुए हैं कि जहाँ व्यक्ति की अटूट आस्था धर्म पर रही है वहाँ उसका कुछ बिगड़ा नहीं है। धर्म अपने आप उसकी रक्षा करता है।

अधिकांश लोग पूरा भरोसा नहीं करते हैं? थोड़ा भरोसा करते हैं और चौकन्ना रहते हैं। चौकन्ना होने की आवश्यकता नहीं है। पूरा विश्वास करें। आधा विश्वास मत करें। धर्म की महिमा को पहचानें, धर्म के महात्म्य को समझें। धर्म छोटी-मोटी चीज नहीं है। हमारी चर्या धर्मरूपी बन जाएगी तो अपने आप ही सारी स्थितियां सही होती चली जाएंगी। यतना अपने आप आ जाएगी। अपने आप जीवों की रक्षा हो जाएगी। ये सारी बातें तब होंगी जब हमें

धर्म का सच्चा ज्ञान होगा। हम ज्ञान नहीं करेंगे तो जानना कैसे होगा। जानना नहीं होगा तो जीना कैसे होगा। जीने से पहले जानना बहुत जरूरी है। यदि हम जीना चाहते हैं तो दूसरों का हनन क्यों करें।

**'सव्वजीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं'**

सारे जीव जीना चाहते हैं। कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। इसलिए किसी जीव की घात नहीं करें। यह अलग बात है कि जीवन चलाने के लिए जीवों की घात करनी पड़ती है। खाना बनाना पड़ेगा तो जीवों की घात होगी, किंतु अनावश्यक रूप से जीव की घात करना अनर्थ हिंसा है। पाप है। हमें इस पाप से बचना है। पाप से जितना बचेंगे उतना ही आत्मविश्वास मजबूत होगा। आत्मविश्वास दृढ़ होता जाएगा। मजबूत आत्मविश्वास कष्टों को सहने की शक्ति देगा। यह होगा धर्म आराधना से।

आपने सेठ सुदर्शन के बारे में कई बार सुना कि उन्हें शूली पर चढ़ाया गया। शूली पर चढ़ाते समय उनके मन में कोई हलचल नहीं हुई। कोई टेंशन नहीं था। कोई तनाव नहीं। उन्हें धर्म पर भरोसा था। अंतिम समय में इष्टदेव का स्मरण कर वे शूली पर चढ़ने लगे कि–

**शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गयी ज्वाला।**
**शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला।। फेरो एक माला**

हालांकि गीत की पंक्ति में बोला गया है कि प्रभु की एक माला फेर लो, किंतु मेरा मत इससे भिन्न है। मैं तो कहूँगा कि प्रभु के नाम की एक माला मत फेरो। प्रभु श्वास–श्वास में उतर जाएं। प्रभु को कभी भूलें नहीं। कभी चितारें नहीं। नाम लेने की आवश्यकता नहीं है।

नेम जी नागौरी! आपकी पत्नी का क्या नाम है?

(नेम जी ने बताया– संपत बाई नाम है)

आप अपनी पत्नी का नाम लेते हैं?

पुराने लोग अपनी पत्नी का नाम नहीं लेते थे। पूछा इसलिए बोलना पड़ा। आज तो दर्शन करने आने पर पति, पत्नी का नाम बताएगा और पत्नी, पति का नाम बताएगी। पहले होता था कि रोएं–रोएं में नाम रम गया, अब क्या नाम लेना। मैंने अपने को पूरा समर्पित कर दिया, अब नाम लेने की

आवश्यकता नहीं है। मुझे देख लिया तो पत्नी को देख लिया और पत्नी को देख लिया तो मुझे देख लिया। इतना प्रगाढ़ विश्वास होता है तो नाम लेने की आवश्यकता नहीं होती। नाम भूलें तो लेना पड़ता है। जब नाम भूले ही नहीं तो क्यों लेना। प्रत्येक श्वास में भगवान का नाम चले। न तो कभी भगवान का नाम भूलें और न कभी चितारना पड़े कि अरे भगवान का नाम क्या था। हम एक माला फेरकर भगवान का भरोसा छोड़ देते हैं।

जैसे शरीर में खून चलता है, वैसे ही हमारे मन में, हमारे दिमाग में, हमारे मस्तिष्क में निरंतर भक्ति चलती रहनी चाहिए। हर वक्त भक्ति हो। उससे अलग कुछ नहीं हो। ऐसा भक्ति रूप बनेगा तो फिर अनुभव करेंगे धर्म की महिमा का, धर्म के महात्म्य का। हम धर्माराधना में इतनी दृढ़ता से लग जाएं कि कोई भी विपत्ति आ जाए, कोई भी कठिनाई आ जाए धर्म से पीछे नहीं हटेंगे। ऐसा लक्ष्य होगा तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

29 नवम्बर, 2022
भुपालपुरा

# 11

# अविद्या है दुःख का मूल

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...**

अविद्या जब तक प्राणी के साथ जुड़ी रहेगी, तब तक उसे दुःख होता रहेगा। अविद्या का अर्थ होता है अज्ञान। अज्ञान जिसके साथ जुड़ा रहेगा, उसे दुःख से छुटकारा होने वाला नहीं है।

यदि यह पता किया जाए कि संसार में कौन-कौन से दुःख हैं, तो क्या गिनती हो पाएगी?

(लोगों ने कहा- गिनती नहीं हो पाएगी)

एक, दो, पाँच, सात, आठ, दस... संख्या कहीं रुकेगी नहीं। बहुत सारे दुःख हैं।

भगवान ने दुःख को चार भागों में बाँटा; जन्म दुःख, जरा दुःख, रोग दुःख और मरण दुःख। इसके बीच में बहुत सारे दुःखों का अनुभव हम कर लेते हैं। उन दुःखों की गिनती कर पाना बहुत मुश्किल है। कोई संतान से दुःखी है तो कोई संतान नहीं होने से दुःखी है। किसी के पास धन है तो भी वह सुखी नहीं है और किसी के पास धन नहीं है तो वह दुःखी है। दुःख मन का एक संवेदन है। मन से प्रतिकूल कोई भी व्यवहार हमें दुःख का अनुभव कराता है।

हम चाहते हैं कि सारी स्थितियाँ हमारे मन के अनुकूल हों, किंतु यह संभव नहीं है। समुदाय में रहने पर सारी स्थितियाँ मन के अनुकूल नहीं होती, मन के विपरीत भी होती हैं। समुदाय चाहे परिवार के रूप में हो या मोहल्ले के रूप में या संघ ही क्यों न हो, इन सभी जगहों पर एक-दूसरे से संबंध जुड़ा रहता है। जब एक-दूसरे से संबंध जुड़ा रहता है तो यह स्पष्ट है कि सारी बातें अपने ही मन के अनुकूल होना संभव नहीं है।

दु:ख दूसरों से ज्यादा नहीं होता, निकटवर्ती लोगों से ज्यादा होता है। ज्यादा निकट वालों से ज्यादा दु:ख पैदा होता है। अपरिचित लोगों से ज्यादा दु:ख पैदा नहीं होता। पारिवारिक सदस्य, रिश्तेदार थोड़ा भी विपरीत होंगे तो हम दु:खी हो जाएंगे। इसका कारण उनसे हमारी अपेक्षाएं भिन्न थीं।

हमारे सबसे नजदीक कौन है?

(श्रोताओं ने कहा– सबसे नजदीक परिवार वाले हैं)

यह भी एक दृष्टि है। थोड़ा इससे हटकर बात करते हैं तो उनसे भी नजदीक हमारा शरीर है। हमारा शरीर सबसे नजदीक है। यह शरीर हमें दु:खी बनाने वाला है। शरीर दु:खी कैसे बनाता है? जन्म शरीर लेता है या कोई और?

(श्रोताओं ने कहा– जन्म शरीर लेता है)

मरता कौन है? बुढ़ापा किसको आता है? और रोग किसको पैदा होता है?

(श्रोताओं ने कहा– शरीर को होता है)

सबसे ज्यादा दु:ख देने वाला शरीर है।

हम पोषण किसका कर रहे हैं? हम सुख का पोषण कर रहे हैं या दु:ख का?

(श्रोताओं ने कहा– हम दु:ख का पोषण कर रहे हैं)

हम कौन–सा बीज बो रहे हैं और किस बीज का सिंचन कर रहे हैं?

दु:ख का बीज बो कर यह चाहें कि हमें दु:ख न हो, तो यह संभव नहीं है। एक बात और हम चर्चा में लें कि शरीर के रहते हुए कोई सुखी हो सकता है या नहीं?

(श्रोताओं ने कहा– शरीर के रहते सुखी हो सकते हैं)

(एक श्रोता ने कहा– आत्मा अलग है और शरीर अलग है)

महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी के लिए एक विशेषण का प्रयोग किया 'उच्छूढसरीरे' अर्थात् जिन्होंने शरीर को एक प्रकार से छोड़ दिया। शरीर छोड़ने का मतलब तो मृत्यु है किंतु यहाँ दूसरा अर्थ है। यहाँ अर्थ है– शरीर का ममत्व छोड़ देना। इसका मतलब है शरीर की पोषण वृत्ति को प्रमुखता नहीं देना। शरीर की साज–संभाल नहीं करना। आत्मा की साज–संभाल करना। आत्मा की साज–संभाल करते हुए जहाँ आवश्यकता पड़े वहाँ शरीर को

सहयोग देना, किंतु शरीर मुख्य नहीं हुआ।

देव, ब्राह्मण का रूप धारण करता है। वह एक टोकरी जूते-चप्पलों से भरकर सनत्कुमार चक्रवर्ती के वहाँ पहुँच जाता है। इसका कारण था देवलोक में हुई चर्चा कि सनत्कुमार चक्रवर्ती का सौंदर्य अद्‌भुत है। देव का विचार हुआ कि देवों की सभा में मनुष्य के सौंदर्य की चर्चा, कुछ अच्छी नहीं लगी। उसको ऐसा लग रहा था कि देवता के सौंदर्य की तुलना में मनुष्य के सौन्दर्य की क्या बिसात!

देवलोक में एक मनुष्य के सौंदर्य की चर्चा हो रही थी। देव ने सोचा कि मैं पहले उसके सौंदर्य को देख लूँ, उसके बाद कुछ निर्णय करूँगा। उसने ब्राह्मण का रूप धारण किया और पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने कहा कि मुझे सनत्कुमार चक्रवर्ती का दर्शन करना है। पहरेदारों ने कहा, अभी वे व्यायाम-स्नान वगैरह में लगे हुए हैं, अभी दर्शन नहीं हो पाएगा।

ब्राह्मण रूप धारण किए देव ने कहा कि मुझे तीव्र प्यास लगी हुई है। मैं पहले उनको देखना चाहता हूँ। उसने पहरेदारों को अपने साथ के जूते-चप्पल दिखाते हुए कहा कि इतने जूते-चप्पल मेरे घिस गए। मैंने संकल्प किया है कि जब तक उनके दर्शन नहीं करूँगा तब तक अन्न-जल नहीं लूंगा। इसलिए मुझे उनके दर्शन करने हैं। देर करने से मेरी मौत नहीं हो जाए। मेरी मौत होने से ब्राह्मण की हत्या का कलंक तुम पर लगेगा।

यह सुनकर पहरेदार अंदर गया और इस बात से सम्राट को अवगत कराया।

सम्राट ने कहा, अंदर आने दो।

देव भीतर गया तो देखा कि सनत्कुमार चक्रवर्ती अद्‌भुत सौंदर्य का स्वामी है। वे व्यायाम वगैरह में लगे हुए थे। शरीर पर विशेष आभूषणों का संयोग नहीं था फिर भी उनका सौंदर्य टपक रहा था। सौंदर्य को देखकर देव ने कहा, कानों से जितना सुना, आँखों ने उससे ज्यादा पाया। उसने कहा कि ऐसा रूप देखकर मैं तृप्त हो गया। उसे आश्चर्य हुआ कि ऐसा रूप लावण्य मनुष्य का भी होता है।

ब्राह्मण की बात सुनकर सम्राट ने कहा कि अभी क्या देखा, जब मैं सज-धज कर दरबार में आऊँ, सभा में आऊँ उस समय मेरा सौंदर्य-रूप

देखना।

ब्राह्मण सभा में भी गया, किंतु वहाँ सम्राट को देखकर माथा हिलाने लगा।

सम्राट ने कहा, क्या हुआ?

ब्राह्मण ने कहा, राजन जो पहले था, वह अब नहीं है।

इसका सार क्या है कि जो पहले था अब नहीं है? इसका रहस्य क्या है?

सौंदर्य प्राकृतिक होता है और सजावट नकली होती है। सौंदर्य स्वयं निखरता है। सजावट को निखारा जाता है। सजावट बनावटी होती है। हम लोग सजावट पर ज्यादा विश्वास करते हैं। यदि सजावट पर हमारा विश्वास नहीं होता तो हम दर्पण के सामने नहीं जाते। कौन-कौन व्यक्ति दर्पण के सामने नहीं जाते?

साधु के लिए तो भगवान महावीर ने निषेध किया कि उसे अपनी आकृति दर्पण में नहीं देखनी, क्योंकि देखने से मन क्षुब्ध हो सकता है। साधु स्नान नहीं करता। स्नान नहीं करने से, सरदी-गरमी में उसका चेहरा काला-कलूटा हो सकता है। ऐसे में चेहरा देखकर उसके मन में आ सकता है कि दीक्षा ली, तब चेहरा क्या था और अब कैसा हो गया। उसका मन खिन्न हो सकता है। साधु को खिन्न नहीं होना चाहिए। और शरीर के प्रति ममत्व का भाव भी क्यों रखना? यदि उसके मन में शरीर के प्रति ममत्व भाव आ गया तो उसकी दिशा उलटी हो गई। आत्मा के सौंदर्य को निखारना है या शरीर के सौंदर्य को?

भगवान ने स्पष्ट रूप से कहा है कि साधु को दर्पण में मुँह नहीं देखना। न दर्पण में देखना, न पानी में। उसे पानी में भी अपनी आकृति नहीं देखनी है। वर्तमान में बहुत-सी टाइल्स में भी छाया दिखती है। वहाँ पर भी अपनी आकृति देखने का लक्ष्य नहीं होना चाहिए।

आकृति देखने का मतलब है कौतूहल जगना। कौतूहल जगना यानी आत्मभाव से अलग होना। साधु के लिए सजावट करना मना है। शरीर की सजावट नहीं करना है। शरीर की सजावट करने से क्या होगा। सजाना है तो आत्मा को सजाना। आत्मा किससे सजेगी? आत्मा, ज्ञान से सजेगी। सजावट चारित्र की निर्मलता से होगी। चारित्र की निर्मलता कुदरती है। आत्मा की

सजावट के लिए बाहर के पदार्थों की आवश्यकता नहीं होगी।

खैर, वापस आते हैं सनत्कुमार की बात पर। सनत्कुमार ब्राह्मण से कहने लगा कि अब क्या हो गया?

ब्राह्मण ने कहा, अब वह सुन्दरता नहीं रही।

सम्राट ने कहा, क्यों? क्या हो गया?

ब्राह्मण ने कहा, राजन अब आपके शरीर में 16 महारोग पैदा हो गए।

एक रोग भी परेशान करता है फिर 16-16 महारोग का नाम सुनकर क्या हालत होगी?

16 महारोग की बात सुनकर सम्राट सावधान हो गए। उन्होंने संबंधित लोगों से कहा कि अब मुझे शरीर की साज-संभाल नहीं करनी। अब मुझे आत्मा की साज-संभाल के लिए साधु बनना है।

मंत्रियों, दीवानों और सामंतों ने कहा, राजन! आप रोग के कारण विचलित न हों। हमारे बड़े-बड़े चिकित्सक इन सारे रोगों का नाश कर देंगे। इन रोगों को खत्म कर देंगे और शरीर स्वस्थ हो जाएगा।

हो सकता है कि डॉक्टर उन बीमारियों को दूर कर दें, किंतु सम्राट ने कहा कि मुझे अब शरीर की सुरक्षा नहीं करनी। मैंने देख लिया, समझ लिया। इसके लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया। सनत्कुमार कहता है कि मैंने शरीर के लिए क्या नहीं किया। यही प्रश्न हमारे लिए भी है कि हमने शरीर के लिए क्या नहीं किया? शरीर के पोषण के लिए हमारा कितना समय जाता है? अभी तो प्राय: सारा समय शरीर के पोषण के लिए जाता है। धर्म क्रिया थोड़ी कर लेते हैं, बाकी धन कमाने के लिए समय जाता है। धन कमाने के लिए व अपनी सुविधाओं के लिए समय जाता है। लोगों को लगता है कि धन कमा लूंगा तो सुख से जीऊंगा। इसलिए हमारा अधिकांश समय धन और तन के लिए जा रहा है। आखिर में यह शरीर धोखा देगा या नहीं देगा?

(श्रोताओं ने कहा- धोखा देगा)

शरीर बोलकर जाएगा या बिना बोले? यह सूचना देगा क्या कि मैं अमुक तारीख को जाने वाला हूँ। एक मकान मालिक भी किराएदार से मकान खाली कराना चाहता है तो पहले नोटिस देता है कि मुझे इतनी तारीख को मकान की जरूरत है। वह एक या दो महीने पहले ही बता देता है।

(एक श्रोता ने कहा– तीन महीने पहले बताता है)

एक महीना या तीन महीना जो भी हो वह पहले बता देता है, किंतु शरीर हमें पहले सूचना देने वाला नहीं है। सनत्कुमार चक्रवर्ती सावधान हो गए और उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि अब मैं शरीर की कोई सुरक्षा नहीं करूँगा। चिकित्सा नहीं करूँगा। वे साधु बन गए। 16–16 महारोग हुए, किंतु कोई चिकित्सा नहीं कराई। यदि खुजली करें तो खुजली करते–करते खून निकल जाए, किंतु उन्होंने कभी खुजाल नहीं की।

आपका हाथ वश में रह जाएगा क्या? थोड़ी भी खुजली चालू हो जाए तो हाथ झट उठ जाएगा। आज एक प्रयोग करते हैं कि कहीं पर भी खुजली नहीं करनी है। माथे की खुजली मिट जाती है ज्ञान–चर्चा करने से और शरीर की खुजली के लिए प्रयोग करके देखो कि कितनी सहनशीलता रख पाते हैं।

सनत्कुमार ने मुनि बनने के पश्चात् जीवनपर्यन्त खुजली नहीं की। भगवान महावीर ने कभी खुजली नहीं की। सनत्कुमार प्रतिज्ञाशील हो गए।

कुछ समय बाद देव रूप बदलकर सनत्कुमार मुनि के पास आकर कहता है कि हम आपकी चिकित्सा करना चाहते हैं ताकि आपका रोग ठीक हो जाए।

सम्राट ने कहा, भाई! शरीर की चिकित्सा करोगे या आत्मा की? देव ने कहा– शरीर की। मुनि ने कहा कि शरीर का रोग ठीक करवाने के लिए मुझे चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। यह मुझे जगाने वाला है। यह जागृत करने वाला है। मैं इसकी चिकित्सा नहीं करवाऊँगा। यदि तुम आत्मा की चिकित्सा कर सकते हो तो कर लो।

देव ने कहा, आत्मा की चिकित्सा करने की शक्ति मेरे पास नहीं है।

आप विचार करो कि जहाँ एक रोग आदमी को दु:खी बना देता है वहीं सम्राट को 16–16 महारोग पैदा हुए, किंतु वे दु:खी नहीं हुए। वे बड़े सुख में जी रहे हैं। वह सुख कहाँ से आया?

(एक श्रोता ने कहा– वह सुख आत्मा से आया)

हमारे में आत्मा नहीं है क्या?

हमारे भीतर भी आत्मा है फिर हम सुखी क्यों नहीं हैं? क्यों दु:खी बने

हुए हैं?

हम दुःखी बने हैं अपने विचारों से। हमारे विचार हमें दुःखी बनाते हैं, क्योंकि हम चाहते हैं कि हमें सारी स्थितियाँ अनुकूल मिल जाएं।

सारी स्थितियाँ अनुकूल मिल जाएंगी तो क्या सुख मिल जाएगा?

(श्रोताओं ने कहा– नहीं मिल पाएगा)

क्यों नहीं मिल पाएगा?

क्योंकि हमारे भीतर तृष्णा है। जब तक हमारे भीतर तृष्णा बनी रहेगी, तब तक हम सुखी नहीं हो पाएंगे। सुखी बनना है तो अपनी संवेदना हटानी होगी। संवेदना को हटाने का मतलब है यह चिंता छोड़ देना कि मेरे शरीर में क्या होगा। ऐसी चिंता करेंगे तो दुःख पैदा होगा। परिवार की चिंता करेंगे तो दुःख पैदा होगा।

अब प्रश्न उठता है कि क्या परिवार की चिंता नहीं करनी चाहिए? ऐसी स्थिति में परिवार के प्रति कर्त्तव्य का निर्वाह कैसे होगा?

कर्त्तव्य का निर्वाह करना अलग बात है और चिंता करना अलग है। कर्त्तव्य का निर्वाह करने वाले सारे लोग दुःखी नहीं होते हैं। कर्त्तव्य का निर्वाह करते समय दुःखी नहीं होना है, बल्कि प्रयत्न करना है। जितना वश चले उतना प्रयत्न करना है। इसके बावजूद किसी का रोग ठीक नहीं होता तो दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है।

आज तो दूसरों को दुःख नहीं दिखाएंगे तो लोग कहेंगे कि इसमें संवेदना ही नहीं है। दुःखी आदमी के पास जाकर दुःखी बनना पड़ता है। कोई मर गया तो वहाँ जाकर क्या करेंगे?

जाकर कहेंगे कि हमने सुना, सुनते ही विचार किया। इसका मतलब है कि उसको दिखा रहे हैं कि हमें भी दुःख हो रहा है। सच में दुःख हो या नहीं, किंतु दिखाएंगे कि हम तुम्हारे साथ हैं। ध्यान रहे, व्यक्ति अपनी मौत से मरा है। मृत्यु आने पर हर कोई मरेगा। मृत्यु से बचाने वाली शक्ति संसार में नहीं है। ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो मौत से बचा सके। अन्य किसी से बचा जा सकता है, किंतु मौत से नहीं बचा जा सकता। किसी के इतने बड़े हाथ नहीं हैं कि वह मौत से बचा ले।

कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा पुत्र से कहा था– मौत से बचाने का मेरे

पास कोई भी रास्ता नहीं है।

इससे बात स्पष्ट हो गयी। चाहे राजा हो, चक्रवर्ती हो, वासुदेव हो या बलदेव, मौत से बचाने की क्षमता किसी के पास नहीं है। तीर्थंकर भगवान भी मौत से बचा नहीं पाए।

भगवान महावीर के पास आकर इन्द्र निवेदन करता है कि भगवन्! आपकी जन्म राशि पर भस्म ग्रह लगा हुआ है, इसलिए मृत्यु का समय थोड़ा-सा आगे बढ़ा दीजिए।

भगवान कहते हैं, शक्र! तुम्हारी भावना शासनहित की है, धर्महित की है, किंतु किसी भी तीर्थंकर में यह ताकत नहीं है कि वह अपनी आयुष्य के दलिकों को बढ़ा ले। भगवान ने कहा कि मौत जिस समय आनी है वह आएगी। उसको टाला नहीं जा सकता। उसको टालने की ताकत किसी भी तीर्थंकर में नहीं। न भूतकाल में थी, न वर्तमान में है और न भविष्य में होगी। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि मृत्यु को टाल पाना किसी के वश की बात नहीं है।

पुन: आते हैं सनत्कुमार चक्रवर्ती की बात पर। वह कहते हैं कि आत्मा का इलाज हो तो बोलो।

देव ने कहा- आत्मा का इलाज मेरे पास नहीं है।

मुनि सनत्कुमार ने कहा कि मुझे आत्मा का इलाज करवाना है, शरीर का नहीं।

शरीर के प्रति ममत्व हटने से तो हम सुखी हो जाएंगे। मैंने एक बात पहले कही कि सबसे ज्यादा दु:खी करने वाला शरीर है। जैसे ही शरीर के ममत्व को हटा लिया जाएगा, वैसे ही दु:ख नहीं सता पाएगा। शरीर के प्रति जिसका ममत्व हट गया, सारी दुनिया से उसका ममत्व हट जाएगा। शरीर से ममत्व हटाना बहुत कठिन है। हम सबसे पहले अपने शरीर का बचाव करने का प्रयत्न करते हैं।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि किसी के घर में आग लग जाए, तो व्यक्ति किसको बचाना चाहेगा?

कोई कह सकता है कि सोना, चाँदी, रत्न को बचाना चाहेगा। कोई कह सकता है कि परिवार के सदस्यों को बचाने की कोशिश करेगा, किंतु जब

उसे लगेगा कि खुद बचना मुश्किल है तब वह स्वयं को बचाने की कोशिश करेगा। भले ही सारा परिवार जल रहा हो, किंतु वह पहले स्वयं को बचाना चाहेगा।

द्वारिका नगरी का विनाश किससे हुआ?

द्वैपायन ऋषि ने द्वारिका नगरी को आग लगा दी। वासुदेव-बलदेव बहुत ताकतवर थे, उन्होंने लोगों को बचाने का खूब प्रयत्न किया, किंतु वे किसी को भी बाहर नहीं निकाल पाए। क्या काम आई उनकी ताकत?

आपने पहले सुना कि गौतम स्वामी को 'उच्छूढसरीरे' कहा गया, क्योंकि उन्होंने शरीर की साज-संभाल करना त्याग दिया। शरीर के प्रति एक प्रकार से निश्चिंत हो गए कि अब मुझे शरीर की चिंता नहीं करनी।

जैसे ही शरीर की चिंता हटेगी, वैसे ही सारा ध्यान आत्मा पर केंद्रित हो जाएगा। आत्मा पर सारा ध्यान केंद्रित होते ही सारी चर्या अपने आप सुधर जाएगी। फिर दु:ख नहीं होगा। हर पल हम सुखी रहेंगे। अहोभाव में रहेंगे क्योंकि दु:ख दूर हो जाएगा। आत्मरमण में रहेंगे। आत्मरमण में दु:ख नहीं होगा, क्योंकि वह अपना भाव है। उसे न कोई दे सकता है न ले सकता है।

आदमी बाहर के पदार्थों में स्वार्थ ढूँढता है। शरीर की सुरक्षा के लिए स्वार्थ का विचार करता है। स्वार्थ नहीं होता तो संसार इतना बढ़ता नहीं। आज वैज्ञानिक लोग शोध कर रहे हैं। मनुष्य को साता पहुँचाने के लिए नई-नई शोध करते हैं। मनुष्य को सुख पहुँचाने के लिए प्रयत्न करते हैं, किंतु सुविधाओं ने दु:ख पैदा किया या सुख?

(श्रोताओं ने कहा-दु:ख पैदा किया)

आपको अनुभव हो तो बोलना। खाली मेरे प्रश्न का उत्तर मत देना। लोग ए.सी. में बैठते हैं तो सुखी होते हैं या दु:खी होते हैं?

(श्रोताओं ने कहा-दु:खी होते हैं)

यदि सुख नहीं है तो ए.सी. क्यों ऑन करनी, ए.सी. में क्यों बैठना?

**'कहनो घणो सोहिलो जी, करनो घणो दोहिलो जी'**

कहना बहुत आसान है। कहने वाले बहुत हैं, किंतु वे क्रियान्वित कर रहे हैं क्या? यदि हम समझ लेंगे कि सचमुच में इसमें सुख नहीं है तो उसका उपयोग नहीं करेंगे। यह निश्चित है कि जो ज्यादा ए.सी. का उपयोग करता है,

उसके शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, जिससे सरदी-गरमी जन्य कठिनाइयों को झेलना उसके लिए कठिन हो जाता है। इस सच्चाई को बहुत-से लोग जानते हैं, फिर भी वे बदलते नहीं हैं। सच्चाई जानते हुए भी आदमी सुविधा को छोड़ नहीं पाता। सुविधाभोगी, सुविधा मिलते उनका भोग करना चाहता है। शराबी, शराब का नशा उतरने पर सोचता है कि अब से नहीं पीऊँगा। वह सोचता है कि शराब बहुत बुरी चीज है, किंतु शराब की दुकान के सामने से निकलते ही उसके कदम रुक जाते हैं या बढ़ जाते हैं?

(श्रोताओं ने कहा- रुक जाते हैं)

रुक नहीं जाते, शराब की दुकान की तरफ बढ़ जाते हैं। वह सोचता है कि चलो एक बार ले लेता हूँ। एक बार का कभी अंत नहीं होता। वैसे ही हम सुविधाभोगी बन चुके हैं। हम सुविधा का भोग करने में पीछे नहीं रहते। जितनी सुविधा हमने ली है उतनी ही दुविधा अपने गले लगाई है।

एक महात्मा के पास एक भक्त पहुँचा और उनके चरण पकड़ लिया।

महात्मा ने कहा, क्या बात है, तो वह रोने लगा। महात्मा ने कहा, तुम रो क्यों रहे हो? बात बताओ।

उसने कहा, महात्मा जी मेरे पास सुविधा नहीं है। दुविधा मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ी रहती है। मुझे इस दुविधा से बचा लीजिए।

गंभीर होकर महात्मा जी ने कहा कि दुविधा तुम्हारे पीछे क्यों पड़ गई?

उसने कहा, मुझे पता नहीं, किंतु वह मेरा पीछा नहीं छोड़ती। उसने कहा कि इससे पीछा छुड़ाने के लिए आप जो कहोगे, मैं करने के लिए तैयार हूँ।

आपकी कितनी तैयारी है, दुविधा से बचने के लिए

वह त्याग करने के लिए तैयार हो गया। आप कह दोगे कि म.सा. आप कह रहे हो इसलिए कह देता हूँ किंतु तैयारी तो नहीं है। खाली चेक पर साइन कराना बहुत मुश्किल है। कोई कहे कि खाली चेक पर हस्ताक्षर कर दो तो कर दोगे क्या? भरे चेक पर कोई हस्ताक्षर कराए तो आप कर दोगे यदि वह आपके मनोनुकूल हो तो किंतु खाली चेक पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार नहीं होंगे। सादे स्टाम्प पेपर पर हस्ताक्षर करने को कोई कहे तो नहीं करेंगे।

आपका बेटा यदि स्टाम्प पेपर पर हस्ताक्षर करने को कहेगा, तो क्या उस पर भरोसा कर लोगे?

आप कहोगे कि इस पर पहले कुछ लिखो फिर हस्ताक्षर करना होगा तो करेंगे। आपके हस्ताक्षर करने लायक लिखा हुआ होगा तो करेंगे, नहीं तो नहीं करेंगे। जैसे खाली कागज पर हस्ताक्षर नहीं किया जा सकता, वैसे ही जब तक दुविधा को छोड़ने के लिए क्या करना होगा जान न लें, तब तक कैसे बताएं कि हम तैयार हैं। आपको यह भी भय है कि कहीं हमने अपनी तैयारी दर्शा दी तो आप हमें दीक्षा के लिए न कह दें।

महात्मा जी उस भक्त से कहते हैं कि मैं जैसा कहूँगा वैसा करोगे क्या?

वह कहता है कि आप जो कहोगे मैं करने के लिए तैयार हूँ।

महात्मा जी कहते हैं कि मैं एक त्याग कराऊँगा, है मंजूर!

वह कहता है– मैं तैयार हूँ।

महात्मा कहते हैं– सुविधा की चाह छोड़ दे, सुविधा की इच्छा छोड़ दे। सुविधा की चाह नहीं करना, क्योंकि वह आदमी को दु:खी बनाती है। चाह पूरी नहीं होती है तो दुविधा खड़ी हो जाती है। सुविधा की चाह होगी तो दुविधा लगेगी, दु:ख पैदा होगा। सहज भाव से जो मिला उसका उपयोग कर लिया, यह बात अलग है। नहीं मिला तो कोई चिंता नहीं।

इस प्रकार का यदि हम मानस बना लेंगे तो दुविधाओं से बच जाएंगे। दु:ख से बच जाएंगे। दु:ख से बचने का पहला सूत्र है– हमारा शरीर ही दु:ख की जड़ है। मूल है। शरीर के ममत्व का त्याग किया जाए। ऐसा होते ही सुविधा की चाह पैदा नहीं होगी।

पहले उदयपुर में टेम्परेचर कितना होता था और अब कितना हो जाता है?

(एक श्रोता ने कहा– अब उदयपुर का टेम्परेचर 47–48 हो जाता है)

आज से पचास वर्ष पहले कितना था?

(एक श्रोता ने कहा– 40 से ऊपर नहीं जाता था)

अब 47 तक क्यों जाने लगा? यह दुविधा कैसे पैदा हुई? यह दुविधा किसने पैदा की?

यह दुविधा हमने स्वयं पैदा की। हम कहते हैं कि गरमी सहन नहीं होती। सरदी सहन नहीं होती। यदि सारी ए.सी. हट जाए तो यह बिगाड़ होता

क्या? यह बिगाड़ किसने किया?

(श्रोताओं ने कहा– यह बिगाड़ हमने स्वयं किया)

यह बिगाड़ गाय–भैंस ने किया क्या? पशुओं ने यह बिगाड़ किया क्या? पर्यावरण का बिगाड़ किसने किया? पर्यावरण दूषित किसने किया?

(श्रोताओं ने कहा– हमने किया)

हम सुख की खोज में जा रहे हैं। नए–नए आविष्कारों को अपनाते जा रहे हैं, किंतु उसके दुष्परिणाम को नहीं देख रहे हैं। आज वैज्ञानिक चिन्तित हैं कि ओजोन परत में छेद होने से मनुष्य का जीवन असुरक्षित हो रहा है।

भगवान महावीर की बात याद है? छठा आरा लगेगा तो क्या होगा? टेम्परेचर बढ़ेगा या घटेगा? टेम्परेचर इतना बढ़ेगा कि सहन करना मुश्किल हो जाएगा। हम उसी दिशा में जा रहे हैं। हमारा कर्तृत्व उस अवस्था को लाने वाला बन रहा है। छठे आरे को लाने वाला है। हमारा कर्तृत्व हमें सुख की ओर नहीं, दुःख की ओर ले जा रहा है।

क्या हम वापस होंगे? बैक होंगे? बैक होने के लिए हमारा मन बोल रहा है क्या? वापस होना बहुत कठिन है। आगे बढ़े कदम को वापस लौटाना मुश्किल हो जाता है, इसलिए सोच–समझकर हम अपने कदम आगे बढाएं।

बात शुरू हुई थी अविद्या से। उस अविद्या की वजह से हम जानते हुए भी गलत आदतों को नहीं छोड़ पाते। हम जानते हैं कि आग में हाथ डालेंगे तो जलेगा, फिर भी हाथ डाल रहे हैं तो यह अविद्या है। हम मोह–ममत्व का जितना त्याग करेंगे उतना ही सुखी होंगे। मोह–ममत्व जितना बढ़ेगा, उतना ही हमें दुःखी करेगा। उतना ही हमारा दुःख बढ़ता जाएगा। 'सव्वे ते दुक्ख संभवा' यानी सारे दुःख संभव हैं। एक भी ऐसा दुःख नहीं है जो पैदा नहीं हो। दुःख से बचने के लिए एक ही लक्ष्य बनाएं। अपना लक्ष्य आत्मा की ओर केंद्रित करें। लक्ष्य आत्मा की ओर केंद्रित करेंगे तो दुःख मुक्त बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

30 नवम्बर, 2022
भुपालपुरा

# 12

# अजेय बनने की साधना

**धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।**
**देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।**

जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं। धर्म में मन लगने के लिए पहले उसकी पहचान होनी चाहिए। यह समझ होनी चाहिए कि धर्म हमारे जीवन के लिए आधारभूत है।

अजितनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है कि

**'पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिणतणो रे...'**

भगवान गुणों के धाम हैं, गुणों के भण्डार हैं। भण्डार कहने से स्पष्ट है कि दो-चार गुण ही नहीं हैं। भण्डार में कोई भी चीज कम संख्या या कम मात्रा में नहीं होती। बहुत सारे रत्न जहाँ संगृहीत होते हैं, उसे भण्डार कहते हैं। अजितनाथ भगवान को गुणों का धाम बताया गया है।

प्रश्न है कि उन गुणों की प्राप्ति का हेतु क्या बना?

इसका उत्तर है- धर्माराधना करने से सारे गुण निष्पन्न हो जाते हैं। यतना को धर्म की जननी बताया गया है। यतना होगी तो धर्म पैदा होगा। यतना का अर्थ है छहकाय जीवों की विराधना नहीं होना। संभलकर चलना। सावधान होकर चलना। एक-एक कदम संशयशील होते हुए चलना।

यहाँ संशयशील होने का मतलब है सावधान होकर चलना। ऐसा चलना कि कदम रखने पर किसी जीव की विराधना नहीं हो। केवल चलने की ही बात नहीं है। चाहे चलें या बैठे रहें, किसी जीव की विराधना नहीं हो। किसी भी क्रिया से किसी भी जीव की विराधना नहीं हो। मन और वचन भी जीव को पीड़ित करने वाला नहीं हो। यह होगी यतना। जीवन में यतना आएगी तो धर्म का

अंकुरण होगा। धर्म की पैदाइश होगी। धर्म विकसित होगा। धर्म से आत्मविश्वास बढ़ता है। जीवन में आत्मविश्वास बहुत मायने रखता है। आत्मविश्वास हो तो व्यक्ति हर जगह विजय प्राप्त करता है। आत्मविश्वास की कमी हो जाए तो सफलता के सिंह द्वार को प्राप्त नहीं कर पाएगा।

एकलव्य, द्रोणाचार्य के पास पहुँचा। वह चाहता था कि मैं धनुर्धर बनूं। वह चाहता था कि द्रोणाचार्य मुझे धनुर्विद्या सिखाएं, किंतु द्रोणाचार्य हर किसी को धनुर्विद्या सिखाना उचित नहीं समझते थे। वे मानते थे कि मेरे विद्यार्थी राजकुमार, बड़े-बड़े सेठ, साहूकार रहें। हर किसी को विद्यार्थी बनाने का उनका विचार नहीं था। उन्होंने एकलव्य को दुत्कारते हुए कहा कि मैं तुम्हें नहीं सिखा सकता। द्रोणाचार्य ने भले ही सिखाने से मना कर दिया, किंतु आत्मविश्वास की बदौलत एकलव्य ने दिखा दिया कि धनुर्विद्या क्या होती है। बताया गया है कि वह अर्जुन से भी बढ़कर धनुर्विद्या में पारंगत हो गया।

किसके बल पर हुआ?

मनोबल के बल पर हुआ। आत्मविश्वास के बल पर हुआ। आत्मविश्वास के बल पर सफलता प्राप्त होती है।

पाणिनि ने संस्कृत में व्याकरण की रचना की। उसके पहले वे निरे बुद्धू थे। ऐसा उनके जीवन वृत्त में बताया गया है। एक बार एक शिक्षक ने उनसे कहा कि बेटा, व्याकरण पढ़ना, संस्कृत पढ़ना, तुम्हारे वश की बात नहीं है। तुम घर जाओ और ढोर चराओ। यही तुम्हारे लिए ठीक रहेगा, उचित रहेगा।

पाणिनि ने कहा, गुरु जी ऐसा क्यों?

शिक्षक ने कहा, बेटा तुम्हारे हाथ में विद्या की रेखा नहीं है।

पाणिनि, विद्या की रेखा कहाँ पर होती है?

गुरु महाराज (आचार्य श्री नानालाल जी म.सा.) फरमाया करते थे कि ''मनुष्य में हाथ की रेखा बदलने की ताकत है।'' यदि कोई यह सोचकर पुरुषार्थ नहीं करे कि 'म्हारे तो हाथ में पढ़ाई री रेखा ही कोनी' और उदास होकर बैठ जाए, तो विद्या की रेखा कभी पैदा नहीं होगी।

गुरु ने हाथ दिखाते हुए बताया कि अमुक जगह विद्या की रेखा होती है, किंतु तुम्हारे हाथ में नहीं है।

पाणिनि ने एक पत्थर उठाया और विद्या की रेखा वाले स्थान पर हाथ

में रेखा खींच दी। उनके हाथ से खून निकल गया।

यह देखकर गुरु हतप्रभ रह गए। वही विद्यार्थी एक दिन संस्कृत व्याकरण का विद्वान बन गया। संस्कृत व्याकरण का रचयिता बन गया।

यह हुआ आत्मविश्वास से। धर्म की शरण में जाने से आत्मविश्वास बढ़ेगा और आत्मरक्षा होगी। फिर कितनी भी कठिन समस्या आएगी विचलित नहीं होंगे।

अजितनाथ भगवान से जुड़ा एक प्रसंग है। प्रसंग है कि जब वे माता के गर्भ में थे, उस समय सम्राट श्रीचंद (उनके पिता) महारानी के साथ शतरंज खेला करते थे। खेल में हर बार महारानी जीत जाती थीं, श्रीचंद राजा हार जाते थे। जीतने के प्रसंग से ही जन्म होने पर उनका नाम अजित रख दिया गया। जिसको कोई जीत नहीं सके, उसे अजित कहते हैं। वे अजितनाथ भगवान अजित गुणों के धाम हैं।

अजितनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया कि मैं किस-किस गुण पर निगाह डालूँ और किस-किस गुण की प्रशंसा करूँ, व्याख्या करूँ। स्तुतिकार ने कहा कि आपके गुणों की व्याख्या करने की ताकत मुझमें नहीं है। मैं तो यह देखना चाहता हूँ कि आपने किस मार्ग से प्रस्थान किया। किस मार्ग से गमन किया कि आपने इतने गुणों का साक्षात्कार कर लिया। स्वयं को इतने गुणों का भण्डार कैसे बना लिया।

एक व्यापारी अरबों का माल लेकर घूमता है। वह धन कमाता है और कोई बुक लिखता है कि मैंने इस उपाय से धन कमाया है। वह बुक प्रकाशित होगी तो उसकी बिक्री होगी या नहीं होगी?

(श्रोता- बिक्री होगी)

लोग पढ़ेंगे या नहीं पढ़ेंगे?

(श्रोता- पढ़ेंगे)

किसलिए पढ़ेंगे?

(श्रोता- धन कमाने की तकनीक जानने के लिए पढ़ेंगे)

कितने स्फूर्त भाव से आप बोलते हैं कि धन कमाने के लिए पढ़ेंगे, धन कमाने का रास्ता मिल गया। इससे यह समझा जा सकता है कि व्यक्ति किसी भी तरह से धन कमाना चाहता है।

साथियो! जरा सोचना कि हममें धर्म कमाने की ललक कितनी है? अजित गुण धाम को प्राप्त करने वाले तीर्थंकरों के जीवन-वृत्त मिलते हैं या नहीं मिलते?

(श्रोता- मिलते हैं)

तीर्थंकरों ने कौन-सी तकनीक अपनाई और कैसे उस स्थान को प्राप्त किया, यह जानने का लक्ष्य क्यों नहीं बनता? वह जानने का लक्ष्य नहीं बनने का कारण क्या है? कारण स्पष्ट है कि उसमें जीवन खपाना पड़ता है। खाली शास्त्र रट लेने से कुछ नहीं होगा। शास्त्र जीवन में उतारना होगा। उपशम भाव, कषायों की मंदता उसके लिए बहुत जरूरी होगी। हम तीर्थंकरों के मार्ग के बारे में जानकारी चाहेंगे, उनका जीवन वृत्त पढ़ेंगे तो सामने आएगी क्षमा। क्षमा के मार्ग पर उन्होंने अपने कदम आगे बढ़ाए और अजित गुण धाम बन गए।

भगवान महावीर हमारे बहुत निकट हैं। सॉरी-सॉरी। सॉरी बोलूं या मिच्छामि दुक्कडं? हम भगवान महावीर के निकट हैं या नहीं हैं?

(श्रोता- हम भगवान महावीर के निकट हैं)

कैसे समझें कि भगवान महावीर के निकट हैं?

मोदी के शासन में कांग्रेस पार्टी भी है, बीजेपी भी है और अन्य दल भी हैं। मोदी के शासन में लोग रह रहे हैं या नहीं रह रहे हैं?

(श्रोता- मोदी के शासन में लोग रह रहे हैं)

हम भगवान महावीर के शासन में हो गए। शासन में होने मात्र से निकट नहीं हो गए। चलो यह बताओ कि आप मोदी जी के कितने निकट हो? आप मोदी जी के निकट नहीं हो पाए तो भगवान महावीर के निकट कैसे हो गए, यह बताओ? भगवान का नाम लेने मात्र से भगवान के निकट हो जाएंगे क्या? भगवान की माला जपने से उनके निकट नहीं हो पाएंगे।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. एक कहानी फरमाया करते थे। मोतीलाल जी नाम के एक श्रावक थे। दो दिन पहले एक मोतीलाल जी की बात बताई, ये मोतीलाल जी वे नहीं थे। दुनिया में बहुत सारे मोतीलाल हैं। मोतीलाल जी ने दो शादियां की थीं। एक को बड़ी जी और दूसरी को लोड़ी जी का संबोधन दिया जाता था। लोड़ी जी आ गयी तो बड़ी जी ने कहा कि अब मैं घर का काम नहीं करूँगी। चौके-चूल्हे का काम नहीं करूँगी। अब मैं साधना

करूँगी। मैं पतिव्रता नारी हूँ। पति ही मेरे देव हैं, धर्म हैं। अब मैं पतिदेव की माला जपा करूँगी।

उन्होंने एक मोटी माला बना ली और मोती जी, मोती जी जपना शुरू कर दिया। एक बार मोती जी बाहर गए हुए थे उगाही के लिए। गरमी के दिन थे। उनको तीव्र प्यास लगी थी। मुँह से आवाज निकलना मुश्किल हो रहा था। वे जैसे-तैसे घर पहुँचे तो घर का दरवाजा बंद था। दरवाजा खटखटाया तो बड़ी जी ने कहा कौन?

उन्होंने कहा कि मैं मोतीलाल हूँ।

बड़ी जी ने कहा, ठहरो-ठहरो, अभी मैं आपके नाम की माला जप रही हूँ। जब माला पूरी होगी तब दरवाजा खोलूँगी।

सेठ जी की आवाज लोड़ी जी ने भी सुनी। उसने आकर दरवाजा खोला। लोड़ी जी, मोतीलाल जी को अंदर ले गई, पंखे झलने लगी। मोतीलाल जी के पाँव पखारे उसके बाद उसने उनको पानी पिलाया।

आप विचार करो कि ऐसे ही कोई तपेहाड आएगा और उसको हम पानी पिलाएंगे तो क्या होगा?

वह मर जाएगा। उसको थोड़ी देर विश्राम देना होगा।

एक संत भिक्षा लेकर आ रहे थे कि आयुर्वेद का एक वैद्य उनके सामने आया।

वैद्य ने कहा कि यह साधु मरेगा। इतना परिश्रम करके जा रहा है और जाकर खाना खाएगा तो मरेगा नहीं तो और क्या होगा।

वैद्य को जैन मुनि के बारे में पता नहीं था। जैन मुनि ऐसा नहीं करते कि गोचरी लेकर आते ही सीधा खाने लगे। वह पहले उसकी आलोचना करेगा। गुरु को गोचरी बताएगा। अपने शरीर की प्रतिलेखना करेगा। शांति से भगवान का स्मरण करेगा, स्वाध्याय करेगा उसके बाद शांति से भोजन करने बैठेगा। ऐसा नहीं कि दौड़ा-दौड़ा आए और खाना खाने बैठ जाए।

यह तो जनरल नॉलेज की बात है। यह जानकारी सबको होनी चाहिए कि गरमी से आकर तत्काल पानी नहीं पीया जाता। भले ही तेज प्यास लगी हो, किंतु थोड़ी देर ठहरना चाहिए। थोड़ी देर आराम करने के बाद, थकान कम होने पर पानी पिलाया जाना चाहिए।

इस प्रसंग से पूछ लिया कि बोलो मोतीलाल जी किस सेठानी से राजी होंगे?

(श्रोता– लोड़ी जी से राजी होंगे)

बड़ी जी माला फेर रही हैं 108 मनके की, उस पर सेठ जी खुश नहीं होंगे क्या? हमने क्या सोच लिया?

**नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं...**

हम सोच लेते हैं कि भागते–दौड़ते नवकार मंत्र गिन लिया तो धर्म हो गया। हमने मान लिया कि भगवान महावीर हमारे नजदीक हैं। हम भगवान महावीर के शासन में हैं। पर ध्यान रखना, इतने मात्र से ही भगवान महावीर के नजदीक नहीं हो जाएंगे।

भगवान महावीर ने अपने अंतिम समय में गौतम स्वामी को भेज दिया, देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए। वे भगवान महावीर से दूर थे क्या?

(श्रोता– वे भगवान महावीर से दूर नहीं थे)

शरीर से वे भगवान महावीर से दूर थे, किंतु भावों से भगवान महावीर उनके दिल में बसे हुए थे। भगवान महावीर की एक–एक आज्ञा का अक्षरश: पालन करना ही उनका जीवन था। देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने गौतम स्वामी चले गए।

ऐसे समय में हम क्या विचार करेंगे? हमारे सामने ऐसा प्रसंग आ जाए तो हम क्या सोचेंगे?

सोचेंगे कि भगवान मुझे तो दूर भेज रहे हैं और सुधर्मा स्वामी को दूर नहीं भेज रहे हैं। सुधर्मा स्वामी पास में हैं। वे भी तो गणधर हैं। मैं ही प्रतिबोध देने क्यों जाऊँ, दूसरा कोई भी साधु प्रतिबोध दे सकता है। यह तर्क तब पैदा होता है जब हम दूर होते हैं। गौतम स्वामी को कोई तर्क पैदा नहीं हुआ। वे भगवान महावीर में रमे हुए थे। भगवान महावीर उनके दिल की धड़कन थे। इसलिए उनके मन में फालतू विचार नहीं आए। लेकिन हमारे मन में बहुत सारे विचार आ जाएंगे। क्या कारण है कि हमें उल्टे–पुल्टे विचार आ जाते हैं और उनको नहीं आए? यह किसकी महिमा है?

यह धर्म की महिमा है। जिन्होंने धर्म को जीवन में उतार लिया, भगवान का सान्निध्य प्राप्त कर लिया, उनको कभी भी ऐसे तर्क पैदा नहीं होंगे।

उनका मन सदा अपने श्रद्धेय में, भगवान में लगा रहेगा।

उनकी दृष्टि अभेद बन जाएगी। कोई भेद नहीं होगा। मन में ऊहापोह करने वाले भगवान से दूर हैं।

भगवान के शासन में हो जाने मात्र से उनके समीप नहीं होंगे। हालांकि हमारे तीर्थंकर न तो किसी पर राजी होते हैं और न ही किसी पर नाराज। राजी और नाराज होने का काम उनका नहीं है। कोई उनकी निंदा करे या प्रशंसा, वे एक समान रहते हैं। कोई गोशालक बने या गौतम, उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ने वाला।

गोशालक ने भगवान महावीर से तेजोलेश्या विधि सीखी और उन्हीं पर उसने प्रयोग कर डाला तो भी भगवान शांत रहे। उनके भीतर उतार-चढ़ाव नहीं आया। भगवान चाहते तो गोशालक वहीं-का-वहीं खड़ा रह जाता, कुछ करने की हिम्मत ही नहीं होती। जम्बूस्वामी के एक विचार से पाँच सौ चोरों के पैर चिपक गए, तो क्या भगवान महावीर में वैसी शक्ति नहीं थी? भगवान महावीर में जम्बूकुमार से ज्यादा शक्ति थी, किंतु समभाव था। शत्रुता का भाव नहीं था। उन्होंने अपनी आत्मा को पूर्णतया स्वच्छ बना लिया था, उसमें काँटे-कंकड़ रहे ही नहीं। केवलज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी थे जबकि गोशालक सर्वज्ञ होने का दंभ भरता रहा। वह संसार भ्रमण करने वाला बना।

गौतम स्वामी ने भाव को आराधा, भगवत्ता को साधा, भगवान का सान्निध्य प्राप्त किया। वे भगवान के निर्वाण के कुछ समय बाद केवलज्ञानी बन गए। क्या कारण बना? भले ही गोशालक भगवान का शिष्य बना था, भगवान के साथ चला भी, किंतु कभी भी भगवान के नजदीक नहीं आ पाया। भगवान की हर बात उसके मन में खटकती। भगवान से प्राप्त समाधान को वह झुठलाने की फिराक में रहता, जबकि गौतम स्वामी के लिए वही सच होता जो भगवान ने कह दिया। 'तमेव सच्चं।' भगवान के कथन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करना। इसी फर्क से गौतम स्वामी, भगवान महावीर के नजदीक हो गए और गोशालक दूर हो गया। गोशालक, भगवान महावीर के साथ नहीं रह पाया और गौतम स्वामी पहली निगाह में भगवान महावीर के समीप हो गए। फिर कभी वे दूर नहीं हुए। उनका मन सदा भगवान में लगा रहा। चाहे भगवान से अलग विचरण किया, किंतु भगवान उनसे दूर नहीं थे। वे भगवान के समीप थे।

वैसे ही हम यदि भगवान के समीप रहना चाहें तो समीपता मिल

सकती है।

कोई भी भगवान के समीप पहुँच सकता है। भगवान के समीप पहुँचने के लिए मार्ग ढूँढना होगा। जिस मार्ग से गौतम स्वामी भगवान के पास पहुँचे, उसी मार्ग पर हम चलेंगे तो भगवान के समीप पहुँचेंगे। गोशालक के मार्ग पर चलेंगे तो समीप पहुँचकर भी दूर हो जाएंगे। गौतम स्वामी की समीपता का पहला सूत्र था कि जो भगवान ने कह दिया उस पर कोई तर्क नहीं। मेरे समझ में आए या नहीं, किंतु भगवान ने जो कह दिया, वह सही है।

इसका एक और उदाहरण देख सकते हैं। भगवान की अनुमति ले, उन्हें वंदना-नमस्कार कर वे भिक्षा के लिए गए। रास्ते में उन्हें मालूम पड़ा कि आनंद श्रावक संथारा-संलेखना करके चल रहा है। उनके मन में विचार आया आनंद श्रावक के पास जाने का। वे बढ़ गए आनंद श्रावक के स्थान की ओर। आनंद श्रावक ने गौतम स्वामी को देखा तो वह हर्ष विभोर हो गया। पुलकित हो गया और कहा, भंते! मेरे शरीर में इतनी ताकत नहीं है कि मैं उठकर आपकी वंदना कर सकूँ, चरण स्पर्श कर सकूँ। आप कृपा करके थोड़ा आगे पधारें, मैं आपको चरण स्पर्श करना चाहता हूँ। गौतम स्वामी आगे बढ़े। आनंद श्रावक ने चरण स्पर्श किया और कहा, भगवन्! क्या श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है?

गौतम स्वामी ने कहा, हाँ हो सकता है।

आनंद श्रावक ने कहा कि मुझे अवधिज्ञान हुआ है। मैं पूर्व-पश्चिम, इतना-इतना देख रहा हूँ।

गौतम स्वामी ने कहा, आनंद! श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है, किंतु इतना विशाल अवधिज्ञान नहीं हो सकता, जितना तुम कह रहे हो। इस बात का तुम प्रायश्चित्त करो।

आनंद श्रावक ने कहा, भगवन्! प्रायश्चित्त सत्य का होता है या असत्य का?

गौतम स्वामी ने कहा, सत्य का नहीं असत्य का होता है।

आनंद श्रावक ने कहा, तो भगवन यह प्रतिक्रमण आप ही कृपा कराएं।

आनंद श्रावक में बोलने की इतनी हिम्मत कहाँ से आई कि उन्होंने भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम को ऐसा बोल दिया?

सत्य की आराधना करने से हिम्मत आई। धर्म में जीया और सत्य कहने में पीछे नहीं रहे।

गौतम स्वामी ने ऐसा नहीं कहा कि मैं गणधर हूँ। तुम मुझे ऐसा कैसे कह रहे हो। वे शान्त भाव से विनय से भगवान के पास पहुँचे। विनय ज्ञान की पहचान है। अकड़ के चले वह ज्ञान कैसा।

**आम झुके इमली झुके, झुके तो दाड़म दाख।**
**एरण्ड बिचारा क्या झुके, जिसकी ओछी साख।।**

फल आने पर कौन झुक जाता है?

(श्रोताओं ने कहा– आम झुक जाता है)

आम के वृक्ष पर फल आये तो टहनी झुक जाएगी।

आम झुक जाता है, इमली झुक जाती है। अरण्ड बेचारा क्या झुके। ज्ञानी कभी अकड़ता नहीं। ज्ञानी कभी अहंकार में नहीं आता। ज्ञानी को अहंकार होने का मतलब है कि ज्ञान उसे पचा नहीं।

ज्ञान को पचाने के लिए क्या चाहिए?

ज्ञान को पचाने के लिए सेवा चाहिए। गुरु महाराज की शरण स्वीकार करेगा तो ज्ञान पचेगा, ज्ञान का अजीर्ण नहीं होगा। सेवा करने में जी चुराने पर ज्ञान का अजीर्ण होगा। जैसे गैस माथे पर चढ़ जाती है, वैसे ही ज्ञान सिर पर चढ़ जाएगा।

एक बहुत सुंदर बात है। जम्बूकुमार, सुधर्मा स्वामी से कहते हैं भगवन्! आपने भगवान से ज्ञान कैसे प्राप्त किया?

सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि मैंने उनके चरणों का आश्रय लेकर, उनके चरणों की उपासना करते हुए, उनके चरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त किया। इसका अर्थ है कि विनय होगा तो ज्ञान आएगा। बिना सेवा, बिना भक्ति के ज्ञान नहीं आएगा। बिना भक्ति से शब्दों का ज्ञान हो भी जाए, वह आत्मकल्याण की ओर नहीं ले जाएगा। वह ज्ञान सही दिशा में नहीं चलाएगा। ऐसा ज्ञानी अहंकारी होगा। अकड़ कर चलेगा।

गौतम स्वामी अकड़ में नहीं आए। अहंकार में नहीं आए। उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम क्या बोल रहे हो, मैं भगवान का पहला गणधर हूँ।

गौतम स्वामी, भगवान के पास गए तो उनसे सारी बात बताते हुए

कहा कि भगवान! आनंद श्रावक ऐसा कह रहा है, क्या वह सही है?

भगवान ने कहा, हाँ, वह सही है। भगवान ने कहा, तुम्हें जाकर आनंद श्रावक से क्षमायाचना करनी चाहिए।

गौतम गणधर ने यह नहीं सोचा कि इतना कौन-सा भारी अपराध कर दिया जो मैं क्षमायाचना के लिए जाऊँ।

वे वापस लौटे। उलटे कदम लौट गए और जाकर क्षमायाचना की कि तुम जो कह रहे हो वही सत्य है, वही सही है।

बोलो, यह गुण कहाँ से पैदा हुआ?

यह गुण धर्माराधना से पैदा हुआ। गुरु भक्ति से पैदा हुआ। ज्ञान से प्राप्त हुआ। कोई ईगो नहीं। जब तक अहंकार रहेगा, तब तक क्या भगवान के नजदीक हो पाएंगे?

सर्प भले कितना ही टेढ़ा-मेढ़ा चलता होगा, किंतु अपने बिल में जाता है तो सीधा हो जाता है। वहाँ टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता। दुनिया में आप कितने ही टेढ़े-मेढ़े हो, किंतु धर्मस्थान में प्रवेश करते ही सीधे हो जाओ। निस्सही, निस्सही... निवृत्त हो गए संसार के कामों से। अब संसार की एक भी बात याद नहीं रहे। धर्म के पाँच अभिगम की बात याद करें। पाँच अभिगम का पालन करते हुए मन को एकाग्रतापूर्वक धर्माराधना में लगाएं। मन को इस तरह धर्माराधना में लगाकर देखें कि उसका क्या परिणाम सामने आता है। जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए।

धर्म कहता है कि जल्दबाजी में काम बिगड़ता है।

## 'हड़बड़िया सो गड़बड़िया'

हड़बड़ी करने वाला गड़बड़ी करता है। बिना हड़बड़ी के काम करो। धैर्य से काम करो। धैर्य से जो काम होगा उसकी क्वालिटी अलग ही होगी। हड़बड़ी में एक काम करने के पीछे चार काम बिगाड़ देंगे। आदमी एक काम करने के लिए जल्दबाजी करता है और चार काम बिगाड़ देता है। जल्दबाजी में एक काम पूरा होगा या नहीं, किंतु चार काम नए खड़े हो जाएंगे। धैर्य से एक काम करेंगे तो चार काम सिद्ध हो सकते हैं। जल्दबाजी से कार्य की सिद्धि नहीं होती है। कार्य सिद्धि होती है धैर्य से। मन धैर्य से जुड़ेगा तो कार्य सम्पन्न होगा। हड़बड़ी की कोई आवश्यकता नहीं है। हड़बड़ी में मन जुड़ नहीं पाता।

भगवान ने ईर्या समिति बताई। क्या अर्थ होता है ईर्या समिति का?

(एक श्रोता ने कहा– ईर्या समिति का अर्थ होता है चलना)

क्या चलना?

चलना तो सभी करते हैं।

जो कार्य कर रहे हो उसी में लीन हो जाओ। उसी में एकमेव हो जाओ। उस समय दूसरी कोई भी बात दिमाग में नहीं आनी चाहिए। चलते हुए केवल चलने में ही ध्यान होना चाहिए। भगवान का यह एक सिद्धांत भी यदि हमारे जीवन में आ जाए तो हम भगवान के नजदीक हो जाएंगे।

कौन–सा सिद्धांत है?

सिद्धांत है कि जो करो उसी में तल्लीन हो जाओ। तन्मय हो जाओ। खाना खा रहे हो तो खाने के अलावा दूसरी बात मन में नहीं आए। आदमी मुँह से खा रहा है और दिमाग कहाँ चल रहा है? आदमी बैठा किताब लेकर स्वाध्याय के लिए, मुँह से स्वाध्याय के शब्द उच्चरित हो रहे हैं, किंतु मन कहाँ दौड़ रहा है?

(एक श्रोता ने कहा– मन घर में दौड़ रहा है)

यही तो दुविधा है। इस दुविधा के चलते शांति नहीं मिलेगी। सफलता नहीं मिलेगी। एकाग्र भाव बन गया, उसी में लीन हो गए तो सफलता शीघ्र मिलेगी। जो भी कार्य हो उसमें लीन हो जाएं। लीन हो जाएंगे तो कभी शिकायत नहीं होगी कि माला में मन नहीं लगता, स्वाध्याय में मन नहीं लगता। मन तो कहीं भी नहीं लग रहा है। घर आते हैं तो थानक याद आता है। थानक में आते हैं तो घर याद आता है। घर में होते हैं तो दुकान याद आती है। दुकान में होते हैं तो घर याद आता है। जहाँ होते हैं, वहाँ होते नहीं हैं। शरीर और मन अलग–अलग हो जाते हैं। दोनों को एक साथ बैठाओ फिर देखो कितना मजा आएगा। दोनों एक साथ बैठ जाएंगे तो समस्या का समाधान अपने आप हो जाएगा। कोई भी समस्या नहीं रहेगी।

समस्या क्या है?

समस्या है कि मन अलग चलता है और शरीर अलग।

इंजन और डिब्बा अलग–अलग चले तो मंजिल प्राप्त हो सकती है क्या?

जैसे इंजन और डिब्बा एक साथ चलेंगे तो गंतव्य तक पहुँचेंगे, वैसे

ही मन और शरीर दोनों साथ चलेंगे तो मंजिल प्राप्त होने में देर नहीं लगेगी। नहीं तो ढूँढते रहेंगे कि मन कहाँ चला गया। सोचेंगे कि मैं तो माला में बैठा था मन कहीं और चला गया।

खाली माला जपने की बात नहीं है, स्वाध्याय करने की बात नहीं है, सामायिक करने की बात नहीं है, संवर करने की बात नहीं है। हर जगह हमारा मन इधर से उधर भागता रहता है। हम जो कार्य करते हैं उसमें मन लगता नहीं। बहुत कम समय ऐसा होता है, जब मन कार्य में लग जाए। बहुत कम कार्य ऐसे होते हैं जिसमें मन लग जाए। अधिकांश हमारा मन कहीं और दौड़ता रहता है। हम कहीं और होते हैं और गाड़ी कहीं और चल रही होती है।

गाड़ी चलाते-चलाते हमारा मन इधर-उधर तो नहीं जाता! स्टेयरिंग हाथ में है और मन कहाँ है? बहुत बार मन इधर-उधर हो जाता है, इसलिए कई बार एक्सीडेंट हो जाते हैं। मन कहीं और होने से एक्सीडेंट होना स्वाभाविक है। बहुत बार ऐसी घटनाएं घटती हैं। हमारा शरीर गाड़ी है और मन ड्राइवर। मन सही नहीं चलेगा तो द्वंद्व पैदा होगा। मन साथ चलेगा तो द्वंद्व नहीं होगा। द्वंद्व नहीं होगा तो एक्सीडेंट नहीं होगा और सही समय पर अपनी मंजिल प्राप्त करेंगे।

अजितनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया कि भगवान! आपने क्रोध, मान, माया, लोभ को कैसे जीत लिया, मैं उस मार्ग को जानना चाहता हूँ।

कैसे जीता अजितनाथ भगवान ने उस मार्ग को?

फसल काटने के लिए क्या चाहिए?

(श्रोताओं ने कहा- फसल काटने के लिए दंताली चाहिए)

भगवान ने कहा, उपशम भाव से क्रोध का हनन करो और मान को विनम्रता से जीतो। माया को सरलता से जीतो और लोभ को संतोष से। ये गुण हमारे भीतर होंगे तो हम जीतने की ओर आगे बढ़ेंगे। रास्ता स्पष्ट हो जाएगा। भगवान से पूछा गया कि आपने जिस मार्ग पर गमन किया, मैं उसे देखना चाहता हूँ, जानना चाहता हूँ। भगवान ने कहा, जानो मेरी तरफ से मनाही नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि उस रास्ते से चलने के लिए पैसे लगेंगे।

**'पैसा लगे ना टका, ढूँढिया धर्म पक्का'**

उस रास्ते पर चलने के लिए पैसे नहीं लगेंगे। केवल तुम्हारा मन

तुम्हारे साथ चलना चाहिए। तुम्हारा मन तुम्हारे साथ चलेगा, तो तुम मार्ग देख पाओगे, मार्ग का ज्ञान हो पाएगा और कल्याण मार्ग को प्राप्त करने में समर्थ बनोगे। अब बोले कौन-सा मार्ग अपनाना?

(एक श्रोता ने कहा- विनय का मार्ग अपनाना)

निर्णय तुम्हारा है। निर्णय मेरा नहीं है। जो अच्छा मार्ग हो, मंजिल दिलाने वाला हो उस मार्ग को स्वीकार करेंगे तो मंजिल मिलेगी। ऐसे मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील बनें। अपना लक्ष्य निर्धारित करें और लक्ष्य के अनुरूप अपनी गति करें।

सामायिक-संवर करने, धर्म स्थान में आने, व्याख्यान में आने का लक्ष्य क्या है?

(श्रोताओं ने कहा- मोक्ष)

रटी-रटाई बातें करने से मोक्ष मिलने वाला नहीं है। पहले हमें मार्ग का ज्ञान होना चाहिए। मैं समाधि में जीना चाहता हूँ, शांति में जीना चाहता हूँ, स्वस्थता से जीना चाहता हूँ। मेरा मन स्वस्थ बने, इसलिए मेरी सारी धार्मिक क्रियाएं उसके लिए हों। हमारा मन स्वस्थ है या बीमार? हमारा मन नीरोगी है या रोगी?

पहचान करें कि हमारा मन रोगी है या नीरोगी। रोगी मन की पहचान है तनाव में रहना, टेंशन में रहना, हीन भावों में रहना। स्वस्थ मन का अर्थ है स्व में स्थित रहना। अपने आपमें स्थित रहना। इधर-उधर भागे नहीं। अपने मन को स्व में स्थित रखने का लक्ष्य होना चाहिए।

समाधि को प्राप्त करने का लक्ष्य रहे। समाधि प्राप्त करने के लिए अधर्म को छोड़ें, कषाय को छोड़ें, अनीति को छोड़ें। सही मार्ग पर चलें। यह लक्ष्य बनाकर चलेंगे तो शांति मिलेगी। समाधि मिलेगी। राहत मिलेगी। फिर कहीं दूसरी जगह नहीं जाना होगा। केवल अपने मन को कार्य में एक बना लें। कार्य व मन को एक बनाने पर एक दिन सफल बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

1 दिसंबर, 2022
भुपालपुरा

# 13

# मन पात्र बने सुपात्र

**संभव देव ते धुर सेवो सबे रे...**
**धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।**
**देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।**

संभवनाथ भगवान की स्तुति करते हुए एक बात कही गई है कि सभी संभवनाथ भगवान की सेवा करें। अखण्डित रूप से सेवा करें। सेवा करने की बात करने के साथ यह संकेत भी किया गया है कि सेवा की सार्थकता तब होगी, जब जीवन अभय, अद्वेष और अखेदमय बने। इसका मतलब है कि भय दूर हो जाए। द्वेष दूर हो जाए और खिन्नता जीवन का अंग नहीं रहे।

ये तीन दुर्गुण बहुत से मनुष्यों के जीवन में समाये हुए हैं। भले ही व्यक्ति कितना भी हुंकार भरे, पर उसके भीतर कहीं-न-कहीं भय भरा हुआ है। व्यक्ति भयभीत है। वह निर्भय नहीं है।

निर्भयता क्यों नहीं है? कागज के किसी हिस्से में सीलन लग जाए, वह गीला हो तो उसके फटने का चांस है। ऐसे में झूठा व्यक्ति भय खाएगा। एक बोल में कहा गया 'झूठो सो डरे।' अधिकांश लोगों के भीतर कहीं-न-कहीं असत्य है। कहीं-न-कहीं छल-कपट है। कहीं-न-कहीं झूठ भरा है। इन कारणों से लोग भयभीत रहते हैं।

एक व्यक्ति आभूषण लेकर जौहरी की दुकान पर जाता है। वह उसको जल्दी से बेचना चाहता है। जो भी दाम मिले वह लेने की तैयारी में है, क्योंकि वह जान रहा है कि लेट हो गया और पकड़ा गया तो मामला गड़बड़ा जाएगा। इसलिए जो पैसा मिले वही सही। बाजार भाव से उसे कोई लेना-देना नहीं है। जो पैसा मिल जाए, वही आमदनी है। उसके पैर कच्चे हैं, उसका मन कच्चा है। उसके मन में भय भरा है कि कोई उसे पकड़ नहीं ले। किसी को ज्ञात नहीं हो

जाए। भय, मन की कमजोरी है। जिस व्यक्ति की बात चल रही है, उसे डर इसलिए है क्योंकि उसके पास माल चोरी का है।

## 'द्वेष अरोचक भाव'

जिसके प्रति व्यक्ति की रुचि नहीं होती, कहीं-न-कहीं उसके प्रति द्वेष के भाव रहते हैं। वैसे रुचि होना कोई जरूरी नहीं है, किंतु सौम्य भाव होना जरूरी है। जो चीज मन के प्रतिकूल हो, अच्छी नहीं लगे, उसके प्रति भी समभाव रखना बहुत बड़ी साधना है।

तीसरी अवस्था है खिन्नता। अखेद मतलब है खिन्न नहीं होना। भक्ति करने की पात्रता, परमात्म स्तुति करने की पात्रता, भगवान के शरण की पात्रता, धर्म आराधना की पात्रता तब प्रकट होगी, जब भीतर अभय, अद्वेष और अखेद की अवस्था रहेगी। ये तीन अवस्थाएं जिसके भीतर हैं, वह सशक्त है। उसमें धर्म टिकेगा। नहीं तो नहीं टिकेगा।

जैसे सिंहनी का दूध लोहे, ताँबे और पीतल के बरतन में नहीं रखा जा सकता, वैसे ही भय, द्वेष और खेद से भरे मन में धर्म नहीं रखा जा सकता। जैसे सिंहनी का दूध स्वर्ण पात्र में रखा जा सकता है, वैसे ही मन स्वर्ण धातु के समान होगा तो ही धर्म टिकेगा। इसलिए धर्म को टिकाना है तो अपने पात्र का परीक्षण करना होगा। परीक्षण करना चाहिए कि मेरा मन, मेरा पात्र कितना मजबूत है, कितना सशक्त है। मन यदि स्वर्ण धातु जैसा बना होगा तो उसमें धर्म को टिका पाएंगे। धर्म को टिकाने के लिए कौन-सा पात्र चाहिए?

जो पात्र अभय, अद्वेष और अखेद से बना हो।

मन अभय होना चाहिए। भयरहित अवस्था होनी चाहिए। द्वेष और खिन्नता से रहित अवस्था होनी चाहिए। जिसके भीतर भय, द्वेष और खिन्नता होगी, वह धर्म को टिका नहीं पाएगा। वह परमात्मा की सच्ची भक्ति नहीं कर पाएगा। वह औपचारिकता निभाता रहेगा। हम भी जन्मों-जन्मों से औपचारिकता निभा रहे हैं। इसीलिए सफलता सिद्ध नहीं हो पाई। जिस उद्देश्य से परमात्मा की भक्ति की वह उद्देश्य सफल नहीं हो पाया। आज यदि कोई पूछ ले कि भक्ति किसलिए करते हैं तो क्या जवाब होगा? किसलिए करते हैं भक्ति?

(एक श्रोता ने कहा- मन की शांति के लिए भक्ति करते हैं)

मन शांत हो गया?

(श्रोता– नहीं हुआ)

खोट कहाँ पर है? बताओ खोट कहाँ पर है?

भगवान की भक्ति में तो खोट नहीं है! भगवान में खोट नहीं है। हमने अपने मन को पात्र नहीं बनाया। हमने अपने मन को योग्य नहीं बनाया। हमारा मन भक्ति के योग्य होता तो हमें निश्चित रूप से शांति मिलती। निश्चित रूप से समाधि मिलती। निश्चित रूप से तनाव दूर होते। हम भक्ति तो खूब कर रहे हैं, किंतु मन को योग्य नहीं बना पा रहे हैं। जरूरी क्या है? मन को योग्य बनाना। वह योग्य कैसे बनेगा? वह सुदृढ़ कैसे बनेगा?

यदि उसमें भय है, द्वेष है, वह कमजोर है तो ये अवस्थाएं शांति प्राप्त नहीं होने देती। जहाँ कमजोरी है वहाँ धर्म टिक नहीं पाता।

**'धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ'**

अर्थात् धर्म शुद्ध हृदय में टिकता है। और शुद्धि कब होती है? ऋजुभूतता से शुद्धि होती है। हमारे भीतर सरलता होनी चाहिए। हम अपने मन की परीक्षा करें कि मेरा मन सरल है या नहीं! परीक्षा करें कि भीतर कुटिलता तो नहीं है!

यदि सरलता होगी तो धर्म टिकेगा। यदि हमारे मन में भय, द्वेष और खेद नहीं होगा तो धर्म टिकेगा। धर्म टिकने का मतलब है कि हमारा मन सुदृढ़ होगा, मजबूत होगा। मन मजबूत होगा तो वहाँ से धर्म खिसक नहीं पाएगा। जब तक हम अपने मन को योग्य नहीं बना लेंगे तब तक की गई प्रार्थना सफलता देने वाली नहीं बनेगी। तब तक की जाने वाली भक्ति सुफल देने वाली नहीं बनेगी।

एक दिन मैंने कही थी अर्हन्नक श्रावक की बात। बहुत बार मैं बोलता हूँ सेठ सुदर्शन की बात। सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़ाने की तैयारी हो रही है। उसे मृत्युदण्ड मिला है। शूली पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा है। दो–चार मिनट में शूली पर चढ़ने की स्थिति है। इसके बावजूद उसके मन में कोई खेद नहीं है। उसके मन में कोई खिन्नता नहीं है। धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं है। यह विचार नहीं है कि मैंने धर्म की इतनी आराधना की, मुझे क्या फल मिला, क्या परिणाम मिला। यह नहीं सोच रहा है कि आज मुझे लांछित होकर शूली पर चढ़ना पड़ रहा है। ऐसे धर्म से क्या मतलब? अपितु मन धर्म के प्रति सुदृढ़ है।

**''धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपद काल परिखिअहिं चारी''**

कौन कितना धर्म में रमा हुआ है, कौन कितना धैर्यशील है, इसकी परीक्षा सामान्यत: नहीं होती। जब आदमी पर कठिनाई आती है, जब विपत्ति आती है, तब ज्ञात होता है कि कौन कितना धैर्यवान है। विपत्ति के क्षणों में ही सुदृढ़ता की परीक्षा हो पाती है। इस पर बहुत सारे आख्यान मिलेंगे।

हरिश्चंद्र राजा का आख्यान सुना ही होगा। उनके लिए सत्य महत्त्वपूर्ण था या राज्य?

(श्रोताओं ने कहा– सत्य महत्त्वपूर्ण था)

हमारे लिए क्या महत्त्वपूर्ण है?

हमारे लिए पैसा महत्त्वपूर्ण है। पद–प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण है या सत्य?

(श्रोताओं ने कहा– सत्य महत्त्वपूर्ण है)

हरिश्चंद्र राजा बिक गए। उनकी प्रतिष्ठा पर आँच आई क्या? क्या उनकी प्रतिष्ठा घट गई? तारा एक ब्राह्मण के घर नौकरानी के रूप में रही। महारानी होकर नौकरानी का पार्ट अदा करना पड़ा उसे, पर क्या मन में खिन्नता आई? बहुत–से लोग आज भी दु:खी मिलते हैं। कहते हैं कि म.सा. जो अधर्म, कुकर्म कर रहे हैं, वे गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और धर्म में रहने वाले धक्का खा रहे हैं। इस तरह का विचार आने का मतलब है कि हमारा मन कहीं–न–कहीं धर्म के प्रति डाउटफुल है। यह डाउट क्यों हुआ कि इतना धर्म करते हुए भी मैं सुखी नहीं हो रहा!

सुख किसमें मिलता है?

सुख धर्म में मिलता है। देखना है कि हमारे मन में धर्म की योग्यता है या नहीं। देखना है कि मेरा मन धर्म का पात्र है या नहीं। मन ही पात्र नहीं होगा तो धर्म कहाँ पर टिकेगा।

जिस घड़े में नीचे छेद हो, उसमें पानी भरने के बावजूद वह नहीं भरेगा। फूटे घड़े की तरह कहीं हमारा मन भी फूटा हुआ तो नहीं है! हमारे मन में छेद तो नहीं है!

कमजोर कपड़े के थैले में पाँच किलो अनाज भरकर कोई घर ले जाना चाहे, तो उसमें कितना अनाज ले जा पाएगा?

(श्रोताओं ने कहा– थैला खाली हो जाएगा)

रास्ते में ही थैला फट गया तो अनाज धीरे–धीरे या एक साथ गिर जाएगा। थैले में टिकेगा नहीं। वैसे ही जब तक हम अपने मन को मजबूत नहीं

बना लेंगे, योग्य नहीं बना लेंगे, तब तक उसमें धर्म तत्त्व को टिकाने में समर्थ नहीं होंगे।

मन मजबूत किससे होता है?

मन मजबूत होता है निर्भयता से। निर्भयता तब आएगी जब भीतर झूठ, छल-कपट नहीं होगा। सत्यनिष्ठा होगी तो निर्भयता आएगी। सुदृढ़ता होगी तो निर्भयता आएगी और निर्भयता आएगी तो भगवान की भक्ति का मजा आएगा। मजा आएगा तो भगवान की भक्ति जल्दी लाभ देने वाली बनेगी। हम सोच ही नहीं पाएंगे कि इतनी जल्दी लाभ मिल गया।

अर्जुन माली की कहानी पर्युषण के दिनों में हम सुनते हैं। 1141 जनों की घात करने वाला अर्जुन, भगवान महावीर से पहले ही मुक्त हो गया। छह महीने की धर्म आराधना से वह सिद्ध बन गया। साधु बनने के साथ-साथ उसने अपने मन को योग्य बनाया। किसी ने कितनी भी निंदा की, प्रशंसा की, किसी ने गालियाँ बकी, डण्डे लगाए, पत्थर फेंके किंतु उसका मन विचलित नहीं हुआ। वैसे ही हम अपने मन को बनाएं। मन को योग्य बनाएं। मन योग्य बनेगा तो कोई कारण नहीं है कि वह अशांत हो जाए। ऐसा नहीं होगा कि धर्म की आराधना करें और मन में शांति नहीं आए। ऐसा नहीं हो सकता कि चंदन की घिसाई करें और सुगंध नहीं आए। केसर घोटी जा रही हो और उसकी गंध नहीं आए, ऐसा संभव है क्या? नकली केसर हो तो बात अलग है।

मिर्ची यदि सही है तो उसकी थोड़ी खंख आते ही छींक आएगी। चंदन घिसने पर खुशबू आएगी, किंतु चंदन नहीं हो तो खुशबू नहीं आएगी। भगवान की भक्ति सही है, परमात्मा सही है। हमारा मन जो भक्ति करने वाला है वह अभी पूरा पात्र नहीं बना है। अत: सबसे पहले हमारा ध्यान उधर जाना चाहिए। हमारा ध्यान सबसे पहले मन को सुदृढ़ बनाने की ओर जाना चाहिए।

**संभव देव ते धुर सेवो सबे रे लई प्रभुसेवन भेद।**
**सेवन कारण पहली भूमिका रे अभय, अद्वेष, अखेद।।**

यह बिल्डिंग कितने मंजिल की है?

(श्रोताओं ने कहा- सात मंजिल की है)

इसकी नींव कितनी मजबूत है?

नींव मजबूत नहीं होगी तो क्या 7, 9, 35, 100 मंजिल की बिल्डिंग

खड़ी होगी? पूरे विश्व में सबसे ज्यादा कितने मंजिल की बिल्डिंग है?

(एक श्रोता ने कहा- 163 मंजिल की है)

135 तो मैंने पहले सुना था, किंतु आप कह रहे हैं 163 मंजिल की बिल्डिंग है। उसके नीचे की भूमि जितनी मजबूत होगी, नींव जितनी गहरी होगी, उतनी ही ऊपर की मंजिल ठीक हो सकती है। यदि रेत के धोरों पर बिल्डिंग खड़ी करेंगे तो कितने दिन तक टिकेगी? बिल्डिंग जैसी बात ही हमारे साथ घटित होती है।

**सेवन कारण पहली भूमिका रे...**

जैसे सोने का पात्र सिंहनी के दूध के लिए योग्य होता है, वैसे ही भयरहित, द्वेषरहित और खेदरहित मन भक्ति के योग्य होता है।

दीवाली के दीये जलाते हैं और होली के गीत गाए जाते हैं। यह प्रसंग आपके सामने नवरत्न परिक्षेत्र में किस रूप में आ रहा है?

(श्रोता- दीक्षा के रूप में आ रहा है)

किसकी दीक्षा है?

(श्रोता- वर्षा जी भण्डारी की दीक्षा है)

एक दीक्षा है या ज्यादा दीक्षा है?

(श्रोता- आप जानते हो भगवन्)

आप जान सकते हो, किंतु जानने के लिए मन की दृढ़ता आवश्यक होती है। सुपात्र मन की आवश्यकता होती है।

मुमुक्षु बहन वर्षा, शिरूड़ की निवासी हैं। शिरूड़ गाँव का नाम पहले साधुमार्गी इतिहास के पन्नों पर नहीं था। हम जानते भी नहीं थे कि शिरूड़ भी कोई गाँव है। धुलिया वाले जानते होंगे। शिरूड़ में श्री वैभवप्रभा श्री जी आदि महासतियों का पधारना हुआ। उन्होंने बताया कि शिरूड़ वाले चातुर्मास की माँग कर सकते हैं। गाँव अच्छा है, यदि उनकी भावना हो तो वहाँ चातुर्मास होना चाहिए। वहाँ चातुर्मास हुआ भी; श्री अटल मुनि जी म.सा. और श्री मुदित मुनि जी म.सा. का। और शिरूड़ नाम साधुमार्गी नक्शे पर आ गया।

मैंने मदुरांतकम में चातुर्मास किया। चेन्नई से थोड़ा दूर है। हम नक्शे पर ढूँढते रहे, किंतु मदुरांतकम का नाम नहीं मिला। तमिलनाडु के गाँवों के नाम जल्दी से मुँह पर चढ़ते भी नहीं हैं। ऐसे ही तमिलनाडु वालों को यहाँ के

गाँव का नाम याद नहीं रहता।

अभी महासती मंजुला श्री जी म.सा. और पद्म मुनि जी म.सा. का शिरूड़ पधारना हुआ। वे वहाँ रुके। उन्होंने बताया क्या भक्ति है शिरूड़ के लोगों की और क्या उत्साह है। उसी शिरूड़ से पहले महासती श्री रिभिता श्री जी म.सा. की दीक्षा हुई। दूसरी बहन वर्षा हैं जो इस पद पर अग्रसर होने के लिए तत्पर हैं। रत्न, रत्नों की खदान से ही निकल सकते हैं।

आज उदयपुर वालों का मन बहुत कमजोरी महसूस कर रहा है। चातुर्मास से सुन रहे थे कि वहाँ की दीक्षा हुई, वहाँ की दीक्षा हुई। चातुर्मास में इतनी दीक्षाओं का सुना, किंतु उदयपुर का तो नाम ही नहीं आ रहा है। यह अभी की बात है। पहले उदयपुर से भी बहुत रत्न निकले हैं। समझ लो कि कई वर्षों से यह खदान बंद है। भविष्य में आशा है या नहीं है? क्या बताएं हम, आशा तो अमर धन है। हम आशा तो रखते हैं।

अभी पूर्व में आपने सुना कि मुमुक्षु बहन वर्षा भण्डारी पूना में कम्प्यूटर इंजीनियरिंग करके तीन साल से जॉब कर रही थीं। उनके मामा जी यहाँ आए हुए हैं। एक बार उनसे बात हुई तो मामा जी ने बताया कि वह (वर्षा) भी घर में टिकने वाली नहीं है। वह टिकेगी नहीं। दो साल पहले की बात है। उन्होंने बताया कि वह घर में टिकेगी नहीं, घर में रुकेगी नहीं। उसका लक्षण ही लग रहा है कि वह रुकेगी नहीं। मामा जी पहले ही समझ गए कि यह क्या करेगी। पापा समझे या नहीं, किंतु मामा जी समझ गए कि यह घर में नहीं रुकेगी। उसका लक्ष्य दीक्षा है और आज उसी लक्ष्य की दिशा में गतिशील है।

ऐसे प्रसंग प्रेरणा लेने के हैं। देखने के हैं कि हमारे मन में वैराग क्यों नहीं जग रहा है। संसार के अलिते-पलिते देखने के बाद भी हमारा मन कितना कमजोर बना हुआ है कि उसके भीतर संयम की बात पैदा नहीं हो रही है। त्याग-प्रत्याख्यान के भाव पैदा नहीं हो रहे हैं। हम अपने मन को जितना त्याग-प्रत्याख्यान के लिए मजबूत करेंगे वह उतना ही सुदृढ़ होगा। हम अपने मन को मजबूत बनाएं, सुदृढ़ बनाएं, पात्र बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

3 दिसंबर, 2022
नवरत्न परिक्षेत्र

# 14

# दृष्टि मंजिल पर हो

**संभव देव ते धुर सेवो सबे रे...**

मुमुक्षु वर्षा जी भण्डारी दीक्षा के लिए तैयार हैं। तत्पर हैं। कटिबद्ध हैं। परिवार वालों ने आज्ञा-पत्र पहले प्रस्तुत कर दिया है। अभी भी यहाँ उपस्थित हैं। भाई मनसुख जी भण्डारी, मनीषा जी भण्डारी और पारिवारिकजन हाथ खड़ा करके अनुमोदन का लाभ लें। यह दीक्षा उदयपुर में हो रही है इसलिए नवरत्न कॉम्पलेक्स, उदयपुर संघ के सदस्य हाथ खड़ा करके अनुमोदन का लाभ लें। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पदाधिकारी व सभी सदस्य और जितने भी दर्शक हैं वे भी अनुमोदन के लिए हाथ खड़ा करें।

(सभी श्रोताओं ने हाथ खड़े कर अनुमोदन का लाभ लिया)

मुमुक्षु बहन वर्षा जी भण्डारी! पूरी तैयारी है ना?

(मुमुक्षु बहन वर्षा जी भण्डारी ने कहा- तहत्ति भगवन्)

**संभव देव ते धुर सेवो सबे रे...**

अपनी डिक्शनरी से, शब्दकोश से एक शब्द निकाल दें, असंभव। असंभव शुद्ध शब्द नहीं है। 'अ' उपसर्ग संभव के साथ जुड़ा हुआ है। संभव यानी असंभव कुछ भी नहीं है। व्यक्ति ठान ले तो सबकुछ करने में समर्थ है। सारी सिद्धियाँ प्राप्त करने में समर्थ है। हाँ, उसके लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता होगी। थकना नहीं, रुकना नहीं। चलते चलना... चलते चलना... चलते चलना... चलते चलो... चलते चलो... चलते चलो... बस मंजिल दिखती रहनी चाहिए। मंजिल पर दृष्टि होनी चाहिए। इसकी फिक्र नहीं होनी चाहिए कि मैंने कितना रास्ता तय कर लिया। ध्यान इस पर होना चाहिए कि मुझे मंजिल प्राप्त करनी है। लक्ष्य का वरण करना है, मंजिल चाहे कोसों दूर क्यों न हो। जब तक मंजिल नहीं मिलेगी, तब तक रुकना नहीं है। थकना नहीं है। इसी विचार

के साथ मंजिल की तरफ दृष्टि लगाकर अपने गंतव्य पर ध्यान रखना है।

अब तक वर्षा भण्डारी के नाम से इनकी पहचान होती रही। माता-पिता का परिचय आप लोगों ने जान ही लिया है। लोगों ने उनकी माता जी को सुना। उन्होंने कहा कि हमारे लिए भी यह क्षण आए। मामा जी को भी आपने सुना। वर्षा भण्डारी की पुण्यवानी देखो कि एक-दो नाना जी नहीं, बल्कि चार-चार नाना जी दीक्षा में शामिल हैं। कल तीन नाना जी का परिचय किया था, अब सुन रहे हैं कि चार नाना जी हैं। यह पुण्यवानी का योग है, अन्यथा कहाँ मिलते हैं नाना जी और कहाँ मिलते है दादा जी। बड़े नाना भी आए हुए हैं। आप देखिए, नाना-नानी, पापा-मम्मी, बड़े पापा, छोटे पापा, भाई, सब परिवार वालों ने जिस उत्साह से, जिस उमंग से, जिस भाव से आपको दीक्षा के लिए आगे बढ़ाया है उसे पूर्ण करना है।

अब नए प्रवेश में इनकी नई पहचान नवदीक्षिता महासती श्री अनुमिता श्री जी म.सा. के नाम से होगी। केशलोच का कार्यक्रम शासन दीपिका महासती श्री सुशीलाकँवर जी (बीकानेर) के कर-कमलों से सम्पन्न होगा। इतना ही कहते हुए विराम।

4 दिसंबर, 2022
नवरत्न परिक्षेत्र

# 15

# साधना का प्राण समर्पणा

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

इसका अर्थ है सुमतिनाथ भगवान के चरणों में स्वयं को अर्पित करना, समर्पित करना। एक प्रश्न खड़ा हो जाता है कि सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपने आपको अर्पित क्यों करना?

उसका समाधान है कि जब तक हमारा अहं बना रहेगा, तब तक हम समग्र नहीं बन पाएँगे। तब तक पूर्ण नहीं बन पाएंगे। थोड़े में रुके रह जाएंगे। थोड़ा ही हमारे पल्ले पड़ेगा। पूर्ण बनना है तो अपने आपका अर्पण करना होगा।

आत्म अर्पण से एक बड़ी उपलब्धि यह होती है कि शरीर भाव, तन भाव दूर हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहूँ तो जब तक शरीर के प्रति हमारा लगाव रहेगा, तब तक आत्म अर्पण नहीं हो पाएगा। जब तक अपनापन बना रहेगा, तब तक हम विराट रूप को स्वीकार नहीं कर पाएंगे। विराटता पाने के लिए छुद्रता का त्याग करना पड़ेगा।

शरीर-आत्मा एक है, शरीर ही मैं हूँ, मैं ही शरीर हूँ, यह बुद्धि हमें शरीर में अटकाए रखती है। इस बुद्धि का परिमार्जन आत्म अर्पण से हो सकता है। जब यह भाव आ जाएगा कि यह शरीर मेरा नहीं है, मैं केवल इसका उपभोक्ता हूँ तो आत्मा से परमात्मा बनने में देर नहीं लगेगी।

एक उदाहरण दिया जाता है कि एक आदमी घूम रहा है, चल रहा है, किंतु अपने घर की जानकारी न होने से उसे अपना घर प्राप्त नहीं हुआ। वह अपना घर प्राप्त नहीं कर पाया। एक घर देखकर उसको लगा कि यह घर मेरा है, उसने अपने घर की पहचान कर ली, फिर वह अपने घर में पहुँचा। घर की पहचान नहीं होना बहिरात्म अवस्था है। घर की पहचान हो जाना अंतरात्म

अवस्था है और घर में प्रवेश हो जाने की अवस्था परमात्म अवस्था है।

मिथ्यात्व में रमण करते हुए, मिथ्यात्व में परिभ्रमण करते हुए अनादिकाल से हमने समय व्यतीत किया है, किंतु यह बोध नहीं हो पाता है कि शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है।

यह बोध नहीं होने का क्या कारण है?

हमने ये बातें बहुत बार सुनी हैं कि शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। हम अभी भी मानते हैं कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह मानना है। अनुभूति नहीं। अनुभव दशा महत्वपूर्ण है। हमें उसकी अनुभूति हुई या नहीं हुई?

(श्रोता- अनुभूति हुई)

एक सुना हुआ ज्ञान है और एक अनुभूति का ज्ञान है। अनुभूति से प्राप्त ज्ञान को जल्दी से कोई मिटा नहीं पाएगा। अनुभूति कई बार स्वत: होती है, कई बार अभ्यास से होती है और कई बार परोपदेश से होती है। दूसरे से मैंने सुना और अपने भीतर झाँका।

एक बात है रामायण की। सीता का हरण हो गया। राम, सीता को ढूँढते रहे। ढूँढते-ढूँढते उनका सुग्रीव से मिलन हो गया। सुग्रीव ने राम को आश्वासन दिया कि हम सीता की खोज करने में सहयोग करेंगे। सीता की खोज करने के लिए अनेक ग्रुप बनाकर विभिन्न दिशाओं में आदमी भेजे गए। अंगद, हनुमान और जामवंत का एक ग्रुप था। कहते हैं कि चलते-चलते वे समुद्र के किनारे पहुँच गए पर सीता नहीं मिल पाई। सीता का कोई पता नहीं पड़ा। उनका लक्ष्य था कि सीता की खोज किए बिना हम वापस लौटकर नहीं जाएंगे। कहीं-न-कहीं उनकी खोज करनी ही है।

समुद्र को पार करना आसान काम नहीं था। वे दिग्मूढ़ अवस्था में आ गए कि क्या किया जाए। इतने में जामवंत को एक बात याद आई। जामवंत ने हनुमान से कहा, हनुमान! समुद्र को पार करने की ताकत तुम्हारे भीतर है, किंतु तुम्हें श्राप मिला हुआ है, इस कारण से तुमको यह याद नहीं आ रहा। तुम अपनी शक्ति को जगाओ।

कहते हैं कि यह सुनकर हनुमान की शक्ति जागृत हो गई और उन्होंने समुद्र पार किया। यह परोपदेश से हुआ। दूसरे का उपदेश, दूसरे की बात सुनने

से अपनी शक्ति ज्ञात हो पाई।

तीर्थंकर भगवान, महावीर भगवान ने इंद्रभूति गौतम को बोध दिया और उनके भीतर का ज्ञान प्रकट हो गया। कभी वह ज्ञान स्वत: हो जाता है और कभी दूसरों के उपदेश से जागृत हो जाता है। हमारे भीतर भी वह जागृति पैदा हो। चाहे उपदेश से उसको प्रकट करें या अभ्यास से करें, किंतु अनुभव करें। अनुभव करने के लिए हमें भीतर देखना पड़ेगा। शांत भाव से बैठकर अनुभव करें कि मेरे भीतर क्या स्पंदन हो रहा है, मेरे भीतर क्या संवेदन हो रहा है! अनुभव करेंगे तो भीतर स्पंदन होता नजर आएगा। यह स्पंदन तभी तक होता है, जब तक शरीर में आत्मा होती है। आत्मा शरीर से अलग हो जाएगी तो स्पंदन नहीं होगा। अनुभव नहीं होगा।

अनुभव कराने वाला कौन है? अनुभूति कराने वाला शरीर है या आत्मा?

(श्रोता- अनुभव कराने वाली आत्मा है)

शरीर को अनुभूति नहीं होती। छह प्रकार के द्रव्य बताए गए हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल। जितने भी पदार्थ हैं, उनमें संवेदन केवल आत्मा में है। अजीव में संवेदन नहीं है। पुद्गल में संवेदन नहीं है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल में भी संवेदन नहीं है। संवेदन एकमात्र जीवात्मा में है। सभी पदार्थों की अपनी-अपनी भिन्नता है। पुद्गल में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श होता है। धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय में रंग, वर्ण, स्पर्श नहीं होता। हम जो रंग-रूप, वर्ण आदि देखते हैं, वह शरीर का है। किसी प्रकार की गंध भी शरीर से आती है, आत्मा से नहीं। रस और स्पर्श भी पुद्गल के गुण हैं, पुद्गल के धर्म हैं। अन्य किसी भी पदार्थ में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नहीं होता। सभी पदार्थ अपने आप में भिन्न-भिन्न हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय भिन्न हैं। वैसे ही पुद्गल भी अपने आप में भिन्न है और जीव भी भिन्न है। अनादिकाल से जीव और पुद्गल का सम्बन्ध बना हुआ है। दोनों एक-दूसरे के साथ रहे हुए हैं। जीव शरीर धारण करता है। एक क्षण आता है जब शरीर छूट जाता है, किंतु चेतना मौजूद रहती है। चेतना दूसरी जगह चली जाती है, दूसरा शरीर बना लेती है।

आत्म अर्पण करने से एक फायदा यह होता है कि हमारे भीतर संवेदन शक्ति सशक्त हो जाती है। हमारे भीतर ज्ञानचेतना का प्रादुर्भाव हो जाता है। वह विराट रूप धारण करने वाला हो जाता है। जैसे कोई बूँद समुद्र में मिलने के बाद बूँद नहीं रहती, वैसे ही हमारी आत्मा विराट रूप को प्रकट कर पाएगी।

किससे कर पाएगी?

परमात्म भाव से। परमात्म भाव तब जगेगा जब हमें उसकी पहचान होगी। हमने कभी परमात्म भाव जगाने का प्रयत्न किया क्या? कभी सोचा तो होगा, किंतु मालूम नहीं होगा कि किस विधि से परमात्म भाव प्रकट करें। परमात्म भाव प्रकट करने के लिए हमें स्वयं को विलीन करना होगा। अपने अहं को विलीन करना पड़ेगा।

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

सुमतिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों में अपने आपको अर्पित कर दो। सोच लो कि मेरा कुछ भी नहीं है। संपादक डॉ. नेमीचंद जैन ने आचार्य श्री नानालाल जी पर ग्रंथ लिखा। उसमें उन्होंने आचार्य श्री के दीक्षा स्थान कपासन की परिभाषा करते हुए लिखा 'क: पार्श्व: न:' अर्थात् जिसके पास कुछ भी नहीं है। यह एक सामान्य बात हो गई। उसका दूसरा अर्थ इस प्रकार किया- 'क: पार्श्व: न: ?' प्रश्न चिह्न लगा दिया अर्थात् जिसके पास क्या नहीं है। दोनों में फर्क क्या है?

पहला अर्थ हुआ; कुछ भी नहीं है और दूसरा अर्थ हुआ; क्या नहीं है? अत: जब हम कुछ में होते हैं तो हमारे पास कुछ भी नहीं होता।

एक आदमी ने लाखों-करोड़ों डॉलर कमा लिए। क्या है उसके पास?

(श्रोता- कुछ है उसके पास)

जाते हुए अपने साथ क्या ले जाएगा?

(श्रोता- कुछ भी नहीं ले जाएगा)

फिर किसलिए रामायण करना? फिर किसलिए झम-झम करना? कभी सोचा कि इतनी उलझनें हम क्यों पैदा कर रहे हैं? कोई कितना भी धनाढ्य हो जाए, साथ में कितना ले जाएगा?

शालिभद्र अपनी सम्पत्ति साथ में ले गया क्या?

(श्रोता- नहीं ले गया)

जब तक वे शालिभद्र के रूप में थे अपार सम्पत्ति थी। घर में, मकान में रत्न जड़े हुए थे। जगमग हो रही थी। अपार सम्पत्ति को छोड़कर वह साधु बने।

क्यों बने साधु?

बहुत गहन बात है कि साधु क्यों बने। कुछ तो उनको अनुभव हुआ होगा। उन्होंने जान लिया कि यह मेरे साथ नहीं चलेगा। यह मेरा नहीं है। यह बोध जब अनुभूति में गहरा उतर जाता है फिर उसके साथ लगाव नहीं रहता। जब तक केवल शाब्दिक ज्ञान होगा, तब तक वह हाथ से छूटेगा नहीं। छोड़ देने पर भी नहीं छूटेगा। छोड़ना चाहने पर भी मन उसको बार-बार पकड़ेगा।

एक व्यक्ति की शराब पीने की आदत पड़ गई। आजकल कई लोग चाय को स्टेटस समझते हैं। सोचते हैं कि नहीं पीएंगे तो अपमान होगा कि कैसा पुरातनपंथी है। यह लत है और आत्मिक गुण का ह्रास करने वाली है। नशा, नशा होता है।

खैर, उस व्यक्ति के शराब पीने की आदत से घर वाले परेशान रहते थे। उनके मन में आता कि यह शराब-सिगरेट नहीं पीए। पत्नी ने, बेटे ने उसे कई बार समझाया, किंतु उसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। कह दूँ कि चौपड़े घड़े छाँट नहीं लगी। कोई असर नहीं पड़ा। वह बोलता जरूर कि कोशिश करूँगा, किंतु जैसे ही 'बार' के सामने से निकलता, उसके पैर उसमें चले जाते। काफी प्रयत्न किए गए, किंतु सकारात्मक परिणाम नहीं आया। पत्नी ने सोचा कि किसी मनोचिकित्सक से राय लेनी चाहिए। पत्नी मनोचिकित्सक के पास पहुँची और अपने पति की बात बताई।

मनोचिकित्सक ने कहा, मेरे पास ले आओ मैं उसकी शराब छुड़ा दूँगा।

पत्नी ने कहा, ऐसे लाऊँगी तो आएंगे नहीं। मैं यदि कहूँगी कि आप डॉक्टर के पास चलो आपकी शराब छुड़वानी है तो नहीं आएंगे। उसने डॉक्टर को समझाया कि मैं बहाना बनाकर पति को लाऊँगी, अपनी बीमारी बताकर लाऊँगी। यहाँ लाने पर आप मेरी बीमारी की चर्चा करना और धीरे-धीरे चर्चा करते हुए शराब की बात कर लेना। ऐसा हो तो काम बन सकता है।

डॉक्टर ने कहा, ठीक है।

पत्नी ने घर जाकर पति से कहा कि मुझे डॉक्टर को दिखाना है, मेरे साथ चलना होगा तो पति ने कहा, चलो चलते हैं। दोनों चले गए डॉक्टर के पास।

पत्नी के विषय में डॉक्टर ने चर्चा चालू की क्या बीमारी है, क्या नहीं है। पत्नी से जानकारी लेते-लेते ही डॉक्टर ने उसके पति से पूछ लिया कि सर आपको तो कोई तकलीफ नहीं है?

उसने कहा मुझे कोई तकलीफ नहीं है। फिर चर्चा चलते-चलते शराब की होने लगी। डॉक्टर शराब के दुर्गुण बताने लगा। डॉक्टर ने शराब के इतने दुर्गुण बता दिए कि सुनने वाले के मन में नफरत हो जाए। डॉक्टर की बात सुनकर शराबी के मन में पकड़ थोड़ी ढीली पड़ी, किंतु वह पक्का था। मन ही मन में वह सोचने लगा कि भले ही डॉक्टर कितना ही प्रयत्न करे मैं शराब छोड़ने वाला नहीं हूँ। डॉक्टर ने काफी प्रयत्न किया। अंततोगत्वा महिला के पति के मुँह से शब्द निकल गया कि आप जो कह रहे हो, मैं समझ रहा हूँ। अब से मैं शराब नहीं पीऊँगा। वह डॉक्टर के पास से सीधा दुकान चला गया। शाम को लौट रहा था। शराब की तड़प हो रही थी, इच्छा हो रही थी। शराब पीने की बात मन में आ रही थी। मन में संकल्प चालू हो गया कि नहीं, मुझे आज शराब नहीं पीनी है। आज मैंने डॉक्टर को वचन दिया है, मैंने डॉक्टर से कहा है कि आज शराब नहीं पीऊँगा। सुबह की कही बात शाम को ही कैसे बदल दूँ! मेरा भी कुछ संकल्प है। चलते-चलते एक रेस्टोरेंट के सामने से निकला तो आँख उधर गई, किंतु सोचा कि मुझे आज शराब नहीं पीना। मैंने डॉक्टर को वचन दिया है।

उसका मन एक बार शराब पीने के लिए दौड़ रहा है और फिर सोचता है कि मैंने वचन दिया है कि आज शराब नहीं पीऊँगा। वह पाँच-सात कदम आगे बढ़ा और एक रास्ता निकाल लिया। वह अपने मन को शाबासी देने लगा। कहने लगा कि वाह! तुमने अपने वचन का निर्वाह कर लिया। अपने वचन की रक्षा कर ली, इसके लिए तुम्हें पुरस्कृत करना चाहिए। उसने अपने आप को कैसे पुरस्कृत किया?

वह रेस्टोरेंट पर गया और दो पैग पीकर घर पहुँचा।

(श्रोतागण हँसने लगे)

हँसने की बात नहीं है। यह बात हम पर लागू होती है। यहाँ व्याख्यान

सुनते-सुनते वैराग चढ़ता है तो सोचते हैं कि ऐसा नहीं करना, वैसा नहीं करना, यह नहीं करना, वह नहीं करना और बाहर निकलते ही मन बदल जाता है। वैराग खत्म हो जाता है।

नमिराज को बोध हुआ। पहले वे भी बड़े दु:खी हो रहे थे। शरीर में भयंकर वेदना हो रही थी। बहुत सारे उपाय किए गए, बहुत सारे डॉक्टर आए, किंतु कोई भी इलाज कारगर नहीं हो रहा था। जब तक सातावेदनीय कर्म का योग नहीं बनेगा, तब तक साता नहीं उपझेगी, जब तक असातावेदनीय कर्म रहेगा, तब तक असाता रहेगी। भले कितनी ही दवाइयाँ दे दें, रोग समाप्त नहीं होगा। समाधान नहीं होगा। समाधान एक ही है- मन को मोड़ना। यदि मन को मोड़ लें, सोच लें कि यह शरीर मेरा नहीं है, बीमारी शरीर को हो रही है, मुझे नहीं, तो सांत्वना मिलेगी। तो सुकून मिलेगा। नमिराज कंगन की आवाज सुनकर समझ गए कि जहाँ बहुजन होते हैं वहाँ उलझन आती है। यह समझकर वे आत्मभाव में लीन हो गए। आत्मभाव में लीन हुए तो वेदना समाप्त हो गई।

अनाथी मुनि की हम बात सुनते हैं। उनके शरीर में कितनी वेदना हो रही थी? दो हजार भाले एक साथ आँखों में चुभने जितनी वेदना हो रही थी, किंतु जैसे ही एक संकल्प बना कि वेदना शांत होगी तो 'खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं' अर्थात् मैं अणगार धर्म को स्वीकार कर लूँगा, वैसे ही वेदना शांत हो गई।

किसके कारण से वेदना शांत हुई?

शरीर के भाव से ऊपर उठ गए कि अब मुझे शरीर की देख-रेख नहीं करनी है। ऐसे बहुत सारे उदाहरण हैं।

सनत्कुमार चक्रवर्ती को 16-16 महारोग पैदा हो गए पर शरीर का भाव जैसे ही हटाया उनकी वेदना शांत हो गयी। फिर वे पीड़ित नहीं रहे। दु:खी नहीं रहे। भले ही शरीर रोगमुक्त नहीं हुआ, किंतु उनको उसका कोई दु:ख नहीं है। वे पीड़ित नहीं हैं। दु:खी नहीं हैं। यह शरीर मेरा नहीं है, यह भाव आते ही शरीर में चाहे कितनी भी पीड़ा हो रही हो वह सताएगी नहीं।

भारत में प्रतिदिन हजारों एक्सीडेंट होते होंगे, किंतु हमें कोई पीड़ा होती है क्या? रोज अखबार में एक्सीडेंट की खबर आती है, किंतु हमें कोई पीड़ा होती है क्या? हमें क्या लेना-देना। हमारा कोई रिलेशन नहीं है तो हमें

पीड़ा नहीं होती, किंतु किसी नजदीकी का एक्सीडेंट होता है तो फर्क पड़ता है।

पड़ता है या नहीं पड़ता?

(श्रोता- फर्क पड़ता है)

क्योंकि उसके साथ सम्बन्ध है। रिलेशन है। उसके साथ रिलेशन नहीं होगा तो दु:ख नहीं होगा। कोई पीड़ा नहीं होगी। उसका दु:ख, दु:खी नहीं करेगा। पीड़ित नहीं करेगा। वैसे ही अपने शरीर के साथ सम्बन्ध छोड़ देने पर शरीर की पीड़ा दु:खी नहीं बनाएगी। शरीर की वेदना पीड़ित नहीं करेगी।

एक आदमी ने विशाल बंगला बनाया और बेच दिया। बेचने के बाद भूकम्प आया और बंगला नष्ट हो गया। जिसने बंगला बनाया था उसको उससे बड़ा लगाव था, किंतु बेचने के बाद वह लगाव नहीं रहा। अब उस बंगले का कुछ भी बिगड़े उसे कोई लेना-देना नहीं है। उसी तरह शरीर से दूरी बनेगी, यह हो जाएगा कि यह शरीर मेरा नहीं है तो उसकी पीड़ा हमें पीड़ित नहीं करेगी। ऐसा होना असंभव नहीं है, कठिन है।

कठिन क्यों है?

पत्नी का वियोग हो जाए तो आदमी को सदमा लगता है या नहीं?

(श्रोता- सदमा लगता है)

कितने दिन का पत्नी के साथ सम्बन्ध था? पत्नी के साथ कितने वर्षों से रहता था?

40, 50, 60, 70, 80 साल का सम्बन्ध रहा होगा। 80 साल के सम्बन्ध से वियोग हुआ, तो मन गमगीन होता है। वह अभी मन से निकली नहीं है, मन को सदमा पहुँचा रही है। मन नहीं लगता। अकेलापन महसूस होता है।

शरीर का सम्बन्ध कितने समय से है? शरीर के सम्बन्ध को हम एकदम से कैसे छोड़ देंगे। बहुत कठिन है। अनादिकाल से जिसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है उसको छोड़ पाना आसान काम नहीं है, किंतु ज्ञान चेतना जागृत हो जाए तो कोई कठिनाई की बात नहीं है। मैंने अभी नमिराज की बात बताई, अनाथी मुनि की बात बताई, सनत्कुमार चक्रवर्ती की बात बताई, उनका भी शरीर के साथ अनादिकाल से सम्बन्ध था, किंतु वे जगे या नहीं?

**आत्मा जाग गयी म्हारी रे, आत्मा जाग गयी म्हारी।**
**पुद्गल संग में फँसी चेतना, है तन सूँ न्यारी।।**

किसमें फँस गई चेतना?

पुद्गल के प्रेम में फँस गई। पुद्गल के आकर्षण में फँस गई। पुद्गल की प्रीत में फँस गई। आज भी हमारी पुद्गल प्रीत हट नहीं रही है या हम उसको छोड़ नहीं पा रहे हैं। उसके साथ हमारी घनिष्ठता है। बहुत लम्बे समय से एकमेव स्थिति बनी हुई है। उस अवस्था को एकदम छोड़ पाना आसानी से संभव नहीं होगा।

कब संभव होगा?

नमिराज, सनत्कुमार चक्रवर्ती, अनाथी मुनि की तरह हमारा जागरण हो जाएगा तो उससे निकलने में देरी नहीं लगेगी।

शालिभद्र की बात भी मैं बोल गया था। सम्पत्ति का कोई माप नहीं। अथाह सम्पत्ति। रत्न कम्बल के व्यापारियों ने जब उसके मकान, बिल्डिंग को देखा, उसके खजाने को देखा तो सोचने लगे कि यह राजा का घर है या सेठ का! अथाह सम्पत्ति थी, किंतु छोड़ने में कितनी देर लगी? हमें हमारी सम्पत्ति छोड़ने में कितनी देर लगती है? हम छोड़ ही नहीं पा रहे हैं। शालिभद्र 32 पत्नियों को भी छोड़ने में समर्थ हुए। जब मन में बोध पैदा हो जाएगा, आत्मा जागृत हो जाएगी तो स्थितियाँ अपने आप बदलती चली जाएंगी।

ट्रेन, कार या बस में सफर करते समय खिड़की से दिखता है कि बहुत सारी चीजें पीछे छूटती जा रही हैं। उनसे हमारी पकड़ होती है क्या?

(श्रोता- पकड़ नहीं होती)

वैसे ही धन-दौलत, सम्पत्ति भी छूट जाएगी।

छूटेगी तब, जब चेतना जगेगी। चेतना का जगना ही आत्म अर्पणा है।

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

सुमतिनाथ भगवान के चरणों में, तीर्थंकर भगवान के चरणों में, सिद्ध भगवान के चरणों में, अरिहंत भगवान के चरणों में हमारी आत्मा अर्पित हो जाएगी, समर्पित हो जाएगी तो दृष्टि का बदलाव हो जाएगा। जब तक दृष्टि नहीं बदलेगी, तब तक समर्पित होना बहुत मुश्किल है। तब तक समाधान होना मुश्किल है। इसलिए पहले यह अभ्यास करें कि शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है। अभी शरीर को ग्रहण कर रखा है, किंतु इसको छोड़ना है। यह छूटेगा।

छूटेगा या नहीं?

(श्रोता– छूटेगा)

हम चाहेंगे तो छूटेगा या बिना चाहे छूट जाएगा?

(श्रोता– हम चाहेंगे तो छूटेगा)

चाहने पर छूटेगा, किंतु इसको बनाए रखना चाहते हैं या छोड़ना?

शरीर को बनाए रखना चाहते हैं। शरीर को बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार की दवाइयों का सेवन करते हैं। विभिन्न प्रकार की सुरक्षा करते हैं। शरीर को छोड़ना नहीं चाहते, किंतु यह छूटेगा। शरीर को छूटना ही है। यदि जागृत अवस्था में इसे छोड़ेंगे तो कोई पीड़ा नहीं होगी। हमारा बोध जागृत हो, ऐसा हमारा प्रयत्न हो। ऐसा होगा तो धन्य बनेंगे। आज संपन्नता श्री जी म. सा. की 28 की तपस्या है। इतना कहते हुए विराम।

10 दिसम्बर, 2022
पौषधशाला

# 16

# किसे बनाएं अपना सहयोगी

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा,**
**दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी।**

सुमति और कुमति दोनों सहोदर हैं। दोनों की उत्पत्ति एक ही जगह होती है। दोनों का प्रादुर्भाव मन में होता है। संसार में बनाए रखने का और संसार से तिराने का काम भी इन्हीं का है। संसार भरा हुआ है कुमति से और भरा हुआ है सन्मति से। अभाव सन्मति का भी नहीं है और कुमति का भी नहीं। कुत्सित मति भी अपना अस्तित्व बनाए हुई है और सन्मति का भी अस्तित्व बना हुआ है।

यह विचारणीय बिंदु है कि हम किसको पसंद करते हैं! हमारी पसंद क्या है!

हम चाहते तो यही हैं कि हमारी मति सन्मति रहे, पर कब उसमें कुत्सित मति का योग आ जाता है, कुत्सित भावों का योग आ जाता है मालूम ही नहीं पड़ता। सुप्त अवस्था में ऐसा ही होता है। जागृत अवस्था में व्यक्ति सजग हो सकता है, सावधानी रख सकता है कि मेरे भीतर कुमति का प्रवेश नहीं हो।

प्रश्न है कि क्या करती है कुमति और क्या करती है सुमति? क्या करती है कुत्सित मति और क्या करती है सन्मति?

तनाव, टेंशन, चिड़चिड़ापन, उद्वेग, आवेग देन है कुमति की। यह कुमति की देन है, कुत्सित मति की देन है। कौन-कौन तनाव में नहीं है, कौन-कौन आवेग में नहीं है? किसे-किसे उद्वेग पैदा नहीं हो रहा है, किस-किसको चिड़चिड़ापन नहीं होता?

प्राय: सभी लोग तनाव में हैं। यह कुमति की देन है। सन्मति, सद्बोध और सत्य का पाठ पढ़ाती है। जोड़ने का पाठ पढ़ाती है। सहअस्तित्व का पाठ

पढ़ाती है। सहिष्णुता का पाठ पढ़ाती है। जैसे पृथ्वी सबको धारण करती है, सबको सहारा देती है, वैसे ही सन्मति आत्मिक उत्थान में सहारा देती है।

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

सुमतिनाथ भगवान की बात को हम एक बार गौण करते हैं। सन्मति का रूप ही लें। सन्मति को अपना समर्पण कर दो, सन्मति की शरण में चले जाओ, फिर कुमति वहाँ प्रवेश नहीं कर पाएगी। कुमति का द्वार बंद हो जाएगा, किंतु सन्मति की शरण स्वीकार करना भी मन को गवारा नहीं होता। उसके लिए मन तैयार नहीं होता। मन विविध आकर्षणों के प्रति आकर्षित होता है। मन को विविध आकर्षण चाहिए। नये-नये आकार चाहिए। जहाँ नयापन होता है वहाँ मन एकबारगी ताजगी अनुभव करता है। कुछ समय बाद उस नएपन से भी उसे बोरियत हो जाती है। वह पुन: नयापन ढूँढने के लिए दौड़ता है। थोड़े समय बाद वह नया भी पुराना हो जाता है।

होता है या नहीं होता?

नया, पुराना होता है और पुराना, जीर्ण होता है। जीर्ण से शीर्ण होता है और फिर टुकड़ा-टुकड़ा होता है, नष्ट हो जाता है। ये पुद्गल का पर्याय है। मन इन्हीं पर्यायों को ढूँढता रहता है। इन्हीं में जुड़ा रहता है इसलिए वह एक जगह समर्पित होकर रहने के लिए तैयार नहीं होता। मन को विविधता चाहिए, नवीनता चाहिए। नये-नये आकर्षण उसको प्रलोभित करते हैं। नये-नये आकर्षणों के लोभ से उसका मन प्रेरित हो जाता है।

बंधुओ! ये सारी सृष्टि का खेल है, किसी व्यक्ति का नहीं। सारे व्यक्तियों के लिए यह बात लागू होती है। हमारी मति भी कभी कुत्सित तो कभी सन्मति हो जाती है। मति ही पौषधशाला में ले जाने वाली होती है और मति ही कहती है कि क्या करोगे वहाँ जाकर। मति ही रोकने वाली बन जाती है। सन्मति और कुत्सित मति का खेल हम खेलते रहे हैं... खेलते रहे हैं... खेलते रहे हैं... ये सन्मति और कुमति हमको खेलाती रहती हैं।

कब तक खेलते रहना है? क्या हम फुटबॉल बने रहेंगे?

फुटबॉल को एक खिलाड़ी एक तरफ से अपने पाँव से ठोकर मारता है और दूसरा खिलाड़ी दूसरी तरफ से ठोकर मारता है। यही दशा सन्मति और कुत्सित मति के माध्यम से होती है। कभी सन्मति तो कभी कुत्सित मति मन

को धक्का लगाती है। मन इन्हीं दोनों की ठोकरें खा-खाकर समझ नहीं पा रहा है कि क्या किया जाए।

अभी आदित्य मुनि जी म.सा. ने सबको भावुक बना दिया। ऐसा खाका खींचा जैसे चलचित्र हमारे सामने ही चल रहा हो। आचार्यदेव पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने न केवल समता का उपदेश ही दिया वरन् जी कर बताया कि समता में कैसे जीना। भगवान महावीर ने जो सिद्धांत दिया, पहले उसको जीया। जीने के बाद उपदेश दिया। आचार्य पूज्य गुरुदेवश्री ने समता की बात कही। न केवल बात कही, बल्कि समता को जीया इसलिए उन्हें समता विभूति, समतायोगी जैसे विभूषणों से विभूषित किया गया। वैसे पूज्य गुरुदेव के लिए ऐसे सारे विशेषण ओछे पड़ेंगे, छोटे पड़ेंगे।

मैं बात मति की कर रहा था। सन्मति को हम आगे बढ़ाएं, सन्मति के साथ हमारा मन जुड़ा रहे। दुर्मति हमारे निकट नहीं आ सके। ऐसा हमारा प्रयत्न, ऐसा हमारा लक्ष्य सतत रहना आवश्यक है। सतत इसलिए कह रहा हूँ कि जैसे ही थोड़ी सुप्त अवस्था में जाएँगे, जैसे ही लापरवाह होंगे, झट से कुमति अपनी छाया डाल देगी। उसकी चपेट में आ सकते हैं। उससे बचने का एक ही उपाय है- सजग रहना।

कैसी होती है सन्मति?

दशवैकालिक सूत्र में उसे ऋजु बताया गया है। ऋजुमति यानी सरल मति। जो मति सरल होगी, वह सन्मति होगी। वह अच्छी दिशा में ले जाने वाली होगी। सरलता जैसे ही गौण होगी, कुटिलता प्रवेश कर जाएगी। कुटिलता मति को कुत्सित बनाने वाली बनेगी। ऋजुमति हमें साधना की ओर आगे बढ़ाती है। ऋजुमति कठिनाइयों से सामना कराने वाली होती है, किंतु कुमति, कुटिलमति एक बार धक्का देगी और पीछे खिसक जाएगी। सन्मति सदा खड़ी रहेगी। सदा सहारा देगी। सदा साथ देने वाली रहेगी। सरलता से मति सन्मति हो जाएगी। सरलता से मति सहज अवस्था में चलेगी। सहज अवस्था में भविष्य दृष्टा होगी। दर्पण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हमारी मति ही दर्पण का रूप बन जाएगी।

दर्पण क्या दिखाता है?

जो उसके सामने आता उसका चेहरा दिखा देता है। सन्मति भविष्य

का बोध कराने वाली बनती है। भविष्य में क्या होने वाला है, क्या हो जाएगा, उसका अहसास कराने वाली होती है, इसलिए हम सन्मति का सहारा लें। सन्मति की दिशा में हमारे कदम बढ़ें। हम सावधान रहें कि मेरी मति कुटिल अवस्था में न चली जाए, उसमें कुटिलता न आ जाए। कुटिलता थोड़ी देर के लिए अच्छी लगती है। थोड़ी देर के लिए बचाव करने वाली बन जाती है, किंतु सदा-सदा के लिए भय पैदा करने वाली होती है। कुटिलता कभी भी निर्भयता नहीं दे पाएगी और सन्मति कभी निर्भयता खोने नहीं देगी। सदा निर्भयता बनी रहेगी, इसलिए सन्मति की दिशा में हमारा कदम आगे बढ़ना चाहिए। हम प्रेरित हों, प्रेरणा लें।

बहुत सारे आख्यान-कहानियाँ हम पढ़ते-सुनते हैं। बहुत सारी कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं। सबका यदि निष्कर्ष और निचोड़ निकाला जाए, तो पता चलेगा कि जिन्होंने सन्मति का सहारा लिया उन्होंने अपनी नौका पार कर ली और जिन्होंने कुटिलता में अपनी मति को प्रवेश कराया वे अपने मनसूबों को कभी पूर्ण नहीं कर पाए। सन्मति की दिशा में हमारे कदम बढ़ें, ऐसा हमारा प्रयत्न होना चाहिए, ऐसा लक्ष्य होना चाहिए। यह लक्ष्य रहेगा तो कुटिलता हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगी। ऐसा लक्ष्य रहेगा तो मति सन्मति रहेगी, ऋजुमति रहेगी, सरल रहेगी और हम सही दिशा में आगे बढ़ेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

11 दिसम्बर, 2022
पौषधशाला

# 17

# प्रेरणा पाथेय बने

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा,**
**दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी।**

सारी अच्छाइयाँ सुमति से प्राप्त होती हैं और सारी बुराइयाँ दुर्मति से प्राप्त होती हैं। सुमति किससे प्राप्त होती है?

सहजता और सरलता से सुमति की पैदाइश होती है। मन पवित्र रहेगा तो बुद्धि पवित्र रहेगी। मन पवित्र नहीं रहेगा तो बुद्धि पवित्र नहीं हो पाएगी। बुद्धि को पवित्र बनाए रखना है तो मन को पवित्र बनाए रखना होगा। जीवन का संचालन करने वाली बुद्धि ही है। यदि बुद्धि न हो तो जीवन की गाड़ी आगे बढ़ना मुश्किल है।

ड्राइवर कैसा होना चाहिए? बुद्धि कैसी होनी चाहिए?

यह हम समझते हैं कि ड्राइवर कैसा होना चाहिए। रही बात बुद्धि की तो वह सही होनी चाहिए। सम्यक् बुद्धि होनी चाहिए। पवित्र बुद्धि होनी चाहिए। प्रश्न है कि पवित्रता कैसे प्राप्त करेंगे? पवित्रता की प्राप्ति होगी कैसे?

**सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं...**

उपायों को जानेंगे, सोचेंगे, समझेंगे और अमल में लाएंगे तो बुद्धि पवित्र हो पाएगी। यदि हमने जाना ही नहीं, सोचा ही नहीं, समझा ही नहीं तो कैसे पवित्रता रख पाएंगे। बुद्धि पवित्र रहती है सत् कार्यों से, अच्छे कार्यों से। अच्छे कार्य करते रहेंगे तो बुद्धि को पवित्र बनाए रखने में समर्थ बनेंगे। अच्छे कार्यों की तरफ ध्यान नहीं दिया तो अपनी बुद्धि को पवित्र बनाने में समर्थ नहीं हो पाएंगे।

महासती श्री सम्पन्नता श्री जी म.सा. की आज 31 की तपस्या है। तपस्या भी सन्मति का एक रूप है। तपस्या ज्वाला भी है और ज्योति भी। अभी आप सुन रहे थे आदित्य मुनि जी म.सा. से उपशम भाव के बारे में। उपशम

भाव को प्रधान करने वाली तपस्या ज्योति बन जाती है। उसी तप में उपशम भाव नहीं हो तो वह ज्वाला का रूप ले लेगी। वह तपस्या जलाने वाली हो जाएगी। ज्योति प्रकाश देती है और ज्वाला जला देती है।

हमको प्रकाश चाहिए या ज्वाला?

हम प्रकाश चाहेंगे, ज्योति चाहेंगे। मति यदि सही नहीं होगी तो तपस्या ज्वाला का रूप ले लेगी। मति को बहुत सावधानी से सजग रखना पड़ेगा कि वह दुर्मति नहीं हो, कुत्सित नहीं हो, गलत रास्ता पकड़ने वाली नहीं हो। यह लक्ष्य बनाना पड़ेगा और इसके लिए सतत सावधानी रखनी पड़ेगी।

सुमतिनाथ भगवान का नाम सुमति रखा गया। वे गर्भ में थे तो माता का मन, माता की मति सन्मति हो गई थी, इसलिए उनका नाम सुमति रखा गया। हमारे सामने भी बहुत सारे प्रसंग आ सकते हैं। उन प्रसंगों पर सही निर्णय सन्मति से हो पाएगा। दुर्मति से हम सही निर्णय नहीं कर पाएंगे। दुर्मति हमें भटकाने वाली बनेगी, वह हमें इधर से उधर चक्कर लगवा देगी और सही मंजिल तक पहुँचाने वाली नहीं बनेगी। हमारा लक्ष्य रहे कि हम सन्मति को सहेजें। सन्मति की सुरक्षा करें।

महासती सम्पन्नता श्री जी म.सा. ने सरदी के समय में मासखमण किया, 31 की तपस्या की। एक मासखमण चातुर्मास में किया। वैसे तपस्यारत लोगों के लिए सरदी-गरमी और चातुर्मास कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। उनके लिए सभी समय अनुकूल रहता है। मन बन जाता है तो सारी अनुकूलताएँ अपने आप उसमें जुड़ जाती हैं।

**'मन के हारे हार है और मन के जीते जीत'**

मन सही रहेगा तो अनुकूलता अपने आप प्राप्त होगी। व्यक्ति सारी कठिनाइयों को भी अनुकूल बना लेगा। मन सही नहीं रहेगा तो सुविधाओं को भी कठिन बना लेगा। हम प्रेरणा लें। प्रेरणा हमारा पाथेय बने और वह पाथेय हमें मंजिल दिलाने में सहयोगी बने। ऐसा हमारा लक्ष्य बनना चाहिए। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो हम धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

13 दिसम्बर, 2022
पौषधशाला

# 18

# सुखी जीवन का सूत्र

एक सूक्ति का हिस्सा है 'लाभो त्ति न मज्जेज्जा।' इसे आपने पहले भी सुना होगा।

यह सूक्ति किस समय उच्चरित होती थी?

(श्रोता– नाना गुरु के समय होती थी)

नाना गुरु के समय होती थी। वह सूक्ति अब दीवार पर आ गई। आनी चाहिए थी दिल में, पर नहीं आ पाई। दीवार पर सूक्तियाँ क्या काम आएंगी, दिल में आनी चाहिए।

**'लाभो त्ति न मज्जेज्जा'**

अर्थात् कोई भी लाभ हो जाए, गर्व नहीं करना। चाहे पद का लाभ हो जाए, चाहे धन का, चाहे पुत्र का लाभ हो जाए या जमीन का, चाहे जायदाद का लाभ हो जाए या आध्यात्मिक साधना का, गर्व नहीं करना। मद नहीं करना। अभिमान नहीं करना।

लाभ होने पर घमण्ड क्यों करना? लाभ किससे हुआ?

पुण्य कर्मों के योग से लाभ हुआ।

अहंकार, अभिमान, गर्व करने से किस कर्म का बंध होगा? पाप कर्म बंधेगा या पुण्य कर्म?

(श्रोता– पाप कर्म का बंध होगा)

चाहे धन का गर्व हो, चाहे परिवार का, चाहे जमीन–जायदाद का गर्व हो या आध्यात्मिक साधना का, इन सभी से नीच कर्मों का बंध होगा। नीच नामकर्म का बंध होगा, पुण्य कर्म का बंध नहीं होगा।

'लाभो त्ति न मज्जेज्जा' सूत्र का अर्थ है– लाभ होने पर मद नहीं करना। इसका अगला हिस्सा है– 'अलाभो त्ति ण सोयए।' इसका अर्थ है–

लाभ नहीं हुआ, मनोकामना पूर्ण नहीं हुई, मन तृप्त नहीं हुआ तो शोक नहीं करना। चेहरा लटकाना नहीं। चेहरा मुरझाना नहीं। यह विचार मत करना कि मैंने इतना प्रयत्न किया पर मुझे लाभ नहीं मिला।

दोनों सूत्रों में थोड़े शब्द ही हैं। ज्यादा शब्द नहीं हैं। इनमें प्रयुक्त थोड़े से शब्द दिल में उतर गए तो दिल हरा-भरा रहेगा। दिल मुरझाएगा नहीं। कुम्हलाएगा नहीं। जिसके दिल में ये सूत्र नहीं उतरे, वह छोटी-छोटी बातों में परेशान होगा। वह दुःखी होगा। वह तनाव में आएगा और जीवन के आनंद को खो देगा। वह जीवन का आनंद नहीं ले पाएगा।

मनुष्य जीवन, राजा जीवन माना गया है, किंतु मनुष्य के चेहरे को देखने पर, उसके दिल में उतरकर देखने पर लगता है कि मनुष्य से ज्यादा दुःखी कोई प्राणी नहीं है। तिर्यंच पशु, गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य जितने दुःखी नहीं होंगे।

मनुष्य ज्यादा दुःखी है या पशु ज्यादा दुःखी है?

(श्रोता- मनुष्य ज्यादा दुःखी है)

मनुष्य ज्यादा दुःखी है तो मनुष्य जीवन दुःख के लिए मिला क्या? दुःख पाने के लिए मनुष्य जीवन मिला क्या? हमने मनुष्य जीवन पुण्य से प्राप्त किया, दुःख भोगने के लिए नहीं। हम देख रहे हैं कि लोग दुःखी हैं, क्योंकि ये सूत्र उनके दिल में नहीं आए। ये सूत्र यदि दिल में आ गए होते तो दुःख नहीं होता। उनकी जिंदगी सदाबहार होती। जिन लोगों ने इन सूत्रों को अपना लिया, अपने दिल में उतार लिया, वह दुःख से मुक्त हो गया। कष्ट अलग चीज है, दुःख अलग चीज है। कष्टों से भी आदमी कभी दुःखी हो जाता है, कभी दुःखी नहीं होता। दुःख में संवेदना है, मन की पीड़ा है। कष्ट शारीरिक पीड़ा है। इनमें से एक सूत्र भी दिल में उतार लेने पर दवाइयाँ लेने की नौबत नहीं आएगी।

कई लोग कहते हैं कि डॉक्टर साहब! यह बीमारी, यह बीमारी है। उनकी बात सुन-सुनकर डॉक्टर उन बीमारियों की दवा लिखते रहते हैं। कई बार लिखते-लिखते कागज भर जाता है, किंतु कुछ डॉक्टर ऐसे भी होते हैं जो सारी हिस्ट्री सुनकर एक डोज दे देते हैं। जो काम बहुत सारी दवाइयाँ नहीं कर पातीं, वह काम एक डोज कर देती है। यह सूत्र एक डोज है। यह डोज एक बार दिल में पैठ गया तो उसे कोई दुःखी करने वाला नहीं बनेगा। कोई दुःखी नहीं

करेगा। हकीकत में दु:खी हम अपनी विचारधाराओं से होते हैं। हम अपने विचारों से दु:खी होते हैं। हमारे विचार कुछ अलग ही चलते हैं। हम जैसा चाहें वैसा नहीं होता, उससे हम दु:खी हो जाते हैं। बात स्पष्ट है, हम चाहें ही क्यों! अपने हाल में मस्त रहें।

देवता भी मनुष्य भव पाने के लिए लालायित होते हैं। देवता चाहते हैं कि मैं मनुष्य जन्म प्राप्त करूँ, मुझे मनुष्य जन्म प्राप्त हो। उनकी चाहत होती है कि अगला जन्म श्रावक का मिले तो बहुत अच्छी बात है। श्रावक के घर में जन्म नहीं मिले तो किसी श्रावक के घर में नौकर-चाकर के रूप में काम करने वाले के घर भी मिल जाए, क्योंकि ऐसा होने पर कभी-न-कभी तो साधु-संतों के दर्शनों का लाभ मिल पाएगा।

यह कामना कौन कर रहे हैं?

(श्रावकों ने कहा- देवता कर रहे हैं)

देवता, मनुष्य से ज्यादा सुखी हैं या दु:खी हैं?

(श्रोता- मनुष्य से ज्यादा सुखी हैं)

वैभव के अनुपात से देवता, मनुष्य से ज्यादा सुखी हैं। मानसिक धरातल से भी वे मनुष्य जितने दु:खी नहीं हैं। फिर भी देवता, मनुष्य जन्म पाना चाहते हैं तो क्यों? क्या वे दु:खी होने के लिए मनुष्य बनना चाहते हैं? उत्तर स्पष्ट है। कोई दु:ख नहीं चाहता। यदि हमसे कोई प्रश्न पूछे कि हमने दु:ख मोल क्यों लिया तो क्या उत्तर होगा?

दु:ख, दूसरों की पॉकेट में हाथ डालने जैसा है। दूसरों ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, मेरा अपमान किया, मेरा तिरस्कार कर दिया; यही दु:ख है ना! हमने दूसरों की पॉकेट में हाथ नहीं डाला होता तो दु:खी नहीं होते। हम अपने आपमें जीते तो दु:खी नहीं होते। हम दूसरों को देखकर जीते हैं तो दु:खी होते हैं। पराई थाली में घी ज्यादा दिखता है। कहावत है ना 'पराई थाली में घी घणो।' दु:ख हो या नहीं, किंतु आदमी का स्वभाव है। अत: ये सूत्र अपना लो।

**'लाभो त्ति न मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोयए'**

लाभ हो तो मद नहीं करना और लाभ नहीं हुआ तो शोक नहीं करना। प्रयत्न करने के बावजूद, पुरुषार्थ करने के बाद भी यदि लाभ नहीं हुआ तो कोई शोक नहीं। यह सूत्र जीवन को नई दिशा देने वाला हो सकता है। यह सूत्र मनुष्य

जीवन को आनंद से सराबोर कर देने वाला हो सकता है। यह दवाई घोटकर ले लें। कुछ दवा घोट कर ली जाती है। घोटकर लेने से वह शरीर में रम जाती है। हम घोटकर इस सूत्र को लेंगे अर्थात् अनुप्रेक्षा करते रहेंगे, अपने दिल को देखते रहेंगे, उसकी अनुभूति करेंगे तो जीवन का आनंद प्राप्त करेंगे।

कल अध्यक्ष साहब और मंत्री जी आए। उन्होंने कहा, म.सा. पौष दशमी यहीं करना, रविवार यहीं करना। मैंने कहा, देखते हैं, कैसे क्या होता है। उन्होंने कहा हम एकासना करेंगे, पाँच-पाँच सामायिक करेंगे। महासती सुमित्रा श्री जी म.सा. ने फरमाया कि पौष दशमी तक यहीं विराजें। महासतियों में ग्यारह तेले, एक अठाई और भी काफी तपस्या होगी। किसकी बात ठोस है? एकासना वालों की बात ठोस है या तेले वालों की? ग्यारह तेले में कितने एकासने हो जाएंगे? एक उपवास में चार एकासना होते हैं। एक तेले में कितने एकासना हो जाते हैं?

25 उपवास जितनी बात बनती है। और 25 उपवास में कितने एकासने हो जाते हैं? 100 एकासने हो जाते हैं। ग्यारह तेले में कितने एकासने हो जाएंगे? इतने एकासने बहुत मुश्किल हैं।

(आशा जी बोरदिया ने कहा- हो जाएंगे भगवन्)

हो जाएंगे तो करना। दशमी तो आपकी रहेगी ही। संत यहाँ रहें या नहीं, किंतु दशमी तो रहेगी। तिथियाँ नहीं हट सकतीं।

यह सूत्र हमारे दिल में आना चाहिए। संत रहे तो भला और नहीं रहे तो भी भला। जिंदगी हमको जीनी है। यह निश्चित है कि संत सदा नहीं रहेंगे। संत सदा विराजमान नहीं होते हैं। यह तो आपका सौभाग्य है कि महासती पंकज श्री जी म.सा. का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं होने के कारण आपके यहाँ पर विराज रही हैं। शांतप्रभा जी म.सा. व शासन दीपिका सुशीलाकँवर जी म.सा. का भी उदयपुर में विराजना हो रहा है। पुण्य योग से इनका सान्निध्य मिल रहा है। कई लोग दर्शन के लिए तरसते हैं कि हमारे यहाँ संत-सतियाँ जी आ जाएं। यहाँ कोठारी जी की हवेली में कितनी सतियाँ जी हैं?

(आशा जी बोरदिया ने कहा- 31 सतियाँ जी हैं)

आपने कितनी सतियाँ जी के दर्शन किए?

(आशा जी ने कहा- कल दर्शन नहीं किए)

कल नहीं किया बाकी रोजाना सभी सतियाँ जी के दर्शन करती हैं क्या?

(आशा जी ने कहा– लगभग कर लेती हूँ)

(एक श्राविका ने कहा– सेक्टर चार में भी सतियाँ जी हैं)

'दूर के डूँगर सुहावना लागे।' सामने वाला दिखता नहीं, दूर वाला दिखता है। बाहर गाँव संतों के दर्शन करने जाते हैं पर गाँव में संत आ गए तो दर्शन करने की फुरसत भी मिलेगी या नहीं, पता नहीं। मिलने वाले को तो मिल जाती है। जिसका पुण्य होगा उसको तो फुरसत मिल जाएगी। जिसका पुण्य उदय में नहीं आता, उसको थाली में परोसा हुआ भोजन भी नसीब नहीं होता। पुण्य बढ़ाने वाला जीवन में प्रसन्नता देने वाला एक सूत्र हमें अपने दिल में उतारना है। कौन–सा सूत्र है?

**लाभो त्ति न मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोयए**

लाभ हो जाए तो अहंकार नहीं करना, मद नहीं करना, गर्व नहीं करना और यदि लाभ नहीं हुआ तो शोक नहीं करना।

सेक्टर चार में चातुर्मास सम्पन्न हुआ। उसके बाद सेक्टर पाँच में गए। उस समय सेक्टर ग्यारह, सेक्टर चौदह में जाने की स्थिति नहीं बनी। आदित्य मुनि जी म.सा. को उधर भेजा। सेक्टर ग्यारह के लोग आकर कहने लगे कि दीक्षा सेक्टर ग्यारह में होनी चाहिए। दीक्षा नवरत्न में होने के बाद विनती करने लगे कि बड़ी दीक्षा सेक्टर ग्यारह में होनी चाहिए। मैंने सोचा, कुछ नहीं तो पौष दशमी तो सेक्टर ग्यारह में कर दें। पौष दशमी की स्थिति वहाँ बन सकती है और यहाँ आदित्य मुनि जी का विराजना हो सकता है। यदि अनुकूलता रही तो कुछ संतों का सर्वऋतु विलास पधारना हो सकता है।

15 दिसम्बर, 2022
पौषधशाला

# 19

# परिश्रम का परिणाम

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी...**

प्रश्न है कि परमात्मा का स्मरण किसलिए किया जा रहा है? हमने परमात्मा को देखा नहीं है, महावीर भगवान को देखा नहीं है, पार्श्वनाथ भगवान को देखा नहीं है, फिर हमारी प्रीत उनसे कैसे लगी? क्यों लगी? उनका स्मरण किसलिए करना चाहिए? उनकी भक्ति करने के पीछे हमारा उद्देश्य क्या है?

सभी का एक ही उद्देश्य हो, यह जरूरी नहीं है। अलग-अलग लोगों के भिन्न-भिन्न उद्देश्य हो सकते हैं। कुछ लोग यह विचार करते हैं कि भगवान का स्मरण करेंगे तो लोगों में हमारी छवि अच्छी बनेगी। भले ही वह आचरण भगवान की बातों के विपरीत कर रहा हो। कुछ लोग यह विचार करते हैं कि भगवान का नाम लेंगे तो हमारे दु:ख दूर हो जाएंगे, टल जाएंगे। कुछ लोग इसलिए भगवान की भक्ति करते हैं कि मेरा व्यापार अच्छा चले। घर-परिवार अच्छा चले। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो परमात्मा बनने के लिए परमात्मा का स्मरण करते हैं।

**तुझमें-मुझमें भेद न पाऊँ, ऐसा हो संधान।**

परमात्मा और अपने बीच की भिन्नता को दूर करने के लिए क्या हम संधान कर रहे हैं, क्या खोज कर रहे हैं? यदि 'तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है' अर्थात् परमात्मा का जैसा रूप है वैसा ही स्वरूप हमारा है, फिर दूरी क्यों है?

खैर, हमने दूध को देखा होगा। दूध में घी दिखता है या नहीं दिखता?

(श्रोतागण- नहीं दिखता)

सपरेटा दूध से तो मलाई निकाल ली जाती है। उस दूध का दही जमाने से, बिलौना करने से घी नहीं निकलेगा। सामान्यत: दूध में घी रहता है, किंतु वह दिखता नहीं है। किसी ने तो खोज की होगी कि दूध में घी है, उस घी

को निकालना है।

इसी तरह सोने की बात ले लें। सोना कहाँ से आया? भारत में सोना कहाँ से आ रहा है?

(श्रोता- अफ्रीका और दुबई से आ रहा है)

भारत में कहीं से भी आ रहा होगा, किंतु मूल रूप से जमीन से ही आया ना!

हीरा कहाँ से आया?

(श्रोता- हीरा जमीन से आया)

किसी को मालूम था कि हीरा जमीन में भरा हुआ है?

किसी की पारखी आँख गई। किसी ने कोई ऐसा पत्थर देखा, जिसमें हीरे निकल गए। वया साहब! वया साहब ही हैं ना स्कूल चलाने वाले!

(श्रोता- हाँ, वया जी ही हैं)

वया जी, आपने कितने हीरे प्राप्त कर लिए?

बच्चों को पढ़ाने का काम हीरा तैयार करने का काम ही है।

क्यों, ठीक कहा या नहीं?

(श्रोता- ठीक कहा)

किंतु माता-पिता का लक्ष्य उनको हीरा बनाने का नहीं है। उनका लक्ष्य मशीन बनाने का है। अधिकांश माता-पिता चाहते हैं कि मेरा बेटा बड़ा बनकर ज्यादा पैसा कमाने वाला बने। यहाँ कितने माता-पिता ऐसे हैं जो चाहते हैं कि हमारा बच्चा बड़ा होकर साधु बने?

(कुछ श्रावकों ने हाथ खड़े किए)

आप साधु नहीं बने तो वे कैसे बनेंगे? आप साधु नहीं बने तो वे उस रास्ते कैसे जाएंगे? आपके बाप-दादा ने दीक्षा ली होती तो आप लेते। आप आगे बढ़ते तो आपका बेटा भी आगे बढ़ता।

कहते हैं कि रामदेव जी की समाधि हुई। रामदेव जी ने समाधि ली तो कहा कि समाधि को वापस मत खोदना। वापस नहीं खोदोगे तो पीढ़ी दर पीढ़ी पीर जगेंगे। वापस खोद लिया तो अकेले ही रह गए। उस पीढ़ी में दूसरा पीर नहीं बना। क्या ऐसे लोग भी होते हैं जो चाहते हैं कि मेरा बेटा पढ़-लिखकर न्याय और नीति सीखे?

शायद नहीं। और कुछ नहीं चाहिए, बस पैसा चाहिए। पैसा चाहिए, भले कहीं से भी आए। कई विद्यालयों में भी मेरा जाना हुआ। मैंने विद्यार्थियों से पूछा कि किसलिए पढ़ाई कर रहे हो?

बच्चे कहते, पैसे कमाने के लिए, जॉब प्राप्त करने के लिए। ऐसी बातें तो उन्होंने की पर इनसान बनने की बात किसी ने नहीं कही। पैसे वाले, धन कमाने वाले बहुत मिलेंगे।

(एक श्रोता बोल उठा– इनसान नहीं मिलेंगे)

क्यों, हम इनसान नहीं हैं क्या?

कहते हैं कि चीन का एक दार्शनिक दिन के उजाले में लालटेन लेकर घूम रहा था। लोगों ने उससे प्रश्नवाचक अंदाज में कहा कि सूरज का प्रकाश है और आप लालटेन लेकर घूम रहे हो! उसने कहा कि मैं मानव को खोज रहा हूँ। वस्तुत: यदि मानव अपने स्वरूप को समझ ले, तो वह हीरा है, वह रत्न है। पत्थर के रत्नों की हम कीमत करते हैं, किंतु अपने जीवन रूपी रत्न की कीमत नहीं कर पा रहे।

**नर तेरा चोला, रतन अमोला विरथा खोए मती ना।**

नर तेरा चोला, रत्न से भी अनमोल है। रत्न का मूल्य किससे है? रत्न का मूल्य परख से है। जिसे रत्न की परख नहीं है, उसके लिए वह पत्थर है। उसके लिए उसकी कोई कीमत नहीं है। नजरों में परख की तासीर आने से पत्थर, रत्न बन जाता है। यदि मानव नहीं होता तो हीरे–रत्नों की कोई कीमत नहीं होती। पशु उसकी कीमत नहीं कर पाता। पशु उसके ऊपर से निकल जाता है, उसको पता ही नहीं पड़ता कि वह कीमती रत्नों के ऊपर से निकल गया।

एक व्यक्ति को रत्न मिल गया। उसको उस रत्न की कीमत मालूम नहीं है। वह उसको देखकर सोच रहा है कि बड़ा चिकना पत्थर है। वह उसे उछालते हुए जा रहा है, खेलते हुए जा रहा है। उसको एक खूंट पर दुकान दिखी, एक किनारे पर दुकान दिखी। दुकान देखकर उसको याद आया कि तंबाकू लेना है। उसने दुकानदार से कहा कि तंबाकू दो। दुकानदार ने उसे तंबाकू दे दी। दुकानदार ने उसके हाथ में पत्थर देखा तो कहा कि यह पत्थर मुझे दे दो, मैं तुम्हें एक चिमटी ज्यादा तंबाकू दे दूँगा। तंबाकू खरीदने वाले ने दुकानदार को वह पत्थर दे दिया।

पहले आज-कल जैसे काँटे नहीं थे। तब ताकड़ी हुआ करती थी। उसमें पासंग हो जाया करता था। दुकानदार ने पासंग पूरा करने के लिए उस पत्थर को रखा तो पासंग पूरा हो गया। दोनों ही राजी हो गए। एक को ज्यादा तंबाकू मिल गई और एक को पासंग दूर करने के लिए पत्थर मिल गया।

रत्न कहाँ रखने का था?

(श्रोता- तिजोरी में रखने का था)

तिजोरी में रखने से क्या होगा। धारण करने का लक्ष्य होना चाहिए। रत्न धारण करने के लिए है। लोग तिजोरी में रख देते हैं। रत्न, सोना और चाँदी धारण करने से क्या लाभ होता है। यह मालूम नहीं होने से लोग सोना खरीदकर तिजोरी में बंद कर देते हैं। कई लोग उलटा काम करते हैं। ऐसे लोग सोना खरीदकर बैंक के लॉकर में रखेंगे और लॉकर का किराया देंगे। क्या मतलब निकला इसका? सोना खरीदेंगे, छाती गर्म होगी और कुछ नहीं। छाती गर्म होगी कि मेरे पास सोना है। पुराने लोग आभूषणों को धारण करते थे। बी.पी. के मरीज आज के युग में ज्यादा हैं या पहले ज्यादा होते थे?

(श्रोता- अभी ज्यादा हैं)

पहले लोग आभूषण पहनते थे। दो लड़ी, तीन लड़ी, चार लड़ी, पाँच लड़ी तक का हार। वह हृदय की नस से टकराता रहता था। नसों से सोना टकराते रहने से कोलेस्ट्रोल नहीं बढ़ता था। परिणामस्वरूप बी.पी. नहीं होती थी। निरोग रहते थे। आज सोना खरीद लेते हैं, किंतु पहनने की हिम्मत नहीं होती। क्यों नहीं होती हिम्मत? क्योंकि जीवन की असुरक्षा का भय बना रहता है। डर लगा रहता है कि कहीं इसकी वजह से जीवन ही न चला जाए, इसलिए लोग लॉकर में रखते हैं।

धातुएँ भी हमारे शरीर के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। ताँबें की धातु शरीर के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। आज भी कुछ लोग यह मानते हैं कि ताँबे के बरतन में बारह घण्टा पानी रखने के बाद पीया जाए तो पेट की कई बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। पहले ताँबे के मटके में पानी रहता था। पीने के लिए गिलास अलग होता था। ताँबे के लोटे (सरवे) से पानी लिया जाता था। अब घर में क्या आ गया?

(श्रोता- आज तो घर-घर में आर ओ लग गया)

आज बरतन लोहे के आ गए। लोहे के बरतन में खाने से लाभ होगा या नुकसान?

(श्रोता– नुकसान होगा)

नुकसान की बात जानते हैं फिर भी लोग उसमें खा–पी रहे हैं। अच्छी धातु छोड़कर कमतर धातुओं के बरतनों को उपयोग में लेना शुरू कर दिया। उनमें पका हुआ अन्न हमारे शरीर में क्या लाभ पहुँचाएगा? पहले पुड़ (रोटी) बनाया करते थे। कैसे बनती थी? केलड़ी (मिट्टी का तवा) पर सेंकते थे। केलड़ी पर रोटी पका करती थी। लोहे के तवे और केलड़ी पर सेंकी गई रोटी में फर्क होता है। केलड़ी पर सेंकी गई रोटी और लोहे के तवे पर सेंकी गई रोटी में क्या फर्क है?

(श्रोता– केलड़ी पर सेंकी गई रोटी में स्वाद ज्यादा आता है)

स्वाद तो आता ही है, स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक होता है। पुराने लोगों की सोच अलग थी। मेवाड़ी लोग पानिया बनाते थे। कैसे बनाते थे पानिया?

(एक श्रोता– खाकरे के पत्ते पर सेंकते थे)

वो तो ठीक है, किंतु आज दिखते कहाँ हैं?

क्यों बनाते थे, उन सबके पीछे रीजन क्या था?

केवल स्वाद के लिए बनाते थे या कोई अन्य भी रीजन था?

रीजन नहीं जानते थे, किंतु यह जानते थे कि स्वास्थ्य के लिए कौन–सी चीज किस रूप में महत्त्वपूर्ण होती है। यह नहीं जानते थे कि किसमें विटामिन ए,बी,सी,डी कितनी होती है, किंतु परंपरा से उनका उपभोग करते थे। अब ये सारी चीजें चली गईं। पहले घट्टी से अनाज पीसते थे। थोड़ा मोटा पीसते थे। मैदे की तरह एकदम महीन नहीं पीसते थे। डॉक्टर कहते हैं कि चापड़ की रोटी खाओगे तो बहुत सारी बीमारियाँ ठीक हो जाएंगी, किंतु हमें एकदम बारीक आटे की रोटी चाहिए, जो गले में अड़े नहीं, सीधे नीचे उतर जाए। हमने खाना बदल दिया और बदल करके स्वयं बदल गए। हमारी सहनशीलता कम होती जा रही।

खैर, वापस आते हैं पूर्व की बात पर। बात चली थी कि हीरे की कीमत वे नहीं जान रहे थे। कौन नहीं जान रहे थे?

(श्रोता- दुकानदार और तंबाकू लेने वाला)

जब तक आँखों में पहचान नहीं होगी, तब तक हीरे की कीमत नहीं होगी। मनुष्य हीरे की कीमत आँकता है, वही हीरे को मूल्य देता है, किंतु उसकी आँखें यदि सही काम नहीं करेंगी तो वह हीरे की कीमत नहीं कर पाएगा।

**हीरे की कीमत भाई, कुँजड़ो तो जाणे कांई...**

हजारीमल जी म.सा. कह गए कि हीरे की कीमत भाई, कुँजड़ो तो जाणे कांई... अर्थात् कुँजड़ा हीरे की कीमत नहीं जानेगा। कुँजड़े से हीरे की कीमत पूछने पर वह क्या बताएगा। हीरे की कीमत तो जौहरी ही बता पाएगा।

कहने का आशय है कि जो जिस वस्तु का महत्त्व समझेगा, वही उसकी कीमत कर पाएगा। कई लोग धर्मस्थान का भी महत्त्व नहीं समझते। नहीं समझने से ही कई जगह धर्मस्थान की सफाई नहीं हो पाती।

धर्मस्थान की सफाई कौन करता है? धर्मस्थान की सफाई होती है कि नहीं? होना भी मुश्किल है। बड़े-बड़े भवन बना दिए जाते हैं। उसकी सफाई करने में कमर दुखने लगती है। सफाई करने के लिए नौकर लगा देते हैं। नौकर भी कुछ-कुछ सफाई करके चला जाता है। देखने कौन जा रहा है कि सफाई हुई या नहीं।

एक बार धर्मेश मुनि जी म.सा. और गौतम मुनि जी म.सा. आदि विचरण करते हुए एक गाँव में पहुँचे। उन्होंने उस समय विचरण के दौरान की बातें बताई थीं। गाँव वालों ने उन लोगों से कहा, म.सा. थोड़ा बाहर रुको, हम सफाई करते हैं। इससे पता चलता है कि जहाँ पर म.सा. जाएं, वहाँ सफाई होती है और नहीं जाएं तो सफाई नहीं होती। म.सा. से लोग बोलते हैं कि हमारे श्रावकों को सामायिक करने के लिए स्थान चाहिए और सामायिक करने वाले कितने लोग हैं? वार-त्योहार सामायिक करने वाले हैं या रोज करने वाले हैं? लोग घर में सामायिक फिर भी कर लेते होंगे, स्थानक में जाकर रोज सामायिक करने वाले कितने लोग मिल जाएंगे? भले ही पड़ोस में स्थानक बना हुआ हो, किंतु घर में सामायिक करेंगे। स्थानक बना लिया, किंतु उसका उपयोग नहीं हुआ तो किस काम का! घर की सफाई आदमी फिर भी कर लेता है, किंतु स्थानक की सफाई, स्थानक की देख-रेख बराबर नहीं कर पाता। पुस्तकों के

साथ तो प्राय: कहीं पर भी न्याय नहीं है। किसी भी स्थानक में जाकर देख लें, बोरे की तरह अलमारियों में पुस्तकें भरकर रख देते हैं। कभी यह भी नहीं देखेंगे कि अंदर चूहा तो नहीं घुस गया, कहीं दीमक तो नहीं लग गया। अमूमन हर जगह की यही हालत है। अपवादस्वरूप कहीं ऐसी स्थिति नहीं भी हो, पर घर की चीजों की साज-संभाल की जाती है, किंतु स्थानक की चीज दान की गाय जैसी होती है।

दान की गाय पर एक कहानी का सार बता रहा हूँ। पाँच भाइयों के बीच में एक गाय मिल गई। सब उसका दूध पीना चाहते, किंतु चारा कोई नहीं खिलाना चाहता। एक कहता कि मेरी तो आज बारी थी, मैंने तो दूध दूह लिया। कल दूसरे की बारी है, मैं चारा खिलाऊँगा और दूध दूसरे के पास जाएगा। ऐसी स्थिति में गाय का क्या होगा? यदि गाय को चारा-बांटा नहीं मिलेगा तो कितने दिनों तक दूध देगी?

खैर, आप समझ गए होंगे। अभी एक बच्चे की कहानी प्रासंगिक लग रही है। दस-बारह वर्ष का एक बच्चा था। बच्चा जहाँ रहता था, उसके पास एक नदी बहती थी। नदी के दूसरी तरफ एक आश्रम बना था। उस आश्रम में महात्मा रहते थे। वह बच्चा रोज नदी पार करके आश्रम पहुँचता और वहाँ जाकर साफ-सफाई करता था। किसी ने उसको कहा नहीं था कि वहाँ जाकर सफाई करो। वह अपने मन से, अपनी मरजी से जाता और साफ-सफाई करता था। बिना कोई चार्ज लिए सफाई करता था। किसी से कोई पैसा नहीं माँगता था। अपनी मरजी से काम करता था।

एक बार रास्ते में किसी ने उससे कहा कि तुम रोज महात्मा के पास जाते हो, तुमने अभी तक गुरु मंत्र लिया या नहीं!

बच्चे ने कहा, यह क्या होता है।

व्यक्ति ने कहा, तुम महात्मा के पास जाना और कहना कि मुझे गुरु मंत्र दें। अगले दिन वह जाकर महात्मा के पास हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

महात्मा ने कहा, क्या बात है भाई?

उसने कहा, मुझे गुरु मंत्र चाहिए।

महात्मा ने उसके कान में एक मंत्र दिया और कहा कि यह मंत्र किसी को बताना मत।

उस दिन उसको बड़ा आनंद आया कि गुरु से मुझे मंत्र मिला है। आनंद तो उसे रोज ही आ रहा था, किंतु आज की खुशी कुछ अलग ही थी। उसका चित्त प्रसन्न था। चेहरे पर रौनक आ गई। वह नदी पार कर घर जा रहा था तो देखा कि बहुत-से लोग नहा रहे हैं और राम-राम कह रहे हैं। कपड़े धोते हुए भी राम-राम कह रहे हैं। सरदी के दिनों में राम-राम ज्यादा बोलते होंगे लोग। अच्छा, यह बताओ कि राम-राम क्यों करते हैं? ऐसे बोलने से ठंड दूर हो जाएगी क्या?

उसका रीजन यह माना गया है कि 'र' अग्नि का प्रतीक है। उससे भीतर गरमी पैदा होगी। मंत्रों के 'र' उच्चारण में अग्नि तत्त्व का समावेश होता है, इसलिए उसकी महत्ता होती है।

भारत के जितने प्रधानमंत्री हुए उनके नाम में 'र' है, एकमात्र मनमोहन सिंह को छोड़कर।

जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री।

(एक श्रोता- नरेंद्र मोदी)

नरेंद्र मोदी तो अभी हुए हैं।

सब में 'र' मिलेगा, खाली मनमोहन सिंह को छोड़कर। इंदिरा गांधी में भी 'र' है। मनमोहन सिंह के नाम में 'र' नहीं है।

(एक श्रोता- उनका कार्यकाल दस साल का था)

खैर, आते हैं उस बच्चे की बात पर। उस बच्चे ने सोचा कि यहाँ तो हर कोई राम-राम, राम-राम बोल रहा है और गुरु ने मुझे मंत्र देते हुए कहा था कि किसी को बताना मत। वह सोचने लगा कि बच्चा देखकर मुझे ठग लिया दीखता है। बच्चा समझकर चॉकलेट पकड़ा दी।

दूसरे दिन जाकर उसने कहा, गुरुदेव! आपने मुझे मंत्र दिया और कहा था कि किसी को बताना मत। मैं घर लौट रहा था, तो नदी के पास देखा कि सैकड़ों लोग राम-राम मंत्र का जाप कर रहे थे। ऐसी क्या विशेषता रही जो आपने मुझे कहा कि किसी को बताना मत? हजारों लोग जान रहे हैं और आपने कहा कि किसी को बताना मत।

गुरु ने कहा कि मेरा एक जरूरी काम है पहले मेरा काम करके आओ, फिर बताऊँगा। गुरु ने एक थैली में से एक रत्न निकाला और कहा कि

बाजार में इसकी कीमत करके आना। गुरु ने कहा कि पाँच-दस दुकान पर घूमना, किसी को बेचना नहीं, खाली कीमत करके आना। वह गया। सबसे पहले सब्जी मण्डी आई।

सब्जी मण्डी में जाकर उसने पूछा कि इसकी कीमत क्या है तो सब्जी बेचने वाले ने कहा कि दो किलो भिण्डी ले लो या दो किलो कोई भी सब्जी ले लो। फिर वह धान मण्डी गया। वहाँ इसकी कीमत क्या आँकी जाएगी? कपड़ा मण्डी गया। वहाँ उसकी क्या कीमत आँकी जाएगी? अंत में वह जौहरी बाजार में गया। वहाँ एक जौहरी को दिखाया तो जौहरी ने कहा, भाई यह रत्न लाया कहाँ से है? इसकी कीमत तो लाखों में है। उसने अपनी मुट्ठी में वापस रत्न को लिया और आकर गुरु जी को दे दिया।

गुरु जी ने पूछा कि क्या हुआ?

उसने कहा, गुरुदेव बड़ी अजीब बात हो गई। कोई कहता कि सब्जी ले लो, कोई कहता अन्न ले लो, कोई कहता कपड़ा ले लो, कोई कहता है यह ले लो, कोई कहता है वह ले लो। उसने बताया कि एक जगह बताया गया कि इसकी कीमत लाखों में है।

गुरु ने कहा, तुम्हारा समाधान तुम्हें मिल गया। तुम्हारे प्रश्न का जवाब तुम्हें मिल गया।

बच्चे ने कहा, मेरे प्रश्न का जवाब?

गुरु ने कहा, मंत्र को जरूर हजारों लोग जानते होंगे, किंतु उसकी कीमत जानने वाले बहुत कम लोग हैं।

कितने लोग नवकार मंत्र की कीमत जानते हैं?

नवकार मंत्र हमें घूंटी में मिल गया तो हमने इसकी कितनी कदर की? हमारे सामने इसका मूल्य कुछ भी नहीं है। हमने दूसरे-दूसरे मंत्रों से नवकार मंत्र को ध्वस्त कर दिया। कहते हैं, बाव जी! बहुत दु:खी हूँ कुछ मंत्र बता दो। बाव जी! आजकल दुकान नहीं चल रही है, बड़ा दु:खी हूँ कोई मंत्र बता दो। क्या मंत्र बता दें। जन्म से जो मंत्र मिला उसका महत्त्व नहीं है, और अब कोई मंत्र बता देने पर कौन-सा महत्त्व हो जाएगा।

कौन-सा मंत्र देते हैं?

**ओउम...**

अरे, बाकी सब तो मंत्र ही हैं, लेकिन नवकार मंत्र महामंत्र है।

**नवकार मंत्र है महामंत्र, इस मंत्र की महिमा भारी है...**

अनुभूति में क्या उतरा?

आगम में कही हुई बात समझ में आ गई। गुरु की कही हुई बात समझ में आ गई, किंतु अनुभूति में क्या आया?

नानुराम जी धर्मपाल थे। धर्मपाल कौन है मालूम है आपको?

बलाई जाति के लोगों को नाना गुरु ने धर्मपाल बनाया। गुरुदेव, महावीर जयंती के प्रसंग के लिए नागदा जंक्शन विराजे हुए थे। सीताराम जी पहुँचे और खड़े हो गए। व्याख्यान पूरा होने के बाद में कहा, गुरुदेव! ऐसी-ऐसी हालत बलाई जाति के लोगों की है। हिंदू लोग हमसे घृणा करते हैं, नफरत करते हैं, जबकि दूसरे लोग हमें अपनाने को तैयार हैं। गुरुदेव ने उनकी बात सुनी और एक संत को साथ लेकर गुराड़िया गाँव में पहुँचे। वहाँ सात सौ गाँव के पंच मौजूद थे। धर्मनाथ भगवान की स्तुति करते हुए गुरुदेव ने बात उठाई और कहा कि तुम लोग मांस खाना छोड़ दो, दारू पीना छोड़ दो, खोटा खाना छोड़ दो, दुर्व्यसन का प्रयोग करना छोड़ दो तो सब लोग तुम्हें अपनाने को तैयार हो जाएंगे। सभी सात सौ गाँवों के पंच लोग खड़े हुए और प्रतिज्ञा ले ली। उन्होंने तो छोड़ा और हम क्या कर रहे हैं?

**जे तें जीत्या रे, ते मुझ जीतियो रे...**

उन्होंने तो जीत लिया। उन्होंने दुर्व्यसन, शराब, मांस छोड़ दिए। वे दुर्व्यसन कहाँ आ गए? कितने लोग मिलेंगे उदयपुर में जो तंबाकू, गुटखा, पान पराग नहीं खाते। कितने लोग बीड़ी सिगरेट नहीं पीते। व्यसन नहीं लेने वाले भी बहुत-से लोग मिलेंगे। मैं ऐसा नहीं कहूँगा कि सच्चरित्र लोगों का अभाव है फिर भी यह बीमारी किधर आई? किधर से किधर आ गई? उधर से निकली और इधर आ गई। बलाई जाति के लोगों ने तो छोड़ा और वह बीमारी हमारे समाज में लग गई। हमें सावधान हो जाना चाहिए, क्योंकि हम तो वी.आई.पी. लोग हैं।

(सभा में उपस्थित श्रोतागण हँसने लगे)

हँसने की बात नहीं है। हम वी.आई.पी. हैं। अभी महासती जी ने तीन बिंदु बताए थे। पहला, दूसरा, तीसरा। हमें मन मिला, तन मिला। मन और तन

ही नहीं मिला। जैन शासन भी मिला। इससे बढ़कर और क्या वी.आई.पी. होंगे! इससे बढ़कर दुनिया में और कोई आपको शराफत नहीं मिलेगी, किंतु हमको जन्मजात मिल गई इसलिए हम इसकी कदर नहीं कर रहे हैं। यही चीज मेहनत से मिली होती तो हम इसकी कदर करते।

खैर, उस बच्चे का समाधान हो गया। गुरुजी ने उसे समझाया कि देखो तुम कितने लोगों के पास घूमकर आए, किंतु सही कीमत जौहरी ने बताई। जौहरी ने पहचान की। वैसे ही बहुत-से लोग मंत्र जपते हैं, किंतु मंत्र का महत्त्व नहीं जानते, इसलिए वे कोरे-के-कोरे रह जाते हैं।

यही दशा हमारी है। हम नवकार मंत्र जपते बहुत हैं। जैन कुल में जन्म लेने वाला ज्यादा नहीं तो भी पाँच बार, ग्यारह बार तो गिनता होगा। पाँच बार, ग्यारह बार नवकार मंत्र गिन लेते हैं। एक बार नहीं सौ बार भी नवकार मंत्र गिनने से क्या होगा? जरूरी है नवकार के अनुसार जीवन बनाना। यदि नवकारमय जीवन बना लिया तो नवकार मंत्र गिनने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

क्या आम के पेड़ गिनने से आम का स्वाद आ जाता है?

आम के पेड़ गिनने से नहीं, आम खाने से स्वाद आएगा व पेट भरेगा। वैसे ही माला जपने मात्र से नवकार मंत्र का स्वाद नहीं आएगा। उसके लिए उसके अनुसार जीना होगा।

मैं धर्मपाल नानुराम की बात बता रहा था। नानुराम जी एक बार बता रहे थे कि मेरे को बिच्छू ने काट लिया। मैं तो समता भवन में गया और सामायिक पच्चक्ख ली। नवकार मंत्र का जाप चालू कर दिया। जहर कहाँ गया, कैसे गया, पता ही नहीं पड़ा।

**विश्वासो फलदायकः**

विश्वास हो तो फल मिलता है। किसी डॉक्टर की दवाई लेने के बाद यदि उस पर विश्वास नहीं होगा तो जल्दी से बीमारी ठीक नहीं होगी। वैद्य पर विश्वास हो तो उसकी दी हुई राख की पुड़िया भी दवा का काम कर जाती है। इसलिए कहा जाता है-

**विश्वासो फलदायकः**

विश्वास फल देने वाला होता है। विश्वास नहीं हो, तो कितना भी कर लो, सकारात्मक परिणाम नहीं आएगा। हमारा जितना विश्वास दूसरे मंत्रों

पर है उतना नवकार मंत्र पर नहीं है। करा दूँ पच्चक्खाण कि नवकार मंत्र के अलावा कोई दूसरा मंत्र नहीं गिनना?

(श्रोता- करा दो)

हाथ जोड़ो।

(श्रोताओं ने पच्चक्खाण लिया)

रत्नाकार पच्चीसी में कहा गया है कि ध्वस्तोऽन्य-मन्त्रैः परमेष्ठि-मन्त्रः अर्थात् मैंने दूसरे-दूसरे मंत्र बोले पर नवकार मंत्र छोड़ दिया। सोचा नहीं कि नवकार मंत्र क्या चीज है।

नवकार मंत्र कहाँ से पैदा हुआ?

नवकार मंत्र की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

तीर्थंकर भगवन्तों के मुखारविंद से उत्पत्ति हुई। शब्दों की रचना गणधरों के द्वारा हुई। उत्पत्ति हुई तीर्थंकरों से और शब्दों में ढाला गया गणधरों द्वारा। गणधर चौदह पूर्वों के ज्ञानी थे। श्रुत ज्ञान बहुत है, शब्दों का ज्ञान बहुत है। उन सारे शब्दों का ज्ञान गणधरों को होता है। अक्षर जुड़कर शब्द बनते हैं। उन सारे शब्दों का अर्थ गणधरों को ज्ञात था। गणधरों के द्वारा नवकार मंत्र की रचना हुई। अन्य मंत्रों की रचना कौन करते हैं? किसके द्वारा हुई? दूसरे मंत्रों की रचना इनसानों द्वारा हुई है।

**हीरे की कीमत भाई, कुँजड़ो तो जाणे कांई...**

सब्जीवाले से हीरे की कीमत कराएंगे तो क्या होगा। हीरे की कीमत करानी है तो जौहरी से कराओ। वैसे ही मंत्रों की कीमत होगी। सब मंत्रों की कीमत है, किंतु उन सारों में नवकार मंत्र की महिमा अलग ही है।

**नवकार मंत्र है महामंत्र, इस मंत्र की महिमा भारी है...**

इस मंत्र की रक्षा कौन करते हैं?

इस मंत्र की रक्षा देव करते हैं। जिनवाणी की रक्षा देव करते हैं। हमने नवकार मंत्र को रट लिया, पर उसकी कीमत नहीं जानी। एक छोटी-सी बात है। टाइम तो लगभग हो गया है, आप लोगों को भी धूप लग रही है। मैं तो छाया में आ गया, किंतु आपको धूप लग रही है। वैसे पीठ से धूप लेना अच्छा होता है। धूप लेने से विटामिन डी मिलता है।

(एक श्रोता- कैल्शियम मिलता है)

कैल्शियम नहीं, विटामिन डी मिलता है। कैल्शियम को एबजॉर्ब करने वाला विटामिन-डी होता है। विटामिन डी सूर्य से मिलता है, धूप से मिलता है। कैल्शियम यदि ज्यादा जम जाएगा तो घुटने ज्यादा दर्द करेंगे और विटामिन-डी मिलेगा तो दर्द ठीक होगा। पीठ की ओर से धूप लेने की बात कही जाती है।

एक बाप-बेटे की बात कहकर विषय को विराम देना चाहूँगा। बेटा बहुत मस्ती में रहता था। उसका बचपन पूरा हुआ, किशोरावस्था आई। जवानी आने लगी, किंतु उसको कोई चिंता नहीं थी। वह मस्ती में रहता था। वह सम्पन्न घर का था। कितना भी पैसा खर्च करे, रोकने और मना करने वाला कोई नहीं था। उसके पिता ने सोचा कि पैसा खर्च करने के लिए ही होता है किंतु अब इसकी उम्र खेलने की नहीं है, इसको पैसे की कदर मालूम होनी चाहिए।

एक दिन बाप ने बेटे से कहा, आज तुम कहीं से पाँच रुपए कमा कर लाओ।

लड़का सोचने लगा कि कहाँ से लाऊँ। वह चिंतित हो गया।

उसकी माँ ने उसे चिंतित देखा तो कहा, बेटा क्या हुआ, क्या बात है?

उसने कहा, पिता जी ने मुझे आज पाँच रुपए कमाकर लाने को कहा है, मैं कहाँ से लाऊँ इसलिए विचार में पड़ गया।

उसकी माँ ने उसे पाँच रुपए का नोट दिया। रुपया पाने पर वह खुश हो गया। शाम के समय उसने अपने पिता जी को नोट दे दिया। सरदी का समय था। पिता जी आग ताप रहे थे। उन्होंने नोट को शिगड़ी में डाल दिया। दूसरे दिन फिर कहा कि आज पाँच रुपए कमाकर लाना है। इसी तरह तीसरे, चौथे दिन फिर कहा। कभी भाई ने रुपये दिए तो कभी बहन ने दे दिये, कभी भाभी ने दे दिए। एक दिन फिर पिता ने कहा कि आज पाँच रुपए कमाकर लाना है। भाई ने कहा, पिता जी बोल रहे हैं तो जाओ तुम कमाकर लाओ। वह बाजार गया। मेहनत की, परिश्रम किया और चार बजे तक साढ़े चार रुपए कमा लिया। उसने सोचा कि पचास पैसे और चाहिए। उसने और मेहनत की। शाम होते-होते उसे पाँच रुपए मिल गए। पाँच रुपए लेकर आने पर बड़ी खुशी हुई।

उसने जैसे ही पाँच रुपए पिता जी को दिया तो पिता ने उसे शिगड़ी में डाल दिया।

यह देखकर बेटे ने कहा कि आप क्या कर रहे हो? मैं कितनी मेहनत से पाँच रुपए कमाकर लाया और आपने शिगड़ी में डाल दिया। बेटे के लिए चार दिन तक पाँच रुपए की कीमत नहीं थी, किंतु उस दिन कीमत हो गई। वैसे ही मेहनत से हमें धर्म मिला होता, नवकार मंत्र मिला होता, वीतराग वाणी मिली होती तो हम कदर करते, किंतु जन्मजात मिल जाने से 'घर की मुर्गी दाल बराबर' समझ रहे हैं। नवकार मंत्र यदि हमें मेहनत से मिलता तो सहेजकर रखते।

बंधुओ! यह वीतराग वाणी हमें मिली है। हमारा पुण्य है कि हमें वीतराग वाणी प्राप्त हुई, किंतु जब तक इसकी कदर नहीं करेंगे, इस पर विश्वास नहीं करेंगे, तब तक यथेष्ट लाभ से वंचित रह जाएंगे। हम इससे वंचित नहीं रहें। इसलिए इसकी महत्ता को जानें और समझें। इसकी महत्ता को जान-समझकर स्वीकार करेंगे तो जीवन में आनंद आएगा। आनंद आएगा तो जीवन धन्य बनेगा। इतना ही कहते हुए विराम।

21 दिसम्बर, 2022
सेक्टर- पाँच, काशीपुरी हिरण मगरी

# 20

# अचल-अटल अविकारी बनो

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी**

परमात्मा के चरणकमल विकार रहित हैं। अविकारी की उपासना हमें भी विकारों से दूर कराने वाली बनेगी। विकारी की उपासना करने से विकार बढ़ेगा और अविकारी की उपासना करने से विकार हटेगा।

विकार क्या है?

बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि विकार क्या है। सामान्यतया मन में गंदे विचार आ जाने को ही लोग विकार मानते हैं, किंतु ज्ञानीजनों की दृष्टि में एक पदार्थ में दूसरा पदार्थ मिल जाना विकार है। दूध में शक्कर मिलाने से दूध में विकार पैदा हो जाता है। दूध में शक्कर मिलाने से दूध का मूल स्वरूप बिगड़ गया इसलिए विकार पैदा हो गया। आम ज्यादा पक गया तो विकार हो गया। सब्जी में नमक, मिर्च, मसाला डालने से वह स्वादिष्ट तो हो जाएगी, वह अच्छी लगेगी, किंतु उसमें विकार आ गया, क्योंकि उसका मूल स्वरूप बिगड़ गया।

उसी तरह हमारी चेतना कर्मों से बँधी हुई है। कर्म, आत्मा में मिलते हैं तो आत्मा को विकृत कर देते हैं। उन विकारों को दूर करने के लिए परमात्मा के चरणों की उपासना होनी चाहिए। विकार पैदा होते हैं राग और द्वेष से। पहले एक पच्चीस बोल का थोकड़ा चलता था। उसमें एक बोल था पाँच इंद्रियों के 23 विषय और...

(श्रोता- 240 विकार)

कौन-से 240 विकार। इंद्रियाँ अपने स्थान पर हैं, विषय अपने स्थान पर। इंद्रियाँ विषय को ग्रहण करेंगी। जब तक इंद्रियाँ विषय को ग्रहण करती हैं, तब तक विषय विकार नहीं है। हम देख रहे हैं और वीतराग भगवान भी देख रहे हैं।

(सभा से आवाज– वीतराग भगवान ज्ञान से देखते हैं)

वीतराग भगवान की बात कह रहा हूँ, सर्वज्ञ–सर्वदर्शी की नहीं। वीतरागी और सर्वदर्शी एक हैं या अलग?

(श्रोता– अलग हैं)

कूटी हुई औषधि और मूंडे हुए माथे का पता नहीं चलता। वीतराग का अर्थ है राग और द्वेष से दूर। जिसमें राग–द्वेष नहीं है उसको वीतराग कहते हैं और केवलज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त होने पर सर्वज्ञ।

गुणस्थानों पर विचार करें। ग्यारहवाँ व बारहवाँ गुणस्थान वीतरागियों का है। तेरहवाँ व चौहदवाँ गुणस्थान सर्वज्ञों का है। वीतराग और सर्वज्ञ भिन्न–भिन्न हैं। वीतरागियों को चरम चक्षु से देखने की आवश्यकता पड़ती है किंतु सर्वज्ञों को चमड़े की आँखों से देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

मान लीजिए कि उन्होंने भी किसी पदार्थ को देखा और हमने भी देखा तो हमारी और उनकी प्रतिक्रिया क्या होगी?

हो सकता है कि हम कुछ प्रतिक्रिया करें, किंतु उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। वे वैसा ही देखेंगे, जैसा वह पदार्थ है। हम उसमें जोड़ेंगे कि यह अच्छा है, यह बुरा है। जीभ पर किसी पदार्थ के आते ही हमें मालूम पड़ता है कि यह नमकीन है या मधुर है, किंतु वहाँ कोई प्रतिक्रिया नहीं है। हमारा झुकाव राग या द्वेष की तरफ हो जाता है। राग–द्वेष की तरफ झुकाव होते ही विषय विकारी हो जाएगा।

मैंने चातुर्मास में एक बात कही थी, जो आपको याद होगी। नहीं भी हो सकती है, क्योंकि बहुत–सी बातें आती–जाती हैं। मैंने बात बताई थी कि मिट्टी पर पानी गिरने से मिट्टी गीली हो गई। उसके ऊपर से गाड़ियों का आना–जाना चालू हुआ तो कीचड़ हो गया। जब तक पानी पड़ा था, मिट्टी पड़ी थी, तब तक कीचड़ नहीं था। पानी और मिट्टी का मिल जाना, कीचड़ नहीं था। जैसे पानी और मिट्टी का मिलना कीचड़ नहीं था, वैसे ही हमारी आँखों या कानों से जो भी विषय ग्रहण किया गया वह कीचड़ नहीं बना। दोनों का संयुक्तीकरण होने के बाद यह स्वादिष्ट है, बहुत अच्छा है, यह स्वर बहुत मनोज्ञ है रूप भाव आने से, उसमें राग और द्वेष की गाड़ियाँ चलने से वह कीचड़ हो जाएगा। उसमें विकार हो जाएगा। वह कीचड़ कर्मों का बंध कराने

वाला बनता है।

सुमतिनाथ भगवान के चरण विकार रहित बताए गए हैं। उनके चरणों में कोई विकार इसलिए नहीं रहा, क्योंकि किसी पदार्थ के प्रति राग-द्वेष नहीं है। जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही देख रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ तो जो व्यक्ति जैसा है, उसको वैसा ही बताना। भेदभाव नहीं करना अविकारिता है। भगवान महावीर की बात लें। भगवान का एक भक्त था कोणिक। वह राजा भी था। मगध सम्राट श्रेणिक की मृत्यु के बाद उसका मन राजगृही में नहीं लग रहा था। उसने चम्पानगरी को अपना राज्य बनाया। उसने एक बार भगवान महावीर से पूछा, भगवान! मैं काल धर्म को प्राप्त करके कहाँ जाऊँगा? मेरी गति क्या होगी?

गौरव जी! कहाँ जाएगा कोणिक, बताओ?

(गौरव जी गोलछा ने कहा- नरक में जाएगा)

कौन-सी नरक में जाएगा?

अब आप बोलोगे हे राम! नरक भी कई होते हैं क्या?

भगवान ने कोणिक से कहा, तुम काल करके छठी नरक में जाओगे। कोणिक के विषय में हम और बातें जान लें। कोणिक का नियम था कि भगवान महावीर के सुख-शांति के समाचार जब तक नहीं जान लूंगा, तब तक खाना-पीना नहीं करूँगा। पहले एसएमएस चलते थे क्या? वाट्सएप था क्या कि भगवान चंपानगर में विचरण कर रहे हैं और उदयपुर में एस एम एस से सूचना पहुँचा दें। कोणिक ने अनेक लोगों को काम पर लगा रखा था। वे लोग साँडनी (ऊँटनी) से जाते थे और आगे से आगे समाचार पहुँचा देते थे। कोणिक के पास समाचार पहुँचता तो वह खाना-पीना करता।

खैर, कोणिक ने पूछा कि मैं मरकर कहाँ जाऊँगा तो भगवान ने कह दिया कि तुम मरकर छठी नरक में जाओगे। भगवान ने यह नहीं सोचा कि इसको छठी नरक में जाना बताऊँगा तो यह नाराज हो जाएगा। भगवान ने यह नहीं सोचा कि यह मेरा भक्त है, मेरे पास आना बंद कर देगा। इसको बताऊँगा तो मेरी भक्ति छोड़ देगा। भगवान ने सीधा कहा कि तुम मरकर छठी नरक में जाओगे।

कोणिक ने पूछा भगवन्! नरक कितने होते हैं?

भगवान ने कहा, सात होते हैं।

कोणिक– सातवीं नरक में कौन जाता है?

भगवान–सातवीं नरक में चक्रवर्ती जाते हैं।

कोणिक ने कहा कि मुझे छठी नरक में नहीं जाना, मुझे सातवीं नरक में ही जाना है। मुझे रिकॉर्ड तोड़ना है। मुझे सबसे अंतिम नरक में जाना है, सबसे नीची नरक में क्यों जाना, क्योंकि मैं चक्रवर्ती से कम नहीं हूँ। उसने नकली रत्न बनाए। उसने नकली चक्रवर्ती बनकर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि मैं चक्रवर्ती बन गया, क्योंकि उसे सातवीं नरक में जाना था। उसने चक्रवर्ती का पार्ट अदा करते हुए वैताढ्य पर्वत के पास जाकर देव की आराधना की।

देव ने कहा, क्या चाहते हो तो उसने कहा कि यह रास्ता खोलो, मैं उधर के तीन खण्ड जीतूँगा और चक्रवर्ती बनूँगा।

यह बात कौन बोला?

(श्रोताओं ने कहा– कोणिक बोला)

कोणिक ने भगवान महावीर का उत्तर सुनने के बाद कहा कि मुझे सातवीं नरक में जाना है। उसने सातवीं नरक जाने की तैयारी की। देव ने कहा, तुम नहीं जा सकते। तुम्हारे लिए गुफा का द्वार नहीं खोला जाएगा। कोणिक ने कहा, तुम द्वार खोलो तो ठीक, नहीं तो मैं इसको तोड़कर निकलूँगा और चक्रवर्ती बनूँगा। देव ने कहा, इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हो चुके हैं और बारह से ज्यादा हो नहीं सकते। तुम्हें रास्ता नहीं मिल सकता।

आज की तरह पहले बम तो थे नहीं! उसने गोला–बारूद चलाया, जिससे गुफा के ऊपर का कुछ गिरा और वह उसके नीचे दबकर मर गया। उसकी मृत्यु हो गई।

अब कौन–सी नरक में गया?

(श्रोता– छठी नरक में ही गया)

चूंकि उसके आयुष्य कर्म पहले ही बँध गया था इसलिए उसको छठी नरक में जाना पड़ा। दूसरी बात विचार करें। उसने भगवान महावीर की वाणी को झुठलाने का प्रयास किया था कि मैं छठी नरक में नहीं, सातवीं नरक में जाऊँगा, किंतु सातवीं नरक नहीं मिली। वह छठी नरक में ही गया।

कुछ लोगों की अपनी मति होती है। वे अपनी सोच के राजा होते हैं।

कोणिक को भी मानसिक विकार हुआ, उसे अहंकार हुआ कि मुझे भी चक्रवर्ती की तरह सातवीं नरक में जाना है। उसे अहंकार हुआ कि मैं छोटा नहीं हूँ, मैं सम्राट हूँ। यह अहंकार उसे ले डूबा और वह छठी नरक का मेहमान बना। अहंकार, मान-माया, लोभ विकार हैं। इन विकारों को जीतना बहुत ही कठिन है। हममें से कौन नहीं जानता कि क्रोध अच्छा नहीं है। क्रोध करना अच्छी बात है या बुरी?

(श्रोताओं ने कहा- क्रोध करना बुरी बात है)

क्रोध करना बुरी बात है और हम तो नहीं कर रहे हैं क्रोध?

यह दरवाजा किसलिए लगाया, यह गेट किसलिए है। (एक दरवाजे की तरफ संकेत करते हुए)

गेट के साथ छोटा-सा एक दरवाजा लगा देते हैं, ताकि गाय-भैंस, पशु अंदर नहीं घुस पाए। उनके लिए हम बड़ी सुरक्षा करते हैं। कोई चोर अंदर न घुस पाए इसलिए सुरक्षा करते हैं, दरवाजा लगाते हैं, किंतु क्रोध के लिए क्या करते हैं? क्रोध हमें बहुत प्रिय है। क्रोध हमारा प्रेमी है, हमारा मित्र है। उसको हम आसानी से आने देते हैं। उसको एक बार भी रोकते नहीं हैं। आज एक प्रयत्न करना, यदि गुस्सा आ जाए तो दस मिनट तक प्रतिकार नहीं करना।

नानालाल जी भंसाली! गुस्सा किस पर करोगे, घरवाली पर!

घरवाली सुन लेती है, सहन कर लेती है। सुन लेती है या फिर बेलन या चम्मच दिखाने लगती है? बता दो क्या दिखाती है?

(आशा जी बोरदिया ने कहा- इतनी हिम्मत नहीं है भगवन्)

हिम्मत क्यों नहीं है, यहाँ पर लगता है कि हम तो निर्बल हैं, किंतु जिस समय गुस्सा आता है उस समय इतनी ताकत आ जाती है कि कोई भी हो, उस पर गुस्सा निकालेंगे। उस समय चांडाल का, भूत का बल आ जाता है, किंतु उसके बाद लगता है कि मेरा हाथ दर्द कर रहा है, पैर दर्द कर रहा है, शरीर दर्द कर रहा है। ऐसी बहुत सारी समस्याएं भीतर पैदा हो जाती हैं। हम जानते भी हैं, पर उससे निवृत्त होने के लिए हमारी तैयारी नहीं होती। उसकी निवृत्ति के लिए भगवान ने उपाय बताया है कि जिस स्थान पर गुस्सा आ जाए, उस स्थान को छोड़ दिया जाए। यदि घर में गुस्सा आ जाए तो घर को छोड़ दो, थोड़ी देर के लिए सड़क पर आ जाओ। सड़क पर घूमो। गुस्सा आ जाए तो

बगीचे में चले जाओ, गुस्सा शांत हो जाएगा। जिस जगह गुस्सा आए उस स्थान पर खड़ा रहने से गुस्सा और बढ़ेगा। सामने वाले ने यदि जवाब देना शुरू कर दिया, तब तो हाथापाई भी हो सकती है।

गुरुदेव नानालाल जी म.सा. का विचरण महाराष्ट्र में हो रहा था। एक गाँव से विहार किया। पाँच-सात जैनियों के घर रहे होंगे, उस गाँव में। वहाँ के भाई लोग साथ में चल रहे थे। एक बालक भी साथ में चल रहा था, जो दस-बारह साल का था, किंतु अठारह साल जैसा लग रहा था। खाते-पीते घराने का था। उसके पिता ने कहा, म.सा. इसको आप अपने साथ ले जाओ, इसको दीक्षा दे देना।

गुरुदेव के मन में विचार पैदा हुआ कि जहाँ साधु-साध्वी का संयोग मिले, वहाँ तो ऐसी भावना कदाचित् बन जाती है, किंतु यहाँ पर साधु-साध्वियों का विशेष रुकना होता नहीं है फिर भी यह भाई दीक्षा की बात कह रहा है! इसके मन में ये भाव पैदा कैसे हो गए! गुरुदेव रुके और बोले, भाई! क्या कारण है कि तुम इसको दीक्षा देना चाहते हो?

उसने कहा, म.सा. यह 12 साल का है। हट्टा-कट्टा होने से दिखता अठारह वर्ष जैसा है। इसे गुस्सा आता है तो मुझे भी पीट देता है और अपनी माँ को भी पीट देता है।

गुरुदेव ने अन्तर रहस्य जानने के लिए पूछा, भाई! जब यह बच्चा था, बालक था, उस समय तुम और तुम्हारी पत्नी आपस में लड़ते तो नहीं थे?

उस व्यक्ति ने कहा, म.सा. गुस्सा आ जाता है। संसारी जीव हैं, गृहस्थ हैं।

जब माता-पिता लडेंगे तो असर किस पर आएगा?

(श्रोता- उसकी संतान पर आएगा)

कुम्हार, कुम्हारन को मारने के लिए दौड़ता है तो कुम्हारन को गुस्सा आता है, पर वह कुम्हार का प्रतिकार नहीं कर पाती तो जाकर गधे का कान खींचती है। यदि श्रीमान्, श्रीमती पर गुस्सा करे और उस समय बच्चा आ जाए तो श्रीमती दो झापड़ किसको लगाएगी?

(श्रोता हँसने लगे)

हँस रहे हो आप तो! उस बच्चे ने क्या बिगाड़ा। वह मार का भागी बन

जाता है। जब तक उसमें ताकत नहीं होती, तब तक सहन करता है। जब उसके शरीर में ताकत आ जाएगी तो हाथ पकड़ लेगा। कहेगा, ओ! रुक जाओ, सोच-समझकर हाथ उठाना, हाथ आगे मत बढ़ाना। बच्चे के सामने जैसी पिक्चर चलेगी, वैसे ही संस्कार उसके जीवन में आएंगे। अब सिनेमा हॉल में जाना कम हो गया। अब तो घर में टी.वी. में पिक्चर चलती रहती है। टी.वी. में नहीं तो घर में चलती रहती है। बहुत कम लोग हैं जो पूरे दिन बिना खटपट किए रह जाएं। लोग कहते हैं 'डागलिये चढ़ देखो घर-घर रो ओई लेखो' यानी छत पर चढ़कर देखने पर घर-घर का लेखा-जोखा दिखता है। बहुत कम लोग होंगे, जिनके यहाँ दंत कटाकट नहीं हो रहा हो।

पुराने लोग कहा करते थे कि कलह करना नहीं। कलह से कलशिए (कलश) का पानी हटता है। कलह करने से लक्ष्मी प्रसन्न नहीं होती, मन शांत नहीं रहता, मन अशांत हो जाता है। हम शांति के उपासक बनना चाहते हैं या अशांति के?

(श्रोता- हम शांति के उपासक बनना चाहते हैं)

नाना गुरु का एक सिद्धांत अपन ध्यान में ले लें। नाना गुरु का क्या सिद्धांत है?

नाना गुरु बम्बई में थे। वहाँ पर पत्रकार आए और प्रश्न करने लगे। नाना गुरु के एक जवाब को गुजरात पत्रिका ने हाइलाइट कर प्रकाशित किया। उसने उसका शीर्षक दिया था 'आचार्य श्री नानेश जी नो मजेदार सिद्धांत।'

नाना गुरु के गृहस्थ समय की बात है। उनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया, तो उन्होंने सोचा कि व्यापार करना चाहिए। उस समय उनकी उम्र ज्यादा नहीं थी। 12-13 वर्ष की उम्र रही होगी। उस समय कन्हैयालाल जी पोखरणा के साथ उन्होंने व्यापार चालू किया। उस समय की सोच, उस समय का चिंतन उन्होंने कन्हैयालाल जी से कहा। उन्होंने कहा- भाई देखो, साझेदारी का काम बड़े खतरे का होता है और कई बार आपस में विवाद हो जाता है इसलिए मुझे गुस्सा आए तो तुम शांत रह जाना और तुम्हें गुस्सा आएगा तो मैं शांत रह लूंगा। ऐसा होगा, तब अपना साझेदारी का व्यापार चलेगा, नहीं तो व्यापार करना मुश्किल हो जाएगा। घर-गृहस्थी साझेदारी से चलती है या बिना साझेदारी के?

पति-पत्नी का सम्बन्ध साझेदारी का है या नहीं?

(श्रोता- साझेदारी का है)

जिस पति-पत्नी ने यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया कि पति को गुस्सा आएगा तो पत्नी मौन रहेगी और पत्नी को गुस्सा आएगा तो पति मौन साध लेगा, उनके घर में क्लेश नहीं होगा। उस घर में शांति बनी रहेगी। झगड़ने से तनाव पैदा होता है। बाल-बच्चों के भीतर तनाव पैदा होता है। उन पर धीरे-धीरे वातावरण का असर होता है।

गुरुदेव ने जो सिद्धांत व्यापार के लिए दिया, उस पर विचार करें तो वह हर परिवार के लिए शांति और समाधि देने वाला है। यदि यह सिद्धांत हर घर में स्वीकार कर लिया जाए तो लीला लहर आ जाएगी। एक को गुस्सा आ जाए तो बाकी लोग मौन रहें। गुस्से का जवाब न दें, न गुस्से में जवाब दें। ऐसा होगा तो तनाव की स्थिति पैदा नहीं होगी और सब लोग आपस में धाम-धूम करने लग जाएं तो क्या होगा?

कोई बरतन उठाएगा, कोई बेलन उठाएगा, कोई कुछ करेगा, कोई कुछ करेगा तो क्या होगा? बात समझ में आ रही है ना?

(श्रोता- हाँ, आ रही है)

कौन-सी बात?

(एक श्रोता ने कहा- नाना गुरु के सिद्धांत की बात)

कौन-सा सिद्धांत?

तुम्हें गुस्सा आए तो मैं मौन रख लूँगा और मुझे गुस्सा आए तो तुम मौन रख लेना। आज घर में इसका पालन करना कि तुम्हें गुस्सा आएगा तो मैं मौन रहूँगा और मुझे गुस्सा आए तो तुम मौन रहना। इससे सारा परिवार शांति में रहेगा।

गुस्सा तेज क्यों होता है? गुस्से में तेजी क्यों आती है? गुस्सा आने का मतलब है कि कहीं-न-कहीं हमारा अहंकार उसके साथ जुड़ा है।

सेटेलाइट या किसी भी उपग्रह को ऊपर ले जाने के लिए उसके नीचे रॉकेट लगे रहते हैं। रॉकेट उसको ऊपर ले जाकर छोड़ देता है। गुस्सा उपग्रह है और मान-अहंकार उसका रॉकेट है। वह उसको ऊपर उठाता है। कहता है कि चलने दो, चलने दो। अहंकार नहीं होगा तो गुस्सा नहीं बढ़ेगा। अहंकार

जितना होगा, उतना ही गुस्सा तीव्र होता चला जाएगा। गुस्से को पीछे से अहंकार का सपोर्ट मिलता है। अहंकार आते ही भीतर छल-कपट की भावना आएगी। व्यक्ति अपने आपको सही साबित करने की कोशिश करेगा। दाँवपेच खेलेगा। बहुत मुश्किल है कि अहंकार आए और कपट नहीं आए। थोड़ा हो या ज्यादा, कपट आएगा। कहीं-न-कहीं अपने मान-सम्मान को बचाने का लोभ भी भीतर छुपा रहेगा। एक के साथ दूसरा, दूसरे के साथ तीसरा, तीसरे के साथ चौथा आएगा।

भगवान महावीर ने एक बात बड़ी सुंदर कही- ''जे एगं णामे से बहुं णामे'' अर्थात् जो एक कषाय को नमा लेता है, वह दूसरे कषायों को भी नमाने में समर्थ हो जाता है। आप क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक को नमा लो तो धीरे-धीरे चारों नम जाएंगे। सेनापति को नमा (झुका) लेने से सारी सेना नम जाती है। एक राजा को नमा लेने से सारा राज्य नम जाता है। इसलिए हम एक को नमा लें। चाहे क्रोध हो या मान, माया, लोभ हो, किसी एक को नमा लें। किसी एक को नमा लेने से दूसरे कषाय भी नम जाएंगे। दूसरे शब्दों में हम इसका अर्थ लें, चार प्रकार की चोकड़ियाँ होती हैं- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन। यदि हमने अनंतानुबंधी चोकड़ी को नमा लिया तो दूसरी अपने आप नम जाएगी। अनंतानुबंधी को नमा लेंगे तो अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानावरण व संज्वलन अपने आप नम जाएंगी। जब तक अनंतानुबंधी का दाँवपेच चलता रहेगा, तब तक हम अशांत होते रहेंगे। उसी के कारण अनादिकाल से हमारे भीतर विकार पैदा होते रहे हैं, हो रहे हैं, चल रहे हैं, चलते रहे हैं।

यह मनुष्य जन्म हमें किसलिए मिला।

कस्सऽट्ठा ?

जन्म तो हमने बहुत बार लिया, किंतु मनुष्य जीवन की सार्थकता नहीं समझी। मनुष्य जीवन की सार्थकता समझते तो अपनी बुराइयों को मिटा देते। अपने विकारों को, अपने कषायों को हटा देते। अपनी बुराइयों को मिटा देंगे, कषायों को मिटा देंगे तो जीवन मील का पत्थर हो जाएगा। मील का पत्थर का मतलब क्या समझे ?

मील का पत्थर होने का मतलब है कि हमारी काउंटिंग चालू हो जाएगी। काउंटिंग चालू हो जाएगी कि एक भव में, दो भव में, तीन भव में मोक्ष

होने वाला है। कषाय निकलेंगे तो सरलता अपने आप आएगी। कषायों ने कहीं-न-कहीं सरलता को, विनम्रता को बाँध रखा है। सहजता-निर्लेपता को बाँध रखा है।

नाना गुरु का वह सिद्धांत जिसकी अभी चर्चा हुई वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि जो भी उसे अमली रूप दे दे उसके घर में शांति रहेगी। 'बृहत्कल्प सूत्र' में एक सूत्र आता है ''जे उवसमेइ तस्स होइ आराहणा'' अर्थात् जो उपशम करके शांत रहेगा उसकी आराधना होगी। हमें शांत रहना या अशांत?

(श्रोताओं ने कहा- हमें शांत रहना है)

किसी ने बुरे वचन, कठोर वचन बोल दिए तो हमारा क्या बिगड़ा। कुछ बिगड़ा क्या? मारवाड़ी में एक कहावत है ''गालियां सूं कांई गूमड़ा हुवे।'' कहीं चोट लगने पर चमड़ी में उभार आ जाता है उसको गूमड़ा बोलते हैं। गालियों से कोई गूमड़ा नहीं होगा। हमने उनको अपने भीतर प्रवेश नहीं करने दिया तो कुछ भी बिगाड़ नहीं होगा। उनको प्रवेश नहीं दिया तो हमारे भीतर विकार पैदा नहीं होगा। हमें अपनी रक्षा करनी या दूसरों की?

(श्रोता- अपनी रक्षा करनी है)

सबसे पहले अपनी रक्षा करने का लक्ष्य रखना चाहिए। यदि अपनी रक्षा कर ली तो कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में दूसरों की रक्षा भी हो जाएगी। अपनी रक्षा करने का मतलब है कि मेरे साथ कोई कितना भी बुरा बरताव करे, मैं उसके साथ बुरा बरताव नहीं करूँगा। चाहे परिवार का सदस्य हो या पड़ोसी हो या कोई अन्य। यह आज के लिए प्रतिज्ञा है। हाथ जोड़ लो। कोई भी तुम्हारे साथ बुरा बरताव करे, आज उसके साथ बुरा बरताव नहीं करना। हाथ जोड़ो कि आज कोई मेरे साथ कितना भी बुरा बरताव करेगा, मैं उसके साथ बुरा बरताव नहीं करूँगा।

(सभा में उपस्थित श्रोतागण ने प्रतिज्ञा की)

आज अच्छा लगे तो फिर आगे क्या करना? आज अच्छा लगे तो कल भी चालू रखना और कल अच्छा लगे तो परसों भी करना। परसों भी बुरा नहीं लगे तो आगे बढ़ते रहना। आगे बढ़ते रहने से फिर कभी बुरा लगेगा ही नहीं।

हम कब अचल बन पाएंगे? आत्मा की तरफ अपना रास्ता बनाने से,

क्रोध, मान, माया, लोभ का रास्ता छोड़ देने से। जो भी ऐसा करेगा उसके भीतर अचलता आ जाएगी। उसे हिलाने में कोई समर्थ नहीं होगा। जैसे मेरु पर्वत अचल रहता है, वैसे ही उसकी दृष्टि होगी। अचल मुनि जी अचल रहे। पहले भले कितना ही क्रोध करते थे। मैंने सुना है कि पहले उन्हें क्रोध बहुत आता था। पहले क्रोध बहुत करते थे, किंतु दीक्षा के बाद शांत हो गए। वे दीक्षा के बाद एकदम शांत बने, आपको पहले ही बन जाना है। आपको पहले शांति में आना या दीक्षा के बाद?

(गोलछा परिवार के लोगों ने कहा- दीक्षा के पहले ही शांत बनना है)

और दीक्षा कब तक पूरी हो जाएगी?

जिस समय अचल मुनि जी की दीक्षा हुई उस समय गौरव-सौरभ ने भी बोला कि हम भी दीक्षा लेंगे। उसके बाद इनका मन ठण्डा पड़ गया। पैसों की खनक में पड़ गए। उनका मन पैसों की ओर दौड़ने लगा है। पैसों से संतुष्टि हो जाएगी क्या? पैसों से संतोष आएगा क्या? अचल मुनि जी म.सा. इतने अनुशासित और दृढ़ थे कि कहते, आपका आदेश है मुझे उसमें कुछ भी नहीं कहना।

ऐसी दृढ़ता तब आती है जब अपने अहंकार को नमा लेते हैं। अचल मुनि जी म.सा. अहंकार को नमाने से अचल हो गए। हम भी अचल बनें। अडोल बनें। अहंकार इधर से उधर घुमाता रहेगा। घड़ी के पेंडुलम की तरह हिलाता रहेगा। अहंकार को यदि नमा लिया तो फिर हमारी अचलता में कोई सुराख नहीं होगा। अपने विकार को दूर करने के लिए आत्मा की दिशा लेनी है। साधु बनेंगे तब बनेंगे। जब कर्मों का क्षयोपशम होगा तब होगा, किंतु कषायों को जीतने का काम हमें आज से चालू करना है।

आप देखें, एक समय कैंसर भयंकर बीमारी थी। पहले कैंसर का नाम सुनते ही रोगी कहता कि मुझे तो मरना है और आज डॉक्टर कहते हैं कि कैंसर हमारी मुट्ठी में है। हमने कैंसर पर काबू कर लिया। चौथे स्टेप पर जाओ तो भी डॉक्टर उसका इलाज करने के लिए तैयार होते हैं। जैसे डॉक्टर ने कैंसर को अपने कब्जे में कर लिया, वैसे ही हम क्रोध, मान, माया, लोभ को अपने नियंत्रण में करेंगे तो हमारी आत्मा अचलता, अटलता, अडोलता को प्राप्त

करेगी। हमारा लक्ष्य रहे कि हम अपने भीतर के विकार को दूर करें। विकार यानी क्रोध, मान, माया, लोभ को जितना शिथिल करेंगे, उतना ही आत्मा की दिशा में बढ़ते चले जाएंगे।

मादड़ी वाले कई दिनों से निवेदन कर रहे हैं कि म.सा. मादड़ी पधारना, मादड़ी पधारना। इनके कहने के पहले उपाध्याय श्री जी, जब ध्यान केंद्र में विराज रहे थे तब उनका विचार बना कि मादड़ी में इतने घर हैं, उसकी स्पर्शना होनी चाहिए। घूम-फिरकर आज हमारा मादड़ी आना हो गया। महासतियाँ जी भी पधार गईं। संत-सतियाँ जी, श्रावक और श्राविका, चारों तीर्थ का एक साथ अवसर मिल गया। अब जितने समय तक संत यहाँ विराजें, जितना इनका सान्निध्य मिले आप लाभान्वित हों। कल सेक्टर तीन की ओर बढ़ना संभावित है। इतना ही कहते हुए विराम।

22 दिसम्बर, 2022
मादड़ी परिक्षेत्र

# 21

# समर्पण से तर्पण

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी।**

किसको सम्बोधित किया जा रहा है?

सुज्ञानी को सम्बोधित किया जा रहा है।

जीव, सुज्ञानी कब बनता है? नहीं मालूम है?

सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर जीव सुज्ञानी होता है। जिसकी दृष्टि सही नहीं बनती, उसके लिए यह बात नहीं कही गई है कि सुमतिनाथ भगवान के चरणों में आत्मा को अर्पण कर दो। चूँकि वह सुमतिनाथ भगवान को जानता ही नहीं है। परमात्मा से उसका परिचय ही नहीं है और जब परमात्मा का उसे परिचय है ही नहीं तो वह उनके चरणों में अपने आपको समर्पित कैसे कर पाएगा! हमारी आत्मा भी अनादिकाल से अज्ञान में थी। हमें नहीं मालूम था कि आत्मा क्या होती है और यह भी हम नहीं जानते थे कि परमात्मा क्या होते हैं। दृष्टि खुली, आँख खुली और हमें ज्ञात हो पाया कि मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। शरीर भी है और आत्मा भी है। इस शरीर में रहने वाला तत्व आत्मा है। उसके रहने पर ही शरीर की रौनक है। उसके नहीं होने पर मुर्दा कलेवर होता है। न देखना होता है, न सुनना होता है। न हलचल ही होती है।

वह सम्यक्त्व कैसे प्राप्त हो, दृष्टि कैसे खुले कि अज्ञानी, सुज्ञानी बन जाए? अज्ञानी, सुज्ञानी कैसे बने यह भी सोचने की बात है। राग-द्वेष की निमिड़ ग्रन्थि जब तक आत्मा में बनी रहती है, जीव में पड़ी रहती है, तब तक उसकी आँख नहीं खुल पाती। दृष्टि सम्यक् नहीं हो पाती। निमिड़ ग्रन्थि का मतलब सघन ग्रंथि, जिसको तोड़ना हर किसी के लिए आसान नहीं है। हर किसी के लिए संभव नहीं है। आत्मा का पुरुषार्थ जागृत होने पर वह उसी निमिड़ ग्रन्थि का भेदन करती है। जैसे ही राग-द्वेष ग्रन्थि का भेदन होता है, उसे

प्रकाश दिखने लगता है।

गूगू का नाम सुना होगा आपने। उसका दूसरा नाम है उल्लू। उल्लू को सूर्य की प्रखर किरणें या अन्य किरणें दिखती नहीं हैं। सूर्य है या नहीं?

(श्रोता- सूर्य है)

उल्लू को सूर्य दिखता है या नहीं?

(श्रोता- उल्लू को सूर्य नहीं दिखता)

उल्लू को सूर्य नहीं दिखता। उसे उसका अनुभव नहीं होता। जैसी दशा उल्लू की है, वैसी ही दशा अज्ञानी की है। हम भी जब मिथ्या ज्ञान में रमे हुए थे, हमें सम्यक् ज्ञान नहीं था, सुज्ञानी नहीं बन पाए थे, हमें प्रकाश की अनुभूति नहीं होती थी, तब अनदेखे ही चले जा रहे थे, किंतु जैसे ही राग-द्वेष की निमिड़ ग्रन्थि का भेदन हुआ, दृष्टि वाले बन गए। प्रकाश को देखने वाले बन गए। प्रकाश कितना ही हो, आँख नहीं हो तो क्या होगा? प्रकाश है, किंतु आँख नहीं है तो प्रकाश किस काम का? आँख होगी तो प्रकाश का महत्त्व रहेगा। प्रकाश, ज्ञान है और आँख, सम्यक् दर्शन है। सम्यग्रूपी आँख आएगी तो प्रकाश का महत्त्व होगा।

एक खंभा गड़ा हुआ है। खंभे से रस्सी बँधी हुई है। खंभे से बँधी रस्सी से एक पशु बाँधा गया था। पशु ने जोर लगाया तो खंभा उखड़ गया। खंभा तो जमीन से उखड़ गया, किंतु पशु जिस रस्सी से बँधा था, वह नहीं खुली। उससे पशु बँधा रहा। पशु ने खंभा तो उखाड़ दिया, किंतु रस्सी अभी तक बँधी हुई है। वह रस्सी पशु से मुक्त हो गई या साथ-साथ चलेगी?

(श्रोता- साथ-साथ चलेगी)

खंभे से बँधा हुआ पशु उतनी ही दूरी तक जा सकता था, जितनी रस्सी लंबी होती। खंभा उखड़ जाने के बावजूद रस्सी उससे बँधी हुई है। खंभा भी रस्सी के दूसरे छोर से बँधा हुआ है। वह पहले से ज्यादा चल सकता है या नहीं?

(श्रोता- चल सकता है)

चलते हुए बीच-बीच में रस्सी अड़ेगी, खंभा अड़ेगा। खंभा अड़ेगा, फिर भी वह आगे बढ़ता रहेगा। आगे बढ़ा जा सकता है, बढ़ा जा सकता है, बढ़ा जा सकता है।

यही दशा जीव की समझी जा सकती है। सम्यक्त्व आने पर मिथ्यात्व का खंभा उखड़ गया, राग-द्वेष की जो गाँठ थी, वह भी टूट गई, किंतु पूरा मिथ्यात्व अभी दूर नहीं हुआ। क्षायिक समकिती होगा तो मिथ्यात्व का खंभा पूरा अलग हो पाएगा, किंतु जब तक क्षायिक समकिती नहीं होगा, तब तक वह खंभा और राग-द्वेष की डोरी लगी रहेगी। राग-द्वेष की डोरी जिस दिन अलग हो जाएगी, उसी दिन जीव स्वतंत्र हो जाएंगे। हो जाएगा या नहीं?

(श्रोता- हो जाएगा)

और हमारे राग-द्वेष की डोरी हट जाए तो...

पशु नहीं जानता कि गाँठ कहाँ लगी हुई है, बंधन कैसा लगा हुआ है? गले में भी रस्सी की गाँठ हो सकती है, सींग से भी डोरी बँधी हुई हो सकती है। इसे पशु नहीं जानता, किंतु मनुष्य जानता है कि कैसी ग्रंथि है। कैसी गाँठ है। हम राग-द्वेष से बँधे हुए हैं। इसको खोलने का तरीका ज्ञात नहीं होगा तो हम बंधनों से बँधे रहेंगे। उससे खुल नहीं पाएंगे। स्वतंत्र हो नहीं पाएंगे।

हम कहते हैं कि भारत स्वतंत्र हो गया। राष्ट्र की दृष्टि से भले ही स्वतंत्र हो गया होगा, उसकी अपनी सरकार हो गई होगी, किंतु हमारी आत्मा स्वतंत्र हो पाई क्या? अभी हमारा तंत्र इंद्रियों पर चल रहा है। हमारी गतिविधियाँ मन और इंद्रियों से संतुलित हो रही हैं। जब भारत आजाद नहीं था, तब भी सरकार चलती थी या नहीं?

तब भी सरकार चलती थी और आज भी चल रही है। हमारी सरकार भी चल रही है। हमारी मतलब आत्मा की, किंतु सरकार को चलाने वाला मन है। उसे मुख्य रूप से इंद्रियाँ चलाती हैं, आत्मा गौण है। जिस दिन वह तंत्र आत्मा के हाथ में आ जाएगा, उस दिन मन और इंद्रियाँ गौण हो जाएंगी। उनका वश नहीं चलेगा, उन पर नियंत्रण आत्मा का हो जाएगा। वह दिन हमारी स्वतंत्रता का होगा। अभी हमारे मन पर नियंत्रण किसका है?

समझ लें कि संघ या समाज की मीटिंग हो रही है। उसमें प्रतिष्ठित लोग उपस्थित हैं। एक व्यक्ति ने मोतीलाल जी से कह दिया कि तुम चुप रहो नहीं तो एक झापड़ लगाऊँगा। यह सुनकर मोतीलाल जी का मन क्या बोलेगा? यहाँ कोई मोतीलाल जी है क्या? मोतीलाल जी तो नहीं दिख रहे, किंतु भीखमचंद जी हैं। कैसा लगेगा भीखमचंद जी?

(भीखमचंद जी ने कहा– बुरा लगेगा)

बुरा लगेगा का मतलब है कि हमारी सरकार पर दूसरों का नियंत्रण है। हमारा नियंत्रण होता तो हम मन में दु:खी क्यों होते! क्यों नहीं हमें अच्छा लगता! क्यों बुरा लगता! चूँकि हम दूसरों से नियंत्रित हैं, इसलिए किसी दूसरे ने प्रशंसा कर दी तो हम खुश हो गए और दूसरे ने झापड़ लगाने की बात कह दी तो बुरा लग गया। इसका मतलब है कि अपने मन पर नियंत्रण नहीं है। नियंत्रण होता तो बुरा नहीं लगता।

भगवान महावीर के मन में क्या हलचल हुई उनसे पूछ लो। उनसे अच्छा कनेक्शन है तो पूछ लो। पर पूछें कैसे, क्योंकि उनसे सम्बन्ध नहीं जुड़ा। विचार करने की बात है कि रोज जय बोलते हैं फिर भी कनेक्शन क्यों नहीं जुड़ा? फिर सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ क्यों नहीं हो पाए? क्योंकि हमारा नियंत्रण अपने आप पर नहीं है। जिस दिन अपने आप पर नियंत्रण हो जाएगा, उस दिन भगवान महावीर से सम्बन्ध जुड़ने में देर नहीं लगेगी।

भगवान महावीर से सम्बन्ध जोड़ने के दो उपाय हैं। या तो अपने आपको नियंत्रित कर लें या फिर भगवान को समर्पित कर दें।

गौतम स्वामी पहले भगवान महावीर के प्रशंसक नहीं थे। उनके फॉलोवर नहीं थे। गणधर नहीं थे। गणधर गौतम, यज्ञ कराने के लिए तत्पर थे कि उनको कुछ विमान आते हुए दिखे। उनको लगा कि मेरे प्रताप से विमान आ रहे हैं। उनको लगा कि देवता स्वयं चलकर आ रहे हैं किंतु विमान आगे निकल गए। विमान आगे निकल जाने पर गौतम को अच्छा नहीं लगा।

उनको बुरा लगा कि विमान आगे कैसे चले गए? उन्हें मालूम पड़ा कि कुछ दूरी पर महावीर नाम का कोई संन्यासी है, विमान वहीं जा रहे हैं। सुना है ना हमने बहुत बार इसे?

(श्रोता– सुना है)

जैसे मूँछों पर ताव देते हुए कोई पहलवान ताल ठोंकता है, वैसे ही मन में ताल ठोंकते हुए गौतम चलते हैं। सोचते हैं कि अभी देखता हूँ, उससे भी दो–दो हाथ हो जाएगा। मेरे सामने किसी की विद्वता टिकने वाली नहीं है।

अपनी विद्वता का घमण्ड नहीं होना चाहिए, अहंकार नहीं होना चाहिए। आत्मविश्वास होना ठीक है, किंतु अहंकार होना दुर्गुण है। अहंकार,

ज्ञान का कच्चापन है। ज्ञान का पकना नहीं है। ज्ञान पक जाने पर अहंकार नहीं टिकेगा और ज्ञान नहीं पका है, कच्चा है तो उफन जाएगा। उसमें उफान आएगी।

विमान ऊपर से चले जाने पर गौतम को अच्छा नहीं लगा, इसका मतलब क्या हुआ? नियंत्रण किसके हाथ में है? अमूमन दुनिया के लोगों को देखेंगे तो मिलेगा कि उनका खुद पर नियंत्रण नहीं है। वे अपने अधीन नहीं हैं। लोग थोड़ी सी भी बात से फूल जाते हैं और थोड़ी-सी बात से नाराज हो जाते हैं।

किसी ने कह दिया कि तू काला है, तू चोर है तो दु:खी हो जाते हैं। दु:खी होने से पहले यह सोचें कि मैं चोर हूँ क्या? चोर नहीं हैं तो यह बात क्यों लगे। यदि चोर हैं तो बात लगनी चाहिए। किसी को एसीडिटी हो और उसके पेट में घाव (अल्सर) हो तो नमकीन या खट्टी चीज खाने पर उसको जलन होगी। जिसके पेट में घाव नहीं है वह लंका मिर्च खा लेता है पर उसको जलन नहीं होती। लंका मिर्च में झाल तेज होती है।

हमारे भीतर घाव है, इसलिए बात लग जाती है। हमारा मन कमजोर है इसलिए बात लग जाती है। कमजोर मन परमात्मा से सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ नहीं होता। जिस दिन मन मजबूत हो जाएगा, उस दिन परमात्मा से सम्पर्क जुड़ने में देर नहीं लगेगी।

खैर, बात चल रही थी विमानों के ऊपर से चले जाने की। विमानों के ऊपर से चले जाने से इंद्रभूति गौतम भी पहुँच गए भगवान के पास। भगवान के नजदीक पहुँचते हुए उनके मन में थोड़ी हलचल होने लगी। जितने विश्वास से गौतम निकले थे, भगवान के समवसरण के नजदीक जाते-जाते वह विश्वास कायम नहीं रह पाया। उनका मन चंचल हो गया। यों समझ लें कि पचास प्रतिशत मन वहीं हार गया। वे जैसे ही भगवान के पास पहुँचे, भगवान ने कहा, इंद्रभूति गौतम! आत्मा के विषय में तुम संशय करते हो!

भगवान महावीर ने उनकी दुखती नस पकड़ ली। भगवान से अपना नाम सुनते ही गौतम ने समझ लिया कि मैं तो नामी विद्वान हूँ। मेरा नाम कौन नहीं जानता, किंतु आत्मा के संशय के विषय में बात करते ही उनको झटका लगा कि मेरे भीतर छुपी बात को कैसे जान गए। गौतम आश्चर्य में पड़ गए कि जो रहस्य मेरे साथी, मेरे पाँच सौ शिष्य भी नहीं जानते, उसे इन्होंने कैसे जान

लिया? फिर गौतम ने सोचा कि जरूर ये भीतर के रहस्यों के ज्ञाता हैं। वे भगवान महावीर के चरणों में नतमस्तक होकर अपने आपको इतना समर्पित कर देते हैं कि भगवान ने जो भी कहा, उसे तहत्ति कहकर स्वीकार करते गए।

**'तमेव सच्चं...'**

आनंद श्रावक से क्षमायाचना का एक प्रसंग आया। भगवान महावीर ने कहा, गौतम! तुम्हारी गलती है, तुम जाओ और आनंद श्रावक से क्षमायचना करो। सुनते ही गौतम स्वामी चल पड़े क्षमायाचना के लिए। भगवान महावीर ने जो भी कह दिया उसे सर्वोपरि माना। यह नहीं सोचा कि वह मन के मुताबिक है या नहीं।

आज हम सोचेंगे कि आनंद का पक्ष लिया जा रहा है। श्रावक को मोटिवेट किया जा रहा है। साधुओं की इमेज को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है।

अंतिम समवसरण के समय भगवान महावीर ने गौतम स्वामी से कहा, गौतम! देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देना है।

बहुत कठिन काम था। कौन-सा काम कठिन था?

देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देना कठिन काम था या भगवान से दूर जाना?

(श्रोता- भगवान से दूर जाना कठिन काम था)

सब जान रहे हैं कि भगवान महावीर का अंतिम समवसरण है। बाद में दीदार होने वाला नहीं है। ऐसे समय में गौतम स्वामी से कहा जा रहा है कि देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए जाना है। सुधर्मा स्वामी वहाँ मौजूद थे। गौतम स्वामी के मन में विचार आ सकता था कि सुधर्मा स्वामी को नहीं कहकर मुझे कहा जा रहा है। पर उन्होंने नहीं सोचा। यह हमारी सोच है। हमारे मन की यही समस्या है इसलिए भगवान से तार नहीं जुड़ रहे हैं। ज्यादातर लोग यही सोचने वाले होते हैं कि मुझे पकड़ लिया। लोग समझेंगे कि मुझे अयोग्य समझा गया। मुझे दूर करने का तरीका है। सोच लेंगे कि देव शर्मा कहीं जा रहा है क्या, उसकी मृत्यु हो रही है क्या जो अभी-अभी प्रतिबोध देना है। ऐसे विचार मनुष्य के मन में बहुत आसानी से आते हैं। हमारे मन में तो जल्दी ही आते हैं। यही कारण है कि हम भगवान से तारतम्य जोड़ नहीं पाते।

उत्तराध्ययन सूत्र का पहला अध्ययन विनयश्रुत के नाम से है। उसमें

कहा गया है कि गुरु कठोर वाणी से शिक्षा दे या मधुर वाणी से या किसी भी प्रकार से शिक्षा दे, शिष्य को स्वीकार करनी चाहिए और यह विचार करना चाहिए कि मेरे आत्महित के लिए शिक्षा दी जा रही है। यह बात कब समझ में आएगी?

यह बात तब समझ में आयेगी जब हमारी आत्मा तीर्थंकर देवों के चरणों में अर्पित हो जाए।

यह बात तब समझ में आएगी जब यह माना जाएगा कि जो किया जा रहा है, वह मेरे हित के लिए किया जा रहा है। जो भी उपदेश दिया जा रहा है, जो भी अनुशासन किया जा रहा है, जो भी देखरेख किया जा रहा है, मेरे हित के लिए किया जा रहा है। तब हमारी मति तृप्त रहेगी।

गाय और बछड़े को घर में बाँधने में उसका हित है या नहीं?

(श्रोता– उसका हित है)

यदि बाहर खुले में रहेगा तो कोई भी पशु–जानवर उसको मार सकता है। घर में रहेगा तो उसकी सुरक्षा रहेगी। वैसे ही अनुशासन की डोर हमारे गले में पड़ी रहेगी तो हमारी सुरक्षा है अन्यथा हमारा क्या होगा कुछ पता नहीं पड़ेगा।

खैर, गौतम स्वामी के मन में एक बार भी ऐसा विचार नहीं हुआ कि मैं ही दिखता हूँ क्या? हर जगह मेरे को ही कहा जा रहा है। हमेशा मुझे ही दूर भेजा जा रहा है। दूसरा कोई साधु या सुधर्मा स्वामी प्रतिबोध नहीं दे सकते क्या। ऐसा कोई विचार उनके मन में नहीं आया। वे तत्काल चल पड़े। उनके कदम बढ़ चले। एक क्षण भी नहीं लगा। निवेदन की कोई बात नहीं। निवेदन की बात होती तो समय चूक गए होते।

गुरु महाराज फरमाया करते थे कि भगवान ने आपुट्ठ वागरणा चालू की। उसमें मुनियों के विनय की बात बताई। उसका प्रयोग था– गौतम को प्रतिबोध देने भेजना। यानी ये केवल पोथी की शिक्षाएँ नहीं हैं। भगवान ने प्रैक्टिकल बताया कि शिष्य का विनय कैसा होता है। उन्होंने गौतम स्वामी पर प्रयोग किया। गौतम स्वामी उठे और चल दिए। उनके मन में कोई गाँठ नहीं पड़ी। उनका मन उद्वेलित नहीं हुआ। उनके मन में कोई ऊहापोह नहीं हुआ। ऐसा कुछ भी सोचकर कर्म बाँधने का काम नहीं किया।

कहना तो बहुत आसान है। मैं भी कह रहा है क्योंकि मुँह से फटाफट

शब्द बाहर आ जाते हैं, किंतु जिन्होंने यह जीया है उनकी स्थिति को देखिए कि उनका क्या हाल हो रहा होगा। कुछ भी हाल नहीं हुआ उनका। उन्होंने अपने आपको अर्पित कर दिया। कुछ सोचा ही नहीं। सोचने का कोई मतलब नहीं था। किसलिए सोचना? क्यों सोचना?

गौतम स्वामी ने सोचा होता तो वे दु:खी होते। ऐसा नहीं है कि वे दु:खी नहीं होते। दु:खी बनना व्यक्ति की नीयत पर निर्भर है। उन्होंने अपनी नीयत सही रखी तो दु:खी नहीं हुए।

चित्त की नदी दोनों ओर बहती है। पुण्य की ओर भी बहती है और पाप की ओर भी। शुभ की ओर भी बहती है और अशुभ की ओर भी। उस पर हमारा नियंत्रण होगा तो हम उसको अशुभता की ओर नहीं बहने देंगे। हमारी भावधारा शुभता की ओर बढ़ेगी। अशुभता की ओर हम बहने नहीं देंगे। अशुभता की ओर नहीं जाना है। वहाँ खतरा है। हम उसे खतरे से रोकेंगे।

जिस समय बच्चों के दाँत आते हैं, उस समय उनके मसूड़ों में खुजली चालू हो जाती है। वे कोई भी चीज लेकर मुँह में डालते हैं। बच्चे के हाथ में अफीम की डली आ गई और वह मुँह में डालना चाहता है। उसको मालूम नहीं है कि यह अफीम की डली है और वह डली लेकर मुँह में डालना चाहता है। रोड़ीलाल जी उसको खाने दोगे या रोकोगे?

(रोड़ीलाल जी ने कहा– उसको रोकेंगे)

क्यों रोकोगे? आपने तो दी नहीं, वह अपने आप खा रहा है। उसको रोकोगे तो अंतराय लगेगा, इसलिए क्यों रोकना!

(एक श्रोता– क्योंकि वह जहर है)

जहर है तो क्या हुआ? मैं तो नहीं खिला रहा हूँ। वह अपने आप खा रहा है। मरेगा तो मैं क्या करूँगा। समझ लो अपना बेटा या पोता अफीम की डली खा रहा है, तो उसे बचाओगे या नहीं?

(श्रोता– बचाएंगे)

और कोई दूसरा खा रहा है तो?

(श्रोता– तो भी बचाएंगे)

क्यों रोकोगे? वह रोएगा, चिल्लाएगा, हाथ–पैर पटकेगा। जैसे ही वह अफीम की डली मुँह में डालने की कोशिश करेगा आप उसका हाथ पकड़

लेंगे, क्योंकि आप उसका हित चाहते हैं।

उसका हित चाहते हैं या अहित?

(श्रोता– हित चाहते हैं)

आप उसको रोक रहे हैं, क्योंकि उसमें उसका हित है। आप उसका हित चाहते हैं। भले ही वह चिल्लाए या रोए, कुछ भी करे किंतु आपने भला किया या बुरा?

(श्रोता– भला किया)

वह समझ रहा है कि मेरा बुरा कर रहे हैं। अपनी समझ से भले ही वह समझे, किंतु माता–पिता, दादा–दादी के मन में उसके प्रति प्यार है, प्रेम है। वे उसका जीवन चाहते हैं इसलिए अफीम की डली खाने से बचाने के लिए उसके हाथ से डली छीन लेंगे। भले ही वह थोड़ी देर के लिए रोएगा, किंतु उसके पीछे उसकी रक्षा का भाव है। हम भी नादान हैं। अभी समझ पूरी नहीं है। कोई हमें अनुशासित करे, हम यदि उसको उलटा ले लें तो उसका परिणाम क्या होगा? पाप की दिशा में जाएंगे या पुण्य की दिशा में?

(श्रोता– हम पाप की दिशा में जाएंगे)

आप याद करें प्रसन्नचंद राजर्षि को। वे किस भावधारा में जा रहे थे और किसमें चले गए। उन्हें केवलज्ञान प्रकट हो गया। इसलिए अपने आपको नियंत्रित कर लो। अपने मन पर नियंत्रण कर लो। सोच लो कि कोई कितना भी कुछ कहेगा मैं अपने मन पर असर नहीं होने दूंगा। या फिर अपनी आत्मा को सुदृढ़ कर लो। सोच लो कि 'तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है भेद कल्पना मेटो' अर्थात् मैं उनसे अलग नहीं हूँ। पानी की बूँद आकाश से गिरी और समुद्र में मिल गई। मिलने के बाद वह बूँद नहीं रही। वह समुद्र हो गई, क्योंकि समुद्र का अंग बन गई।

वैसे ही हम यदि भगवान के अंग बन जाएंगे, अपने आपको भगवान का अंग बना देंगे तो फिर मेरे खयाल से हमारे भीतर ऐसी व्यथा पैदा नहीं होगी। कोई दुःख पैदा नहीं होगा।

हमारे दोनों हाथ समान काम करते हैं क्या?

(श्रोता– नहीं)

दोनों पैर एक साथ आगे बढ़ते हैं क्या?

(श्रोता– नहीं)

अभी आप स्कूटर लेकर आए होंगे, किंतु स्थानक में तो पैदल ही आए। यहाँ अंदर आए तब दोनों पैर एक साथ आगे चले या आगे-पीछे?

(श्रोता- आगे-पीछे चले)

दोनों पैरों ने कोई ईर्ष्या नहीं की कि इसको आगे रखा और मुझे पीछे! ऐसा कोई विचार नहीं आता, क्योंकि एक व्यवस्था होती है शरीर की। मैनेजमेंट है। दोनों पैर एक साथ नहीं उठेंगे। पहले एक पैर को उठाएंगे फिर दूसरे को। एक पैर आगे रहेगा तो दूसरा पैर पीछे, दूसरा पैर आगे आएगा तो पहला पैर पीछे रहेगा। एक पैर आगे, एक पैर पीछे रहेगा। एक के आगे और एक के पीछे रहने में किसी का अपमान नहीं है।

जैसे पैर के साथ अपने आपको समझाकर चलते हैं, वैसे ही अपने मन को समझा जाए तो फिर सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। शरीर अपने जिस अंग का जब उपयोग करना चाहता है, तब करता है। वैसे ही हम परिवार के अंग हैं, संघ के अंग हैं। परिवार जैसा चाहे, संघ जैसा चाहे, वैसा हमारा उपयोग ले सकता है। ऐसा सोच लेने पर कोई दुःख नहीं होगा।

दुःख तब होता है, जब अहंकार खड़ा हो जाता है कि ऐसा नहीं, ऐसा होना चाहिए। यह नहीं, यह होना चाहिए और मुझे ऐसा नहीं होकर, ऐसा होना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि मुझे सेक्टर चार जाना है और मुझे सुभाष नगर भेजा जा रहा है। मैं चाहता हूँ सेक्टर पाँच जाना है और मुझे सुंदरवास भेजा जा रहा है। सेक्टर पाँच में दूसरे साधुओं को भेजा जा रहा है, मुझे क्यों नहीं भेजा जा रहा।

दो जगह से आमंत्रण पत्रिका आई। एक बेटे को एक जगह और दूसरे बेटे को दूसरी जगह भेजा गया। एक बेटे को गरीब परिवार में भेजा जा रहा है और एक को सम्पन्न परिवार में भेजा जा रहा है। गरीब परिवार में जाने वाला सोचेगा कि जहाँ सम्पन्न परिवार था वहाँ छोटे को भेजा जा रहा है और मुझे गरीब घर में भेजा जा रहा है। ऐसा सोचेगा तो दुःख पैदा होगा या नहीं?

(श्रोता- दुःख पैदा होगा)

किंतु यदि ऐसा सोच लिया कि घर की व्यवस्था है, तो दुःख नहीं होगा। ऐसा सोच लेने का मतलब है कि मन पर नियंत्रण है। मन पर नियंत्रण नहीं होगा तो छोटी-छोटी बातों में द्वंद्व मचेगा। कोई प्रशंसा कर देगा तो खुशी होगी और नहीं करेगा तो दुःख होगा। ऐसी अवस्था हमारे मन को और कमजोर

करने वाली होती है। मन कमजोर होगा तो साधना के लिए समर्थ नहीं होगा। सक्षम नहीं होगा।

भगवान की वाणी है– 'अट्टेलोए परिजुण्णे...' अर्थात् जो मन आर्तभावों में रहता है, वह दु:खी रहता है, वह जीर्ण–शीर्ण हो जाता है। उस मन को बोध मिलना दुष्कर है। उसका सुज्ञानी होना मुश्किल है। उसकी आँख खुलना मुश्किल है।

बंधुओ! हमें सोचने की क्षमता मिली, हमें मन मिला। उस क्षमता का प्रयोग कर अपने मन पर नियंत्रण करें।

विषय को जितना लम्बा करना चाहें, उतना लम्बा किया जा सकता है, किंतु लम्बा करने का कोई मतलब नहीं है। संक्षिप्त में बात समझ में आनी चाहिए। संक्षिप्त बात है कि दो ही उपाय है, अपने मन को नियंत्रण में रखना या फिर अपने आपको परमात्मा की शरण में समर्पित कर देना। इसी से शांति मिलेगी। समाधि प्राप्त होगी।

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

सुमतिनाथ भगवान के चरणों में हम अपने आपको समर्पित कर दें। उनके चरणों में समर्पित करने का अर्थ हुआ स्वयं को आत्मा की शरण में समर्पित करना। अपने आपको धर्म को अर्पित करना। ऐसा करेंगे तो सारा तनाव दूर होगा। जैसे गौतम स्वामी का तनाव दूर हो गया। पहले दो स्थिति बताई गई; एक, अपने को नियंत्रित करना और दूसरा, अपने आपको समर्पित करना। इन दो उपायों से हम वीतराग बनने में समर्थ होंगे। राग–द्वेष की रस्सी को खोलने में समर्थ हो जाएंगे। इन दो उपायों के बजाय कोई तीसरा उपाय ढूंढने जाएंगे तो राग–द्वेष की रस्सी खुलना संभव नहीं होगा। हम उसी में बँधे रहेंगे। दु:ख खत्म करने का, संसार से मुक्त होने का कोई अन्य रास्ता नहीं है। रास्ता यही है कि या तो अपने आपमें नियंत्रित हो जाओ या फिर अपने आपको, परमात्मा को अर्पित कर दो। इन दो रास्तों को स्वीकार करें और अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

23 दिसम्बर, 2022
सेक्टर– 3

# 22

# समर्पण से जगती शक्ति

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी।**
सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपने आपको अर्पित कर दो।

क्यों करना सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपने आपको अर्पित? इसका उत्तर है–

**दर्पण जेम अविकार सुज्ञानी...**

सुमतिनाथ भगवान के चरण दर्पण के समान विकार रहित हैं। यह माना जाता है कि जैसी संगत होगी वैसा प्रभाव आएगा, वैसा असर पड़ेगा। यदि विकार रहित अवस्था से सम्बन्ध जुड़ेंगे, उनका सामीप्य प्राप्त करेंगे तो हमारी दशा भी वैसी ही बनेगी। संत यानी सत् से जिन्होंने स्वयं को जोड़ा है, उनकी संगत भी लाभ देने वाली होती है। अभयकुमार से संगत की थी कालशौकरिक कसाई के पुत्र सुलश ने। अभयकुमार की संगति से उसका जीवन ही बदल गया, रूपांतरित हो गया। एक कसाई का बेटा बारह व्रतधारी श्रावक बना। यह बात आश्चर्यजनक लग सकती है, पर दुनिया में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। किस समय क्या घट जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। व्यक्ति का मन कहीं भी बदल सकता है। मन बदलते ही व्यक्ति सुधर जाता है।

अर्जुन माली के बारे में बताया जाता है कि उसने 1141 व्यक्तियों की घात की, पर एक दिन उसका भी मन बदल गया। अभय कुमार की बुद्धि को भी मात देने वाले रोहिणेय चोर का जीवन भगवान के केवल चार वाक्यों से परिवर्तित हो गया। प्रभव चोर पाँच सौ चोरों का सरदार था। उसके नाम से लोग भयभीत हो जाते थे। उनको कँपकँपी छूटती थी। उसके आने की खबर से ही दुकानों से भीड़ गायब हो जाती थी, बाजार बंद हो जाते थे। उसको पकड़ने के लिए राजतंत्र फेल हो गया था। उसका जीवन जम्बूकुमार के केवल एक उपदेश

से बदल गया। इसलिए कब किसका जीवन बदल जाए, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

एक वाक्य है–

**जे कम्मे सुरा से धम्मे सुरा...**

अर्थात् जो कर्मबंधन में शूरवीर होते हैं उनका जीवन यदि बदल जाता है तो वे धर्म कार्य में भी शूरवीर बन जाते हैं। उनके भीतर शूरवीरता आ जाती है। बस उनको दिशा मिलनी चाहिए। उनके प्रवाह को सही दिशा में मोड़ने का काम करना होता है। इतना–सा काम कर देने पर युगान्तरकारी परिवर्तन होगा। जैसे कोई सीधी सड़क कहीं थोड़ी–सी मुड़ जाती है तो रास्ता बदल जाता है, वैसे ही थोड़ा–सा बदलाव जीवन को रूपांतरित करने वाला बनेगा।

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा**

पूर्व में भी बताया गया कि सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपने आपको अर्पित कर दो। साथ में यह भी बताया गया कि उपदेश सुज्ञानी जीव के लिए है, हर किसी के लिए नहीं।

जिन आत्माओं ने अपने नयन खोले नहीं हैं, आध्यात्मिक जीवन को समझा नहीं है, वे सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपना अर्पण नहीं कर सकती।

**बहिरातम धुरि भेद सुज्ञानी**

बहिरात्म क्या होता है? बहिरात्म का अर्थ क्या होता है?

बहिरात्म का अर्थ होता है बाहर के पदार्थों को ही आत्मा समझ लेना। शरीर को ही आत्मा समझ लेना। शरीर और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान नहीं होना। जिसे शरीर और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान नहीं होगा, वह शरीर के लिए रोएगा। किसी की गमी हो जाने पर लोग रोते हैं। क्यों रोते हैं? क्योंकि उनका संबंध शरीर का था, आत्मा का नहीं। आत्मा से संबंध होगा तो रोएंगे नहीं। साधु बनने वाला वैरागी घर और परिवार का त्याग करता है। वह छुप–छुपकर रोता है या सबके बीच में?

(आशा जी बोरदिया ने कहा– छुप–छुपकर रोता है)

अच्छा! म.सा. ने दो ऑप्शन दिए, किसी एक में हाँ करना है इसलिए कह दिया कि वैरागी छुप–छुपकर रोता है। वैरागी न छुपकर रोता है, न

सबके बीच में रोता है, क्योंकि उसने चैतन्य स्वरूप का बोध कर लिया है।

बाहर के रिश्ते-नाते शरीर से जुड़े होते हैं, इसलिए शरीर से अलग होने पर रोना आ जाता है, जबकि यह निश्चित है कि शरीर तो अलग होगा ही। शरीर का संबंध न कभी शाश्वत था, न है और न रहेगा। हम यह बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि तीर्थंकर भगवन्तों का शरीर भी सदा स्थायी रूप से नहीं रह पाया, उनको भी शरीर छोड़ना पड़ा। उनका भी शरीर छूटा तो हमारा कहाँ रहने वाला है। यह निश्चित है कि संसार के सभी प्राणियों का शरीर छूटेगा। जिस समय जिसका नम्बर आएगा, उस समय उसका छूटेगा। यह नहीं होगा कि किसी के बदले कोई और चला जाए।

**'मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार'**

जैसे ही आयु पूरी होगी, यह शरीर छूट जाएगा। एक प्रकार से यह शरीर लीज पर मिला हुआ है। लीज 30 साल की भी हो सकती है, 50 साल की भी हो सकती है। सौ और सवा सौ साल की भी हो सकती है, किंतु जिस दिन लीज पूरी हो जाएगी, उस दिन शरीर नहीं रहेगा। इसलिए जिसको चैतन्य का बोध हो जाता है वही स्पष्ट मानता है-

**''जे ना चाले संगाथे तेनी ममता शा माटे''**

यानी कि जो मेरे साथ चलने वाला नहीं है, मेरे साथ रहने वाला नहीं है, उसकी ममता किसलिए!

हमारी ममता किसमें है?

शरीर में।

शरीर को ही आत्मा मान लेना बहिरात्म भाव है। जब तक शरीर में ही आत्मा का बोध चलेगा, तब तक परमात्मा की शरण में अपने आपको उपस्थित नहीं कर सकेंगे। जब थोड़ा जागरण होगा और यह ज्ञात हो जाएगा कि शरीर से आत्मा भिन्न है, तब रोना नहीं होगा। जिस दिन ज्ञात हो जाएगा कि मेरी चेतना, शरीर से भिन्न है, अलग है, उस दिन रोना नहीं रहेगा। यह ज्ञात हो जाने पर शरीर रहे या छूटे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

**'लाखों वर्षों तक जीऊँ, या मृत्यु आज ही आ जाए'**

शरीर और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान हो जाने पर शरीर लाखों वर्षों तक चले या तुरंत मृत्यु आ जाए चिंता की बात नहीं होगी। कोई फर्क नहीं

होगा, क्योंकि ज्ञात हो जाएगा कि मेरा चैतन्य अक्षुण्ण है। वह कभी भी क्षीण होने वाला नहीं है। उसका कभी विनाश नहीं होगा। इस सोच को, इस अनुभूति को अंतरात्मा की संज्ञा दी गई है।

हमने किताबों में पढ़ा है, व्याख्यानों में सुना है कि चेतना भिन्न है और शरीर भिन्न, इसलिए शरीर और आत्मा की भिन्नता की बात कर लेते हैं। हमने कभी इसका अनुभव किया या नहीं? किताबों में पढ़ने या व्याख्यानों में सुनने से अधिक महत्त्वपूर्ण है अनुभूत होना कि 'मैं शरीर से भिन्न हूँ।' व्याख्यानों में सुनकर उस पर विश्वास करना भी अच्छी बात है, किंतु जब तक अनुभूति नहीं होगी, तब तक बदलाव नहीं आएगा। जो परिवर्तन आना चाहिए, वह नहीं आएगा। परिवर्तन लाने में अनुभूति बहुत बड़ा रोल अदा करती है।

आपने सुलसा की कहानी बहुत बार सुनी होगी। सुलसा एक श्राविका थी। अम्बड़ संन्यासी था। किंतु बोध प्राप्त हुआ तो उसने भगवान के बारह व्रतों को स्वीकार कर लिया, श्रावक बन गया। उसने विचार किया कि मैं सुलसा की परीक्षा करूँ कि वह धर्म में कितनी दृढ़ है। बताया जाता है कि उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भिन्न-भिन्न रूप बनाए। एक दिन ब्रह्मा का रूप बनाया, दूसरे दिन विष्णु का रूप बनाया और तीसरे दिन शंकर का। जब ब्रह्मा का रूप बनाया, तब नागरिकों में हलचल मच गई कि नगर के बाहर ब्रह्मा जी प्रकट हो गए हैं। अम्बड़ संन्यासी वैक्रिय लब्धिधारक था। वैक्रिय लब्धि से युक्त था इसलिए मनचाहा रूप बनाने में समर्थ था। उसने ब्रह्मा जी का रूप बनाया। चर्चा सुनने के बाद लोग भागे-भागे गए। लोग दौड़ते हुए गए कि चलो ब्रह्मा जी का रूप देखते हैं। साक्षात् ब्रह्मा जी प्रकट हो गए हैं।

अम्बड़ संन्यासी की दृष्टि भी यह देखने में लगी थी कि सुलसा आई या नहीं, पर सुलसा नजर नहीं आई। उसने दूसरे दिन विष्णु जी का रूप बनाया। विष्णु का अवतार धारण किया। लोग फिर दौड़े-दौड़े गए। अम्बड़ संन्यासी ने किसी से कहा, सुलसा नजर नहीं आई?

लोग दौड़े-दौड़े गए सुलसा के वहाँ और उससे कहा कि तुम्हारा भाग्य जग गया। तुम्हें विष्णु जी ने याद किया है।

लोगों ने कितना भी कहा, किंतु सुलसा नहीं गई। वह टस से मस नहीं हुई। उसने कहा, मैं नहीं चलती।

हम तो बिना बुलाए भी चले जाने के लिए तैयार हैं। यदि बुलावा आ जाए, तब तो बड़ी खुशी हो जाएगी। बड़े प्रसन्न हो जाएंगे कि भगवान ने मेरा नाम लिया, मुझे बुलाया, पर सुलसा प्रसन्न नहीं हुई।

तीसरे दिन भोले शंकर का रूप प्रकट हुआ तो भी सुलसा नहीं गई। चौथे दिन 25वाँ तीर्थंकर पैदा हो गया। आपको मालूम पड़ जाए कि यहाँ से 15 किलोमीटर दूर 25वें तीर्थंकर प्रकट हुए हैं तो...

(बात पूरी होने से पहले एक श्रोता ने कहा- पूरा हॉल खाली हो जाएगा)

क्या खाली हो जाएगा! सामायिक तोड़ोगे क्या? कहने को तो लोग कहेंगे कि हम तो नहीं जाएंगे। कुछ लोग कहेंगे कि म.सा., मैं दर्शन करने के लिए नहीं गया, मैं तो देखने गया था कि वहाँ क्या हो रहा है। लोग ऐसा भी कहेंगे कि मुझे तो परिवारवालों के साथ वहाँ जाना पड़ा, मेरा जाने का मन नहीं था। कुछ लोग कहेंगे कि अमुक के साथ मैं गया तो था, पर मैंने दर्शन नहीं किए, सिर्फ देखा था।

विचार ऐसे ही हैं तो बढ़िया है, किंतु मन से छिपाने की बात मत करना। जैसी बात है, वैसी बताना फायदे की बात होती है। जैसा है वैसा नहीं कहकर आवरण डालकर कहने से माया लगेगी, कपट लगेगा, छल होगा।

लोगों ने सुलसा से कहा कि आज तो चलो, आज तो 25वें तीर्थंकर पधारे हैं। तुम अन्य को नहीं मानती हो, किंतु आज तो 25वें तीर्थंकर पधारे हैं। यह सुनकर भी सुलसा ने जमीन नहीं छोड़ी। सुलसा कहती है कि न तो 25वें तीर्थंकर हुए हैं और न कभी होंगे। जरूर कोई-न-कोई जालिया है। कोई छल करने के लिए आया है। मैं नहीं चल सकती।

यह दृढ़ता कैसे आई?

इसका कारण है, उसको सिद्धांत का ज्ञान था। वह बहिरात्मा से ऊपर उठ चुकी थी। वह शरीर को आत्मा नहीं समझ रही थी। उसका सम्यक् दर्शन निर्मल बना हुआ था, इसलिए उसमें दृढ़ता थी। यही कारण है कि उसकी श्रद्धा अटूट थी। उसे कोई भी चलायमान करने में समर्थ नहीं हो पा रहा था।

संन्यासी ने देखा कि सुलसा नहीं आई। मैंने कैसे-कैसे रूप बना लिए, कितने-कितने रूप बना लिए, किंतु वह नहीं आई तो नहीं आई। वह

सोचने लगा कि अब मुझे स्वयं सुलसा के घर जाना चाहिए। अम्बड़ ने सुलसा के दरवाजे पर पहुँचकर निस्सही-निस्सही की आवाज दी।

सुलसा ने दरवाजा खोला और संन्यासी को देखते ही हतप्रभ हो गई। वह सोचने लगी कि मैंने निस्सही शब्द सुना! यह शब्द या तो साधु के द्वारा बोला जाता है या श्रावक के द्वारा, किंतु मैं सामने एक संन्यासी को देख रही हूँ।

अम्बड़ ने कहा, हे भव्य! मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी का बारह व्रतधारी श्रावक हूँ। वेश मेरा संन्यासी का है किंतु मैंने व्रतों को स्वीकार कर रखा है।

तब सुलसा उसको मान-सम्मान देती है। तब उसके भीतर अहोभाव पैदा होता है, अन्यथा वह मानती है कि दुनिया में ठगने वाले लोग बहुत हैं।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि 'रोटी खानी शक्कर से और दुनिया ठगना मकर से।' कइयों की बुद्धि यह विचार करती रहती है कि दुनिया को कैसे ठगा जाय। दुनिया ठगी जाएगी या नहीं, किंतु हम जरूर ठगे जाएंगे। हमने दुनिया को ठग लिया होगा, किंतु वह ठगी मेरे साथ भी होगी।

रावण ने स्वर्ण मृग का रूप बनवाया, ताकि राम ठगे जाएं, सीता ठगी जाए और वह सफल हो गया। राम गए मृग को लेने के लिए, मृग को पकड़ने के लिए, क्योंकि सीता की चाह को पूरा करना है। आगे जाकर वह मृग, राम की आवाज में कहता है- हे लक्ष्मण!

राम जैसी आवाज सुनकर सीता, लक्ष्मण को भेजती है। लक्ष्मण जाना नहीं चाहते थे, किंतु जाना पड़ा।

लक्ष्मण ने कहा कि यहाँ बड़े विचित्र लोग हैं, भिन्न-भिन्न विद्याओं के जानकार हैं। वे किस समय क्या रूप बना लें और हम धोखा खा जाएं, इसलिए मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता।

सीता ने थोड़ी कटु बात भी कह दी। सीता ने कहा, लगता है तुम्हें राम से प्रेम नहीं है, मुझसे है, मेरे शरीर से है। तुम सोच रहे हो कि राम के बाद सीता को मैं अपना लूंगा, किंतु यह कार्य कभी संभव नहीं होगा। सीता ने कहा कि मेरा आदेश है तुम जाओ, राम संकट में हैं। इस स्थिति में लक्ष्मण गए।

राम ने जैसे ही लक्ष्मण को आते देखा, उनका मन संशय से भर गया कि कहीं-न-कहीं छल-कपट हो रहा है।

उस समय रावण किस वेश में सीता के पास गया?

(श्रोता– साधु वेश में गया)

लोग बोलते हैं 'ना जाने किस वेश में, बाबा मिल जाए भगवान रे' किंतु आज कि दशा में 'ना जाने किस वेश में बाबा मिल जाए शैतान रे'

बहुत अच्छी पोशाक सजी मिलेगी, किंतु मन भगवान का मिलेगा या शैतान का?

(श्रोता– शैतान का मिलेगा)

आप लोगों को अनुभव ज्यादा है। बहुत–से लोग किससे ठगे जाते हैं? बहुत सारे लोग बाहर की पोशाक से ठगे जाते हैं। लोग बाहर के वेश को देखकर भले ही ठगे जाते हैं, किंतु जो ठगता है वह भी अपनी आत्मा से ठगा जाता है।

रावण ने साधु का वेश बनाकर सीता का अपहरण कर लिया। रावण मन में हर्ष मना रहा है कि मैं सीता को ले आया, किंतु अंदरखाने भय भी खा रहा है कि राम आएंगे सीता की खोज करते हुए तो क्या होगा? फिर उसका मन कहता है कि नहीं–नहीं, कुछ नहीं हो सकता। मेरी लंका अजेय है, सुरक्षित है। इतने बड़े समुद्र को पार करके राम का आना संभव नहीं है।

चोर का मन बहुत कच्चा होता है। चोर के पाँव बड़े कमजोर होते हैं। वह सोचे भले ही, किंतु उसका मन शांत नहीं रहता, अशांत रहता है। उसका मन चंचल रहता है। मन में चंचलता तब आती है, जब कोई भय छिपा रहता है। मन भयभीत रहेगा तो चंचल होगा। मन विचलित होगा। ध्यान करने बैठने पर ध्यान विचलित हो जाएगा।

इसका मूल कारण है भीतर कहीं–न–कहीं छिपा भय। लोग उसको प्रकट नहीं होने देते हैं। उसको छिपाकर रखते हैं कि यह बात प्रकट नहीं हो जाए। छिपी बात ही मन को विचलित करती रहती है। मन एकाग्र नहीं होने देती। व्यक्ति सोचता कुछ है और हो कुछ जाता है।

रावण की भी दशा वैसी ही बनी हुई थी। उसने कितना भी प्रयत्न किया, किंतु सीता को अपना नहीं बना सका। रावण की एक प्रतिज्ञा बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जब तक कोई स्त्री समर्पित नहीं हो जाती, तब तक उसका भोग नहीं करना, बलात्कार नहीं करना। चाहे प्रयत्न से हो या

बिना प्रयत्न से, किंतु जब तक समर्पित नहीं होगी तब तक उसका भोग नहीं करना।

दशहरा के दिन लोग रावण का पुतला जलाते हैं। बलात्कार करने वाले भी तो पुतले में आग लगाने वाले हो सकते हैं। लोग कह सकते हैं कि उसने फालतू की एक शर्त रख ली कि जब तक समर्पित नहीं होगी, तब तक बलात्कार नहीं करना। लोग उसके पुरुषत्व को धिक्कार सकते हैं। लोगों की सोच कुछ भी हो, किंतु प्रतिज्ञाबद्ध होने से रावण, सीता जी के साथ गलत व्यवहार नहीं कर रहा है। सीता को समझाने के लिए उसने विभिन्न तौर-तरीके अपनाए किंतु सीता ऐसे समझने वाली नहीं थीं।

सीता किसको समर्पित थीं?

(श्रोता- सीता, राम को समर्पित थीं)

सीता, राम को समर्पित थीं। चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ आ जाएं, कौन था सीता का रक्षक? सीता का रक्षक कौन था रावण की लंका में?

सीता के स्वयं का मनोबल, उनकी समझ, चैतन्य और शरीर की भिन्नता का ज्ञान ही उनका संबल था। वह जानती थीं कि रावण मेरे शरीर के साथ कुछ भी कर सकता है, किंतु मेरी चेतना का अपहरण नहीं कर सकता। सीता के विचार थे कि वह अस्मत लूटने के लिए तैयार होगा तो उसके सामने मरा हुआ शरीर होगा। वह मेरी चेतना के साथ कुछ करने को समर्थ नहीं हो सकता।

हम महासती चंदनबाला का वृत्तांत पढ़ते हैं। एक रथी ने चंदनबाला और उसकी माता को रथ में बैठाया और लेकर भागा। चंदनबाला की माता के साथ जैसे ही बलात्कार करने की भावना में वह आया उसने जीभ खींचकर अपनी जान दे दी, किंतु अपने शील को सुरक्षित रखा।

**तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म नहीं जाए।**

उसने निर्णय किया कि यह शरीर जाने वाला ही है, चला जाए किंतु मेरा सत्य धर्म, मेरा शील धर्म कभी नहीं जा सकता।

यह दृढ़ता किसमें होती है?

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा**

जिन्होंने परमात्मा को अपना आत्म अर्पण कर दिया उनके भीतर यह

दृढ़ता आ जाती है। वह हाथ जोड़कर बचाओ! बचाओ! नहीं करता। वह जान बचाने की गुहार नहीं करता। वह भय नहीं खाता। मरने के लिए तैयार रहता है। किससे भय खाए, शरीर का मरना तो एक दिन निश्चित है। मरना निश्चित है फिर किससे भय खाना? क्यों भय खाना?

बात कहने में बहुत आसान होती है, किंतु अटल रहना, दृढ़ रहना हर किसी के लिए संभव नहीं होता। दृढ़ रहना बहुत कठिनाई का काम है, किंतु सीता ने इस बात को जान लिया था कि चैतन्य भिन्न है और शरीर भिन्न। उन्होंने जान लिया था कि अपने धर्म की रक्षा मुझे ही करनी है। किसी दूसरे के भरोसे धर्म की रक्षा नहीं हो सकती।

यह आत्मविश्वास हमारे भीतर भी गहरा होना चाहिए कि मेरे धर्म की रक्षा मुझे ही करनी है। जो धर्म की रक्षा करेगा उसकी रक्षा सुनिश्चित होगी। कोई भी शक्ति उसको डिगा नहीं पाएगी।

**धर्मो: रक्षति रक्षित:**

धर्म रक्षा करता है। जो धर्म की रक्षा करेगा, धर्म उसकी रक्षा करेगा। टी.वी. पर महाभारत भी चली, रामायण भी चली। आप लोगों के द्वारा महाभारत देखी गई। दुर्योधन ने दाँव खेला और शतरंज बिछ गई। द्युत क्रीड़ा होने लगी। धर्मराज हारते चले गए। एक बार उनको राज्य वापस लौटा दिया गया फिर भी दाँव चल रहा है। एक समय ऐसा आया कि धर्मराज ने अपने आपको ही दाँव पर लगा दिया। अपने बाद किसको दाँव पर लगाया?

(श्रोता– द्रौपदी को दाँव पर लगाया)

द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया। यह सब आपने टी.वी. पर देखा होगा। किताब में भी पढ़ा होगा, किंतु किताब में पढ़ने से उतना समझ में नहीं आया होगा, जितना टी.वी. पर देखने से समझ में आया होगा।

कौरवों ने जब द्रौपदी को जीत लिया तो भरी सभा में ले गए और कहा कि इसका चीरहरण किया जाए। आपने देखा होगा उसके चीरहरण को। दु:शासन द्वारा उसके कपड़ों को खींचा गया। द्रौपदी कभी एक तरफ से कपड़े को लपेटती है, तो कभी दूसरी तरफ से। वह कितना भी कपड़ा लपेटने की कोशिश करती है, किंतु दु:शासन ने यह सोच लिया था कि अब तो निर्वस्त्र करना ही है।

कौन-कौन वहाँ बैठे हुए थे? भिष्म पितामह कहाँ थे? द्रोणाचार्य कहाँ थे? कृपाचार्य कहाँ थे?

सब वहीं थे और गर्दन नीचे करके बैठे थे। उनसे वह दृश्य देखा नहीं जा रहा है, किंतु जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन। वे लोग दुर्योधन का अन्न खा रहे थे तो उसके विरुद्ध कैसे जा सकते थे। वे जान रहे थे कि अन्याय हो रहा है, किंतु मौन थे। ऐसा नहीं है कि उनके कान खुले नहीं थे। द्रौपदी पुकार रही थी, किंतु कोई भी रक्षा करने वाला नहीं था। जब द्रौपदी ने अपनी रक्षा करने में खुद को असमर्थ पाया तो अपने आपको धर्म को समर्पित कर दिया।

हम कहते हैं कि उसने नवकार मंत्र का जाप किया। कोई कहता है कि कृष्ण वासुदेव का स्मरण किया। कृष्ण वासुदेव ऊपर की खिड़की में खड़े हैं और कपड़ा बढ़ता ही जा रहा है। जब तक द्रौपदी ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया, तब तक वह कमजोर थी, किन्तु जैसे ही अपने आपको समर्पित कर दिया, कृष्ण वासुदेव में लीन हो गई, वैसे ही उसके भीतर इतनी शक्ति आ गई कि दुर्योधन कपड़ा खींचता-खींचता बेहाल हो गया। कपड़ों का ढेर लग गया, किंतु द्रौपदी को निर्वस्त्र करने में समर्थ नहीं हो पाया। वह कपड़ा खींचता-खींचता गिर गया, उसके हाथ थक गए, उसकी बाहें थक गईं, किंतु परिणाम क्या हुआ?

मैं तो केवल यह बात बताना चाहता हूँ कि आत्म अर्पण कैसे किया जाता है। ऐसा नहीं कि थोड़ा समर्पण कर दिया और थोड़ा अपना रख लिया। ऐसे काम नहीं चलेगा। छलांग पूरी ही लगानी पड़ती है। जब अपना कुछ भी नहीं होता, तब भीतर की अनन्य शक्ति प्रकट हो जाती है।

गुरुदेव एक गीत फरमाया करते थे-

**आत्मबल ही है,**
**हाँ सब बल में सरदार आत्मबल ही है**
**आतम बल वाला अलबेला ऊपर चढ़कर देता हेला**
**लड़कर सारे जग से अकेला, लेता बाजी मार.. आतम**

आत्मबल कहाँ से आया? यदि मैंने नियमों का पालन किया है, सत्य का पालन किया है, अपने जीवन को सत्यमय रखा है तो कोई भी शक्ति मुझ पर प्रहार करने में समर्थ नहीं हो सकती। हमारे पास बहुत सारे उदाहरण हैं। सेठ

सुदर्शन के सामने अर्जुन माली, मुद्गर घुमाता आ रहा था, पर क्या कर पाया? कितने-कितने आख्यान सुनेंगे। बहुत सारे आख्यानों को सुना है फिर भी अपनी शक्ति को पहचान नहीं पा रहे हैं तो कहीं-न-कहीं असत्य के साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। कहीं-न-कहीं झूठ के साथ हमारा सम्पर्क बना हुआ है। उससे दोस्ती बनी हुई है।

चार बातें बताई गई हैं; फूटे सो झरे, पाको सो खरे, झूठो सो डरे और जन्मे सो मरे।

पहली बात है, फूटे सो झरे यानी फूटा हुआ बरतन झरेगा। उसका पानी बाहर आएगा। दूसरी बात है, पाको सो खरे अर्थात् जो फल पेड़ पर पकेगा, वह गिरेगा। तीसरी बात है, झूठो सो डरे। इसका मतलब है कि जहाँ झूठ होगा, वहाँ डर बना रहेगा और चौथी बात जन्मे सो मरे का अर्थ है कि जो जन्म लेगा, वह मरेगा।

जन्म लिया है तो मरने के लिए तैयार रहो। जन्म लेना हमारे हाथ में नहीं था, जन्म ले लिया। मौत हमारे हाथ में है कि नहीं है?

(श्रोता- मौत हमारे हाथ में है)

हम मौत को जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं। हम संलेखना पूर्वक मरण का वरण सकते हैं या नहीं?

(श्रोता- मर सकते हैं)

यह कब होगा?

जब शरीर का ममत्व हटेगा तो संथारा आएगा। जब तक शरीर प्रिय लगेगा, तब तक जीत नहीं हो पाएगी। शरीर को महत्त्व देंगे तो आत्मा कहाँ से जीतेगी। जिस समय शरीर का भाव गौण हो जाएगा, चैतन्य भाव प्रबल हो जाएगा, उस समय हम सोचेंगे कि शरीर मेरा नहीं है। 'इदं न मम।' यह मेरा नहीं है तो फिर इससे मेरा वास्ता क्या है। कल जाता, आज जाए उसका मुझे ऐतराज नहीं है। हम मृत्यु को सुधार सकते हैं। जिसने अपनी मृत्यु को सुधार लिया, जरूरी नहीं है कि वह पुन: जन्म धारण करे। पुन: जन्म धारण भी करेगा तो उस जन्म में भी साधु बनेगा, संलेखना स्वीकारेगा और एक दिन मोक्ष को प्राप्त करेगा।

मोक्ष प्राप्त करना है तो जन्म को मत साधो, मृत्यु को साधो। मरना निश्चित है, इसलिए बढ़िया से, प्रेम से क्यों नहीं मरें। मृत्यु को बुलाया जाए कि

आओ, मैं मरने के लिए तैयार हूँ। जैसे शादी करने के लिए तैयारी से गए, वैसे ही मृत्यु को वरने के लिए हमारे मन में तैयारी होनी चाहिए। कोई घबराहट नहीं हो। घबराहट नहीं होगी तो मृत्यु हारेगी, हम नहीं।

(श्रोता- मृत्यु हारेगी)

मृत्यु हार जाएगी। जो मृत्यु से डरेगा वह रोने लगेगा। हाथ जोड़ने लगेगा, किंतु वह कुछ भी कहे मृत्यु उसको खींचकर ले जाएगी। मृत्यु किसी भी हालत में छोड़ने वाली नहीं है। इसलिए जाओ तो प्रेम से जाओ, दोस्ती से जाओ। मरना निश्चित है तो उससे दोस्ती के साथ मरें। उससे मित्रता बना लें। यह तब होगा जब अपने जीवन को वस्तुत: साध लेंगे। सत्य के साथ संबंध जुड़ जाएगा तो मृत्यु भी सुधर जाएगी। हम प्रेरणा लें और मृत्यु के प्रति अपने भीतर कहीं भी भय बना हुआ हो तो उसको दूर करने का प्रयत्न करें। सफाई कर लें, शुद्धि कर लें। शुद्धि होने के बाद चैतन्य प्रखर बन जाएगा। उस प्रखरता से कभी भी हारने वाले नहीं होंगे। ऐसी दृढ़ता हमारे भीतर आएगी।

सुलसा की सी दृढ़ता हमारे भीतर भी है। नहीं होने जैसी बात नहीं है, किंतु हम कमजोर पड़ जाते हैं तो केवल मोह-ममत्व के कारण। ममत्व चाहे शरीर का हो, परिवार का हो, वैभव का हो या धन का हो, इन्हें हटाना है कि ये चीजें मेरी नहीं हैं। मेरा साथ निभाने वाली नहीं हैं। कौन मरते हुए इनको साथ ले जा पाया है? परिवार का कोई सदस्य, धन, मकान, गाड़ी-घोड़ा कुछ भी साथ जाने वाला नहीं है। हमारे साथ जीने वाले बहुत हैं, किंतु मृत्यु के क्षण में हमारे साथ कोई नहीं होगा।

भगवान महावीर के साथ कितने लोग निर्वाण हुए? जब भगवान महावीर के साथ जाने वाला नहीं मिला तो हमारे साथ कौन जाने वाला है, इसलिए अपनी चेतना को जागृत करें।

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा**

अपनी आत्मा को सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अर्पित करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

24 दिसम्बर, 2022
सेक्टर- 3